

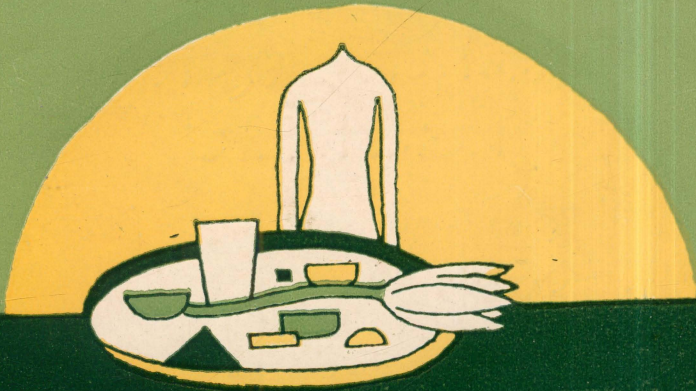
१६७-६८

गोदावरी

श्रावकाचार विशेषांक
वर्ष १४; अंक ११, १२
मार्च-अप्रैल १९८५

No - 057640

Lo - 43-15



- नियोजनपूर्व अद्यावत यंत्रसामग्री से सुसज्ज और सुधारीत कृषी तंत्र आपनाकर गन्ने के शर्करांशमे भरसक वृद्धी करनेवाला,
- सफेद मिठी चिनी के साथ आँकझॅलीक अॅसिड डायइथाइल आँकझॅलेट, अॅसीटीक अॅसिड इन रासायनिकों का उत्कृष्ट और दर्जेदार उत्पादन लेकर इथाइल अॅसिटेट, ब्यूटाइल अॅसिटेट, अर्कॅशाला, इन प्रकल्पों को कार्यान्वित करनेवाला ।,
- अतएव मिथीनगॅस, सल्फामॅथॉक्झोल, पॅराॅसिटोमल, ट्रायमेथोप्रिन, इत्यादि नित्योपयोगी दवा निर्मिती में प्रयत्नशील

तथा

- इंजीनीअरीग कॉलेज, पॉलीटेक्नीक और आय. टी. आय. आदि शैक्षणिक सुविधा की नींव डालकर तांत्रिक ज्ञान-विज्ञान की गंगोत्री देहाती क्षेत्र में ले जानेवाला, किसान, मजदूर, दिन-दलित और समाज के हर अंग का आशा-स्थान

“दि संजीवनी [टाकण] सहकारी साखर कारखाना लिमिटेड”

सहजानंदनगर, पोस्ट:-शिगणापूर, तालुका-कोपरगांव,
जिल्हा-अहमदनगर.

व्ही. पी. नायडू
कार्यकारी संचालक

बी. के. देवकर
व्हाईस-चेअरमन

शंकरराव कोल्हे
चेअरमन

सिद्धिचर

विचार-मासिक

सिद्धिचर की वर्णमाला में सदाचार का प्रवर्तन

श्रावकाचार विशेषांक

वर्ष १४; अंक ११-१२;
चैत्र-बैशाख वि. सं. २०४२; वी. नि. सं. २५११

संपादन : डॉ. नेमीचन्द जैन
प्रबन्ध संपादक : प्रेमचन्द जैन
आकल्पन : संतोष जडिय
छायांकन : विश्वास जैन

हीरा भैया प्रकाशन
६५, पत्रकार कॉलोनी कनाडिया मार्ग,
इन्दौर-४५२ ००१, मध्यप्रदेश

दूरभाष । ५८०४

वार्षिक शुल्क : तीस रुपये
प्रस्तुत अंक : पन्द्रह रुपये
आजीवन : दो सौ इक्यावन रुपये
विदेशों में वार्षिक : सौ रुपये

विजयशीलचन्द्रसूरि ग्रंथ संग्रह

नईदुनिया प्रिंटरी, इन्दौर-४५२ ००९ द्वारा हीरा भैया प्रकाशन, इन्दौर के लिए मुद्रित

श्रावक : स्वयं-सिद्ध

हम गुनाहगार शब्दों के—

स्वच्छ, सुन्दर, शुचितामय शब्दों के गुनाहगार ।

जिन शब्दों को मन्त्र मान जपा है
अर्थ जिनका आचरण की डोरियों से गुंथा है
व्याख्यायित विद्वानों से पुस्तक-भण्डारों में
लेखों-उपदेशों में, ग्रन्थों में, कोषों में

अन्वेषी मानस की सामग्री समिधा है ।

‘श्रावक’ ध्वनि निर्मल जल झरने की कल-कल-सा
शुद्ध स्नात उज्ज्वल चित्त प्राणों की हल-चल-सा

‘श्रावक’ अमूर्त रूप, रचता सौन्दर्य-सृष्टि
पावन घन-भावों से बरसाता मधुर वृष्टि

‘श्रावक’ की रचना में सदियों की गाथा है ।

‘श्रावक’ ने सीखी थी जीने की स्वस्थ विधा
पर-हित निज लाभ-क्रिया, सरल-स्निग्ध-मृदुल प्रथा
संयत श्रावकता के विकसित नित रूप भिन्न
जड़ता के मरुस्थल पर नवयुग के चरण-चिह्न
योग बाह्य अन्तर का ‘श्रावक’ की क्षमता है ।

श्रवण किया, स्मरण रहा, गुना गया—

आचरित उपदेश,—

परिलक्षित पल-पल में

समतामय सदाचार

निर्भयता, निर्विकार

मानवता सहज रूप—

भेद-भाव-हीनता—

विश्व-प्रेम-लीनता—

‘श्रावक’ का सृजन वही,

स्वयं-सिद्ध भाषा है ।

अन्यथा—

शब्दों के अर्थों के गुनाहगार बाहक हम,

कैसे कहें,

‘श्रावक’ हम ?

कथा / कहां

श्रावक : स्वयं-सिद्ध (कविता)	
—कुन्था जैन	२
प्रश्न-दर-प्रश्न	
—संपादकीय	३
कविताएँ	
—दिनकर सोनवलकर	९
आचार प्रभवो धर्म	
—कन्हैयालाल सरावगी	१५
श्रावक : मोक्षमार्ग पर क्रदम-दर-क्रदम	
—कन्ठेदीलाल जैन	१७
जीवन-धारा, पूर्ण एकत्व, अलौकिक संवादत्व (काव्यानुवाद)	
—दिनकर सोनवलकर	२०
काम यह कठिन है : बहुत कठिन	
—डॉ. प्रद्युम्नकुमार जैन	२१
स्वयं में उठते-धुमड़ते सवाल	
—डॉ. एम. पी. पटैरिया	२७
श्रावकाचार : विचारपूर्वक आचार (बातचीत-१)	
—एलाचार्य मुनि श्री विद्यानन्द/डॉ. नेमीचन्द जैन	३३
साठ वसंत द्वार पर आकर देते तुम्हें बधाई (कविता)	
—बाबूलाल जैन	५२
श्रावक वह जिसके आचरण में जैनत्व हो (बातचीत-२)	
—आचार्य आनन्दऋषि/डॉ. नेमीचन्द जैन	५३
श्राविका . संभाले/पहले घर, फिर बाहर (बातचीत-३)	
—श्रीमती सौ. ललिताबाई/डॉ. नेमीचण्ड जैन	५५
शाकाहार : अहिंसक जीवन-शैली का प्रमुख आधार (बातचीत-४)	
—कैवलचन्द जैन/डॉ. नेमीचन्द जैन	६३
श्रावक : मन्दिर-से-प्रेरित; सत्साहित्य से प्रोत्साहित (बातचीत-५)	
—पं. फूलचन्द शास्त्री/डॉ. नेमीचन्द जैन	६९
सहानुभूति में गर्भित है सम्यक्त्व	
—डॉ. भानीराम	७२
जो वक्त की जिल्द में बँध न सके	७८
श्रावकाचार पढ़ने वाले हम	
—सुरेश 'सरल'	७९
परिचर्चा—१	
रूढ़ि नहीं, विवेक चाहिये	
—अक्षयकुमार जैन	८६
... तो वह श्रावक नहीं है	
—डॉ. जयकुमार जलज	८६

श्रावक : आचार-विचार के प्रति प्रतिपग सजग	
—नेमीचन्द्र जैन	८७
वह पैसे के पीछे बावला न हो	
—नरेन्द्रप्रकाश जैन	८७
श्राविका : समृद्धि-की-द्वार	
—आर्यिका ज्ञानमती माताजी	८९
पहिये और गाड़ी को जोड़ने की जरूरत	
—डॉ. प्रेमसुमन जैन	९१
मूलगुण : एक समाज शास्त्रीयदृष्टि	
—लक्ष्मीचन्द्र जैन	९२
दो अनिवार्य भूमिकाएँ	
—यशपाल जैन	९५

परिचर्चा-२

बेहतर मानव यानी बेहतर श्रावक

चर्चाकार : श्री अभय छजलानी, श्रीमती सौ. शरयू दफ्तरी, श्री बाबूलाल पाटोदी, पं. फूलचन्द्र शास्त्री ; प्रवर्तक : डॉ. नेमीचन्द्र जैन ९७

शाकाहार : उत्तम क्यों ?

—डॉ. रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर १०९

बेकसूर प्राणियों के खून में सने हमारे बर्बर शौक

—प्रलयकर ११३

रत्नकरण्ड श्रावकाचार/श्रावक के आचार की विकास-कथा

—मूल : स्वामी समन्तभद्र ; पद्यानुवाद—मिश्रीलाल जैन;

प्रतीक-चित्र : संतोष जड़िया १२९

मादक पदार्थ : घातक कितने ! ?

—एम. पी. गौतम १८३

गोम्मटगिरि : श्रद्धा, चिन्तन और आचरण का समन्वय (बातचीत-६)

—बाबूलाल पाटोदी/नेमीचन्द्र जैन १९३

विद्यानन्द-विनयांजलि :

जैसा मैंने देखा/समझा

—शान्तीलाल प्रेमचंद लोहाडे २०९

एकता और समन्वय के प्रेरणा-स्रोत

—रतनचन्द्र कोठारी २११

देदीप्यमान निर्ग्रन्थ

—फकीरचन्द्र मेहता २११

पत्र-पत्रांश

२१३

समाचार-परिशिष्ट

२१५

तीर्थकर : चौदहवाँ वर्ष मई १९८४—अप्रैल ८५

२२५

लेखानुक्रम २२५; लेखकानुक्रम २२९

प्रश्न-दर-प्रश्न

कई अवसर इतने बहुमूल्य होते हैं कि यदि हम उनका ठीक से उपयोग न करें तो बाद में चल कर हमारे हाथ में अफसोस/दुःख के अलावा कुछ और बच नहीं रहता। इन्दौर, या मध्यप्रदेश के लिए ही नहीं वरन् सारे देश के लिए ऐसे मौके जो जयन्ती, या पर्व के रूप में हम तक आते हैं, सांस्कृतिक (निजी भी) महत्त्व के इसलिए होते हैं कि उनके साथ कोई सयाना जीवन-दर्शन जुड़ा होता है एकदम कोरमकोर वे नहीं होते। एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी की षष्टिपूर्ति के ये लचिले; उर्वर क्षण इसी तरह के ऐतिहासिक/सांस्कृतिक क्षण हैं जब कि हम अपने तथा सार्वजनिक स्तर के जीवन का बेलौस/स्पष्ट लेखाजोखा ले सकते हैं। इन दुर्लभ क्षणों में वस्तुतः देखना हमें यह है कि विगत कुछ दशकों में किन कारणों से व्यक्ति/जनजीवन में दरारें पड़ी हैं, या वह क्षत-विक्षत हुआ है ताकि वक्त रहते हम उनकी मरम्मत कर सकें और आगे के मार्ग को निरापद/निष्कण्टक बना सकें।

तय किया गया है कि मुनिश्री की षष्टिपूर्ति/उनके इकसठवें वर्ष-प्रवेश को 'श्रावकाचार/शाकाहार/सदाचार वर्ष' के रूप में संपन्न किया जाए। खुर्दवीन के नीचे उक्त तीनों शब्द समानार्थक हैं; किन्तु श्रावकाचार शायद एक ऐसा शब्द है, जिसमें एक सामान्य जन किसी सांस्कृतिक दूरी की घड़कन सुन सकता है; शेष दोनों शब्द भारतीय लोकजीवन के सुपरिचित शब्द हैं। हम किसी भारतीय के हिंसक/दूसरों के खून-का-प्यास-होने-की कल्पना तो आज भी नहीं कर सकते। हमारा खान-पान; रहन-सहन संकट और संघर्ष के जमाने में भी अहिंसक रहा है। अहिंसा हमारे लिए कभी लाचारी नहीं रही है, बल्कि जीवन का प्रमुख आधार/उसकी प्रधान प्राणधारा वह रही है। जानें कि श्रावकाचार का आहार और विचार से बड़ा सीधा और घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। किसी श्रावक के सामिष और कदाचारी/भ्रष्ट आचार वाला होने की तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

प्रश्न एक ही नहीं है, वरन् एक ही प्रश्न में कई-कई सारे प्रश्न उलझे खड़े हैं; इसीलिए शब्द का जो सहज अर्थ है वह रास्ता भटक गया है; खतरे में पड़ गया है। आज 'श्रावक' कहने से वह छवि नहीं बन पा रही है जो आज से कुछ दशक, या कुछ शताब्दियों पूर्व बना करती थी। पता नहीं क्यों 'श्रावक' में-से 'श्रावकता' ने त्यागपत्र दे दिया है और वह एक निर्जल/बिपानी शब्द रह गया है? वस्तुतः जिस तरह हम किसी अश्व में से उसकी अश्वता को नहीं अलगा सकते या अग्नि में-से अग्नित्व को जुदा नहीं कर सकते उसी तरह श्रावक में से श्रावकता को बिलगाना मुश्किल होगा; किन्तु आप मानें, न मानें आज श्रावक हैं, किन्तु उनकी श्रावकता खतरे में पड़ गयी है। यह चिन्ता का विषय है—मामूली नहीं बल्कि गहन चिन्ता का विषय है।

प्रश्न उठ सकता है सबसे पहले कि आज से सौ साल पहले का श्रावक कैसा था, या महावीरकालीन श्रावक कैसा था; कैसा व्यक्तित्व था उसका? ऐसी कौन-सी विशिष्टताएँ थीं जो उसकी अरिमता की संरचना करती थीं? क्या आज वे सारे संदर्भ बदल नहीं गये हैं? क्या हमें इन बदले हुए संदर्भों में मौलिकताओं की रक्षा करते हुए कोई परिवर्तन नहीं कर लेना होगा? षष्टिपूर्ति के इस परमपूत प्रसंग पर हमें शब्दार्थ के बीच आये इस फासले की फिक्र लेनी होगी और ताश की ढेरी को दुबारा फेंट लेना होगा। सोचें कि राष्ट्र-सन्त मुनिश्री विद्यानन्दजी इतने लोकपूज्य क्यों हैं? मात्र इसीलिए न कि उनके आचार, विचार, और आहार में कोई वैषम्य नहीं है? सब ओर सादगी, निष्कपटता, और निष्काम की धूप खिली हुई है उनके जीवन में। असल में आचार-आहार, आचार-विचार, आहार-विचार आपस में असंबद्ध अस्तित्व नहीं हैं; ये तीनों परस्पर पूरक और प्रभावक हैं। क्या षष्टिपूर्ति के इस मौके पर हम इन तीनों के बीच बनी खाई को पाटने का कोई सुनिश्चित प्रयत्न कर पायेंगे?

सहज ही और बहुत सारे सवाल हमारी झोली में सरक कर आ गये हैं। पहला प्रश्न जो हम सबके सामने आ खड़ा हुआ है वह यह है कि श्रावक कौन है और आज के संदर्भ में समाज के प्रति/स्वयं के प्रति उसकी क्या भूमिका है?

क्या श्रावक को मिट्टी के लौंघे की तरह जड़ कुछ होना चाहिये, या उसे एक सार्थक अस्तित्व की भाँति अपने समकालीन भूगोल/इतिहास के प्रति जागृत बने रह कर अपने कदम उठाने चाहिये? आज एक अच्छे नागरिक/श्रावक के सामने असंख्य चुनौतियाँ हैं। इन चुनौतियों के भी नाना वर्ग हैं: रोजी-रोटी की चुनौती, उद्योग-धन्धों की चुनौती, गृहस्थ होने और गार्हस्थ्य को सफलतापूर्वक निभाने की चुनौती, खान-पान/रहन-सहन की चुनौती, मनुष्य और प्रकृति के बीच बिगड़ते संतुलन की चुनौती, हिंसा की चुनौती, मिलावट/अपमिश्रण की चुनौती, साधनहीन और साधन-संपन्न लोगों के बीच की चुनौती, आस-पास बाज़ की तरह मंडरा रहे सामिप भोजन/शराब की चुनौती, विज्ञान द्वारा उत्पन्न असंतुलन की चुनौती, वाणिज्य-व्यापार में लगातार बढ़ रहे लोभ-लालच की चुनौती, मनुष्य और मनुष्य के बीच टूटते रिश्तों की चुनौती, संयुक्त परिवारों के विघटन की चुनौती, विविधता के कारण हो रहे पक्षपातों की चुनौती, राजनैतिक बुराइयों की चुनौती, विदेशी मुद्रा के पागलपन के कारण पनपने वाले हिंसक उद्योग-धन्धों की चुनौती, पूर्व और पश्चिम के सांस्कृतिक संघर्ष की चुनौती, बूढ़ी और नौजवान पीढ़ी की परस्पर टकराहट की चुनौती, धार्मिक निरक्षरता की चुनौती – इन तमाम चुनौतियों के बीच छटपटाता हमारा सांस्कृतिक जीवन इतना असहाय हो गया है कि यदि इतिहास-के-इस-क्षण-में हमने अपनी ठीक-ठीक समीक्षा नहीं की तो सबसे अन्तिम चुनौती हमें अपने अस्तित्व के प्रति ही मिलने वाली है, कहें, प्रक्रिया शुरू हो गयी है।

इन सारे प्रश्नों के बीच हमें श्रावक की छवि (इमैज)के बारे में विचार करना है, उसके स्वरूप की समीक्षा करना है, देखना है कि वह कितना/किस तरह बचा रह गया है, और उसके इस अवशेष को अब क्या हो जाना चाहिये? इन/इतनी सारी चुनौतियों/सवालों के बीच परम्परा से सीधा अर्थ श्रावक का जो हमारे सामने आता है वह है ऐसा नागरिक जो दूसरों की असुविधाओं/कष्टों का उतना ही ख्याल रखता है जितना वह अपने स्वयं की असुविधाओं/कष्टों का।

इस रौ में श्रावक का सबसे पहला गुण है उसका सहनशील होना/अर्थात् एक अच्छा नागरिक सर्वप्रथम सहिष्णु होता है; किन्तु इसके विपरीत देखा यह जा रहा है कि तथाकथित श्रावक आज बहस अधिक कर रहा है, समाधान कम ढूँढ़ रहा है। हमारा जमाना किस मोड़ पर इस क्षण खड़ा है, किस मोड़ पर उसे होना था; इस सम्बन्ध में उसका अपना कोई सोच नहीं है।

जो सुने वह श्रावक है, जो सबकी सुने वह श्रावक है, जो सुनते हुए, सत्य की खोज करते हुए ऊबे-थके न वह श्रावक है, जो सुन कर तुरंत प्रतिक्रियावन्त न हो वह श्रावक है। असल में श्रावक सुनते हुए भी शान्त रहता है और अनावश्यक संघर्ष/कटुता खड़ी नहीं करता; किन्तु इस बात को साफ-साफ समझ लें कि उसकी इस सहिष्णुता-प्रेरित श्रव्यता की पृष्ठभूमि पर कायरता नहीं है, बल्कि अपरंपार क्षमा है; वह जान रहा है, या उसे जानना चाहिये कि वक्ता जो कह रहा है वह इसलिए ऐसा कह रहा है चूँकि वह सम्बन्धित विषय के बहुत सारे मुद्दों से वाकिफ नहीं है, मात्र अपने किंचित् स्वार्थवश ही वह कोई गलत या स्वानुकूल वक्तव्य दे रहा है—ऐसा/इस तरह जान लेने पर हमें उसके अज्ञान पर क्रोध (वह भी रचनात्मक) आयेगा, उस पर नहीं; वास्तव में हम कभी वस्तु पर क्रोध नहीं करते वस्तुत्व पर ही छोटी-मोटी झुंझलाहट मन में लाते हैं। एक श्रावक वस्तु के स्वरूप को समझने की कोशिश करता है; जो श्रावक हाथ-पर-हाथ रखे बैठा है और वस्तु-स्वरूप को नहीं खोज रहा है, वह श्रावक नहीं है। श्रावक वह है असल में जो वस्तुस्वरूप का लगातार पीछा कर रहा है, या उसके अनुसंधान के लिए प्रतिक्षण कमर कसे खड़ा है। जैन तपश्चर्या का अर्थ ही है वस्तुस्वरूप का विवेकपूर्वक अनुसंधान।

समय की इस संधि पर हमें चाहिये कि हम एक श्रावक/अच्छे नागरिक होने के नाते यह देखें कि हम अपने रोजमर्रा के जीवन में विवेक का पूरा-पूरा उपयोग कर रहे हैं, या नहीं कर रहे हैं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि जो उसूल अब तक हमारा मार्ग रोशन कर रहे थे वे हमें मंझधार में छोड़ कर आगे बढ़ गये हैं? कहीं हमने उन उसूलों को सिर्फ पढ़ने-पढ़ाने/व्याख्यान देने की वस्तु तो नहीं बना लिया है और अपने चरित्र और कथन के बीच एक भयानक फासला खड़ा कर लिया है? षष्टिपूर्ति के इस पुनीत अवसर पर हमें सबसे बड़ा काम यह करना है कि हमारे जीवन का हर अंधेरा कोना विवेक के दीये सेर जगमगा उठे। जिन्दगी की कोई जमीन ऐसी न छूटे जहाँ हम भले-बुरे और खरे-खोटे का खयाल न रख पा रहे हों। यह तो हमें देख ही लेना होगा कि हम क्या कर रहे हैं, कैसे कर रहे हैं, कहाँ जा रहे हैं, क्या खा रहे हैं, क्या सोच रहे हैं? क्या इस भारी कोलाहल के बीच हम एक क्षणांश को यह भी सोच पा रहे हैं कि हम कौन हैं

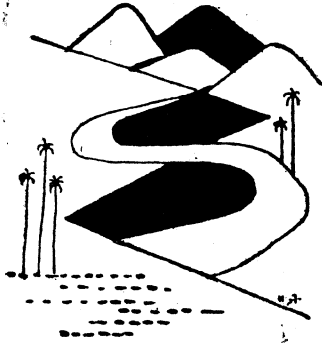
और हमारा गंतव्य कहाँ है; या जिस रास्ते पर हमारे पाँव हैं, वह रास्ता सही है, या बस चले जा रहे हैं बिना किसी, या गलत पता लिखे खत की तरह ?

हम यह भी सोचें कि क्या हम जो कुछ कर रहे हैं उसकी वजह से हमारे अपने साथी/पड़ोसी को तो कोई हानि नहीं पहुँच रही है ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम अपने असंतुलित/विकृत खान-पान और रहन-सहन के कारण प्रकृति के लाखों-लाख वर्ष में बने संतुलन को कोई सांघातिक चोट पहुँचा रहे हैं ? हम जानें कि सहअस्तित्व के अपने संकल्प/वायदे से हम लगातार हट रहे हैं । जैनधर्म/दर्शन ने सदैव सहअस्तित्व की बात कही है । उसके द्वारा उपदिष्ट सहअस्तित्व अहिंसा और अनेकान्त के नाम से जाना जाता है । वस्तुतः विचार के क्षेत्र में जो सहअस्तित्व है, वह अनेकान्त है । अनेकान्त का अर्थ है कि जब तक हम किसी वस्तु/शब्द/स्थिति के तमाम पहलुओं को नहीं जान लेते तब तक यह असंभव ही होगा कि हम उस वस्तु के संपूर्ण व्यक्तित्व का पता पायें ।

आज जो बुनियादी भुशिकल हमारे सामने है वह यह है कि हमने बड़े-बड़े मसलों और मुद्दों पर तो विचार करना शुरू कर दिया है; किन्तु हम उन मसलों/मुद्दों को भूल बैठे हैं, जो मुख्य हैं, यद्यपि छोटे हैं । हम सिन्धु की चर्चा-समीक्षा तो बड़े गौरव/गहराई से कर रहे हैं किन्तु बिन्दु की कराह को सुन ही नहीं पा रहे हैं । इसी तरह हम भीड़ पर तो ध्यान दे रहे हैं, किन्तु व्यक्ति हमारी आँख से लगातार चूक रहा है । याद रखें कि अब जो भी क्रान्ति, या परिवर्तन आयेगा वह व्यक्ति-पर-आधारित होगा, यानी हमें दीया चौराहे पर जलाने से पहले अपने चूल्हे के करीब उसे जलाना होगा, द्वार-देहरी पर उसे रखना, प्रज्वलित करना होगा । क्या हम अब भी चौराहे की जगह अपने घर के अँधियारे को दूर करने की कोशिश नहीं करेंगे ? क्या हम इस मर्म को कभी समझ पायेंगे कि व्यक्तियों से समूह बनता है अतः अपना काम वहीं से शुरू करें ? हमें चाहिये कि निज को/निजता को टटोलें और वक्त-रहते खुद से सवाल करें और देखें कि हमारी अपनी भूमिका इस दुनिया को बेहतर बनाने में क्या है/क्या हो सकती है ? हम क्या कर सकते हैं उन बुराइयों/विकृतियों को धकेल बाहर करने में जो लगातार हमारे इर्द-गिर्द गिद्धों की तरह झुण्ड बनाये मँडरा रही हैं ?

इतने सारे ज्वलन्त प्रश्नों के बीच मुनिश्री विद्यानन्द-जैसे महामनीषी/वाग्मी मर्हाष की पष्टिपूर्ति पर यदि हम यह संकल्प नहीं कर रहे हैं कि हम निज को/निजता को टटोलेंगे और खुद के भीतर कहीं/किसी सिरे से क्रान्ति की शुरूआत करेंगे तो फिर राग असाध्य है और हम तो क्या धन्वन्तरि तक उसका कोई समाधान शायद कभी ढूँढ़ नहीं पायेंगे ।

□ □



संयमित जीवन की सुगंध

व्यवहार

सहज, सरल हो,
 चाणी विनम्र
 मधु की तरह तरल हो,
 अपने और पराये
 सभी के लिए
 मन में करुणा रहे
 संयमित जीवन की सुगन्ध
 फैले जनगण में
 सब के कल्याण-हित
 व्यक्ति-व्यक्ति
 कष्ट सहे ।

व्यसन : एक भुलावा

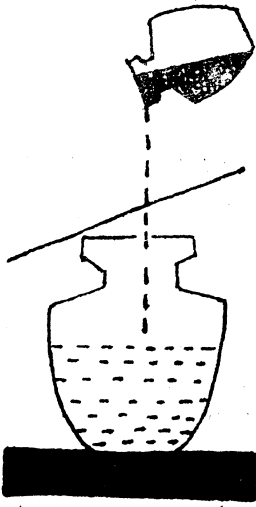
आदतों में
 संयम हो;
 व्यसन-मुक्त ।
 दिनचर्या का
 अपवाद-रहित
 नियम हो ।
 व्यसन एक भुलावा है
 आकर्षक भले दिखे

कविताएँ : दिनकर सोनवलकर

आग का छलावा है ।
 आग यह जलाती है
 तन को
 कलुषित कर देती
 अन्तर्मन को
 और
 राख कर देती है
 श्रम से कमाये हुए
 धन को !

आत्मविश्लेषण की सुबह

हर नशा
 हमें अपने से
 दूर करता है ।
 नशा टूटने के बाद
 देह को शिथिल
 वृत्ति को
 क्रूर करता है ।
 पहले ही से
 कई-कई आवरण
 पड़े हैं
 जीव के शुद्ध चैतन्य पर ।
 एक और आवरण
 तामसी नशे का



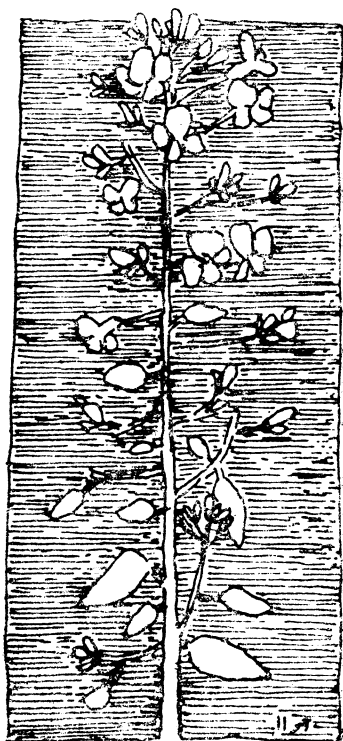
मत डालो ।
 खुद के बारे में
 एक और मुग़लता
 मत पालो ।
 दूसरों को ठगने से
 ज्यादा बड़ा पाप है
 स्वयं को छलना ।
 यह कृत्रिम
 आत्म-विस्मरण
 पलायन है—
 जगत् से
 जीवन से, संघर्ष से,
 तुम खुद भर उठते हो
 पश्चात्ताप और
 अमर्ष से ।
 इस सर्वनाशी
 प्यास के पीछे
 मत भागो
 नशे के जाल से
 छूट कर

आत्मविश्लेषण की
 सुबह में जागो ।

साधु की कसौटी

साधु की कसौटी
 शब्दों की फिजूल खर्ची नहीं ।
 मौन है—
 मौन ही
 उसका व्याख्यान है
 निष्काम—वृत्ति ही
 उसका आख्यान है ।
 बाहर के कर्मकाण्ड
 कण्ठी-माला मन्त्रोच्चार
 लाउड-स्पीकर पर
 जोर-शोर से धर्म-का-प्रचार
 शान-शौकत के जुलूस
 कलश, या माला की बोलियाँ
 वैभव और अहंकार का
 प्रदर्शन करतीं
 स्वार्थी भक्तों की टोलियाँ
 —सभी आडम्बर है—
 व्यावसायिकता के प्रदूषण से
 विषैला
 यह नहीं धर्म
 आत्मसाक्षात्कार का
 यह नहीं मर्म ।
 सन्त
 तो
 द्वन्द्वों से
 परे है
 दिशाएँ ही
 उसके वस्त्र हैं

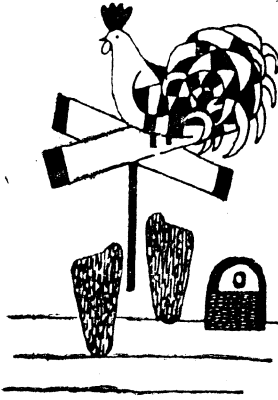
अर्जाहस ही
 उसका अस्त्र है
 सके
 चिन्तन और कर्म में
 नहीं है कोई भेद
 उसकी दृष्टि
 अखण्ड
 और अभेद ।
 उसका हिरदय
 स्फटिक-सा
 निर्मल है
 उसका व्यवहार
 बच्चों-सा अकृत्रिम
 निश्छल है ।
 वह तो
 भागवत चेतना के तल पर
 जीता है
 कैवल्य का अमृत-रस
 पीता है ।



बाहर-से भीतर-को

सारा उत्पात
 पाँच ज्ञानेन्द्रियों का है ।
 इन्हीं द्वारों से
 प्रवेश करती हैं हवाएँ
 आसावरी की—
 शब्द स्पर्श रस रूप गन्ध की
 रंगीन प्रतिमाएँ ।
 इन्हें
 भीतर की तरफ मोड़ो
 क्षणिक इच्छाओं से
 इनका रिश्ता तोड़ो ।

बाहर से भीतर का संक्रमण
 आध्यात्मिक क्रान्ति का
 प्रस्थान है
 चाहे उसे कहे प्रत्याहार
 चाहे प्रतिक्रमण ।
 तनिक भीतर तो झाँको
 'अनन्त चतुष्टय' की
 सम्पदा को आँको ।
 साँसों के इकतारे पर
 नाद सुनो
 अनहद का
 चेतना स्पर्श करे
 स्वयं चैतन्य को
 ध्यान की



सुगन्ध
अनुभव करो

प्राण करे
उच्चारित

ॐ कार मंत्र
देखो

अपने अस्तित्व की बूंद को
विराट समुन्दर में
घुलते हुए क्रमशः
समाधि की
अखण्ड ।

शाश्वत शान्ति में ।

—नहीं है इससे बढ़ कर
कोई आनन्द;

कि हम
सब में रह कर भी
स्वयं में रहें मुक्त
निर्द्वन्द्व !

ऐसे आधारभूत मन को

हर विकार का उत्स
मन में है,
हर बुराई की जड़
खुद के दामन में है ।

सोचो

यदि मन में क्रोध की
लपट न उठे ।
—तो वाणी की क्या मजाल
जो अपशब्द उचारे ?
हाथों की क्या हिम्मत
जो किसी को चाँटा मारे ?
मन का संकल्प ही है
प्रगति का
प्रथम चरण
शुभ संकल्पों से ही
बनता है सदाचरण ।
और सत्संकल्पों की छैनी से
चरित्रवान् मूर्ति
गढ़ी जाती है

व्यक्तित्व की पुस्तक
अक्षर-अक्षर मिला कर
पढ़ी जाती है ।

सत्य हो / अहिंसा हो / या अपरिग्रह /
पहले मन में धारण करो
फिर वे सहज उतर आयेंगे
वचनों में, कर्म में

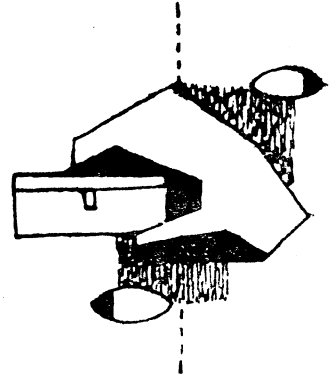
मन की
या विचार की
शुचिता ही
महत्त्व रखती है
धर्म में ।

ऐसे आधारभूत
मन को
शुद्ध करो

समर्पण
और
स्मरण से प्रबुद्ध करो ।

□ □

आचार प्रभवो धर्मः



आज विज्ञान ने मनुष्य को इतने आकर्षण दे दिये हैं, जिनके सम्मुख नत-मस्तक वह भौतिकता की चकाचौंध में अपनी असलियत को नहीं पहिचान पा रहा है। अर्थ, अधिकार, और भोग की विकसितता में वह आज जी रहा है; अथवा कहें मरने की तैयारी कर रहा है।

—कन्हैयालाल सरावगी

सभी धर्मग्रन्थों में आचार (चारित्र) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार से धर्म होता है और धर्म का प्रभु अच्युत (शाश्वत) परमेष्ठी है। जैन विचारधारा में सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की त्रिपुटी को संयुक्त रूप से मोक्ष का हेतु बताया गया है (मोक्षशास्त्र—१.१)। यहाँ जिस अर्थ में चारित्र को लेंगे, वह दर्शन और ज्ञान से भिन्न नहीं, वरन् उनकी बारहखड़ी अथवा प्रयोग है। अनादिकाल से विचार की दो धाराएँ चली आ रही हैं। एक जान कर मानने की और दूसरी मान कर जानने की। जान कर मानने वालों के माध्यम दर्शन और ज्ञान हैं और मान कर जानने वालों का आचार, या चारित्र है। शास्त्रों में ऋजु जडमुनि की कथा आती है, जो अपनी साधना की यात्रा चारित्र से आरम्भ करता है और उसका सतत् निर्वाह करता हुआ श्रद्धा और ज्ञान को भी प्राप्त कर लेता है। योगाचार/श्रावकाचार पर विपुल ग्रन्थ लिखे गये हैं और उनकी प्रशस्तियाँ सभी धर्मग्रन्थों में बड़े सौष्ठव से गायी गयी हैं।

वेद की प्रारम्भिक शिक्षा 'सत्यं वद', 'धर्मं चर' से आरम्भ होती है, उपनिषदों का विधि-निषेध 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' में मूर्त होता है। शास्त्रों में सम्यक् आचार को पूजा कहा है। रोटी कमाने के कार्य व्यवहार से लेकर यम, नियम, तप, स्वाध्याय, पूजा, दान, तीर्थ-यात्रा आदि सभी आचार हैं। सांसारिक अथवा पारलौकिक (आध्यात्मिक) सभी साधनाओं का आधार सम्यक् चारित्र अथवा आचार है। इसके बिना सारी साधनाएँ अ-साधना हो जाती हैं। चारित्र ही सारी

सफलताओं का मूल होने के कारण इसे रत्नत्रय की त्रिपुटी में अन्तिम — जिसके आगे कुछ कहना शेष नहीं रह जाता — कहा गया है।

योग्याचार (धर्माचार), सदाचार, दुराचार, अनाचार, अत्याचार, शिथिलाचार आदि आचार के जाने कितने भेद हो सकते हैं, पर स्व-पर-कल्याण, समाज-संग्रह अथवा आत्म-संग्रह के लिए धर्माचार, सदाचार या योग्याचार ही समर्थ हैं। धर्म वस्तुतः वस्तु का अपना भाव-स्वभाव होता है, पर इसके और भी आयाम होते हैं। जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस् की प्राप्ति हो उसे धर्म कहते हैं। सहअस्तित्व और आत्मलाभ भी धर्म की परिभाषाएँ हैं। अपनी और अपने कर्तव्य, उद्गम और गन्तव्य की पहिचान भी धर्म का विषय है। गति में सहायक द्रव्य भी धर्म है। इस प्रकार कार्य-कारण भाव से धर्म की अनेक परिभाषाएँ की गयी हैं। कोश के अनुसार आचार के अर्थ व्यवहार, चलन, रहन-सहन, चरित्र, शील, शुद्धि आदि हैं।

आचार अथवा कर्म को मुख्यतः तीन रूपों में देखा जा सकता है : (१) आत्महित के साधन रूप जप, तप, स्वाध्याय आदि; (२) देश, जाति, परिवार, और स्वयं अपने धारण-पोषण आदि के हेतु—नैतिकता, सहअस्तित्व, सन्धिभाग, साहचर्य, आर्थिक सामाजिकता (सोसियो-इकोनेमिक) आदि; और (३) संसार की वस्तुओं, सम्बन्धों, द्वन्द्वों आदि से उपराम हो कर आत्मचिन्तन, आत्महित, आत्मज्ञानरूप निर्विकल्पता। पहली दो अवस्थाओं में मन-बुद्धि में स्पन्दन होता है, विकल्प भी आते हैं, पर तीसरी अवस्था में स्पन्दन और विकल्प शान्त हो जाते हैं, मिट जाते हैं। गीताकार ने भी इसे कर्म, अकर्म, और विकर्म के रूप में व्याख्यायित और विभाजित किया है।

मनुष्य के सामने भोगोपभोग, मान, प्रभुत्व आदि के अनेक आकर्षण और प्रलोभन होते हैं। वह सहसा इनसे छूट नहीं पाता; इसलिए अपने काम्य अथवा प्रेय के लिए उसे निरन्तर कर्म करना पड़ता है। कर्ममार्ग में पाँवों के उगमगाने अथवा दूसरों से टकराने से बचाने के लिए उसे विवेक और बोध की सीमा में कुछ योग्य कर्म करना होता है। इन्हीं आवश्यकों को आचार कहते हैं। खान-पान की गृह्यता, अनियमितता और यौन उच्छृंखलता में मनुष्य की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही रही है, उसे नियमित और नियंत्रित करने के लिए मनीषियों ने समय-समय पर आचार के नियम बनाये और बताये हैं, कुछ विधि-निषेध निर्धारित किये हैं, व्रत, नियम, स्वाध्याय, सामायिक, वन्दन, पूजन, अनुप्रेक्षा, समिति, गुप्ति आदि कुछ कर्तव्य बताये हैं।

वर्तमान में विज्ञान ने मनुष्य को इतने आकर्षण दिये हैं, जिनके आगे वह भौतिकता के तिमिरोत्पादक चकाचौंध में अपनी वास्तविकता को नहीं पहिचान पा रहा है। अर्थ, अधिकार, और भोग की विकसितता में मनुष्य जी रहा है अथवा कहे मरने की तैयारी कर रहा है। इनके कारण कितने अनर्थ, शोषण, उत्पीड़न, हत्याएँ

आदि हो रही हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। जनसेवा और प्रगति की आड़ में भी जाने क्या-क्या हो रहा है। मंदिर, तीर्थ, एवं अन्य धर्मार्थ संस्थाएँ भी आज अर्थोपार्जन की व्यापारिक केन्द्र बनती जा रही हैं। उनकी उदात्त सेवा-भावना, नैतिकता, धर्मप्रसार, आत्मोत्कर्ष आदि का लोप-सा हो रहा है। शान्ति, प्रेम, सद्भाव, सहअस्तित्व, अभ्युदय और आध्यात्मिक प्रगति के बदले उनमें विलासिता, सुविधा, एकाधिकार, पदलोलुपता, अहंकार, दुर्गग्रह, स्वार्थ, पारस्परिक, ईर्ष्या आदि घर कर गयी हैं। आये दिन झगड़े, मारपीट, मुकदमेबाजी आदि होते हैं, जिससे द्वेष, अशान्ति और चारित्रिक पतन को बल मिलता है। निर्माण की फैक्ट्रियों (कारखानों) में विनाश के मॉडल बनने लगे तो भविष्य में क्या आशाएँ की जा सकती हैं ?

नितान्त निःस्पृह, अकिंचन, अपरिग्रही और लोक के शिक्षक, मार्गदर्शक, नियामक आदि कहे जाने वाले निर्ग्रंथों की गरिमा पर भी प्रश्न-चिह्न उभर रहे हैं, ग्रन्थियाँ पड़ती लगती हैं। वे अब गच्छ, संस्था आदि का परिग्रह जुटा रहे हैं, गृहस्थों के द्वारा संचालित हो रहे हैं। श्रावक धर्म की शिक्षाओं पर भी अपने गच्छ, आम्नाय, अखाड़े आदि के लेबल लगाने लगे हैं। इसीसे सम्भवतः 'नैको मनिर्यस्य वचः प्रमाणम्' कहा गया है। छोड़े इन बातों को, इन पर चर्चा करना हमारे लिए अनधिकार चेष्टा होगी। कहावत है—'छाज बोले तो बोले, पर चलनी जिसमें नौ सौ छिद्र हैं, वह क्या बोले ?'

भारतीय चिन्तन की अमोघ विद्या अनुशासन या आत्मानुशासन है, इसका लक्ष्य मुख्यतः आत्मसुख की ओर होता है। आत्मसुख की तुलना में भौतिक सुख का कम महत्त्व होता है। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक और अमनस्क से समनस्क तक और निगोद में उत्पन्न होने वाले सूक्ष्मतम जीव-पर्यंत सभी योनियों में भोग और संसार मिलते हैं, पर आत्मसुख का साधन और अवसर केवल मनुष्य-योनि में ही सम्भव है। अनुशासित जीवन में—जिसमें मन, कर्म और वाणी का संयम होता है— जो शान्ति है, वह उच्छृंखलता, विषयों की लालसा और परिग्रह की लोलुपता में नहीं है। शान्ति जीवन-मुक्ति की भूमिका बनाती है और अशान्ति नारकीय दुःखों का द्वार खोलती है। संयमित जीवन वाले के लिए दूसरों के द्वारा अनुशासन का अडंगा नहीं होता, पर असंयमित के लिए पद-पद वर बध, बन्धन, ताड़न, उपहास आदि उपस्थित होते रहते हैं। सुगन्ध के बिना जैसे पुष्प बेकार है, वैसे ही संयम और अनुशासन के बिना मनुष्य-जीवन बेकार है। संयम मनुष्य जीवन का सौरभ है।

साधारणतः मुनि, आर्थिका, श्रावक, श्राविका रूप चार संघों में मुनि, आर्थिका को त्यागी अनगर और श्रावक, श्राविका को गृहस्थ या सागार माना जाता है। श्रावकों के लिए मूलतः पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत और अवश्य पालनीय आठ मूल गुण बताये गये हैं। श्रावक व्रती होता है, अव्रती को श्रावक कहना श्रावकत्व की भावना के अनुकूल नहीं है। जैन चिन्तन में ग्यारह प्रतिमाओं (व्रतों) को धारणा करने वालों को भी श्रावक या श्राविका कहते हैं। ऊँची साधना

के लिए विशेष प्रकार के व्रत, जिन्हें प्रतिमा भी कहते हैं। वे ग्यारह प्रतिमाएँ अथवा व्रतों की एकादशी : दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्त त्याग, रात्रि-भुक्ति त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग और गृह त्याग हैं।

उपरोक्त सारे व्रत आत्महित के लिए हैं और इनका सदाशयता और श्रद्धा से निरतिचार आचरण करना पुरुषार्थसिद्धि, या मोक्षोपाय है। वर्तमान में मनुष्य आत्मानन्द से दूर होता, कटता जा रहा है। उसके ज्ञान और कर्म की दिशा भौतिकता की ओर हो गयी है। वह भौतिक विज्ञान की कृत्रिम क्षणभंगुर और विनाशकारी उपलब्धियों की ओर आकर्षित हो रहा है। भोजन, शयन, आसन, भाषण, गमनागमन, वस्तुओं के उठाने-रखने, पढ़ने, लिखने आदि सभी में आचार-जन्य विधि-निषेधों के होते भी भोगेषणा के कारण वह उन सभी की उपेक्षा कर रहा है। सामाजिकता की पहली और अनिवार्य शर्त सहअस्तित्व और सम्बन्ध से भी वह हटता जा रहा है। नये-नये संहारक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण और पारस्परिक शीतयुद्ध इसके ज्वलन्त साक्ष्य हैं।

मनुष्य का अहंकार बढ़ गया है और मानवता बौनी हो गयी है। विराट् से जुड़ने, विश्वात्मा होने में विकास है, मनात्मा, भोगात्मा होने अथवा विराट् से टूटने में विनाश है। श्रेयार्थी को आदर्श के रूप में एक अनन्त दर्शन, ज्ञान, आनन्द और शक्ति एवं ईशित्व से सम्पन्न, वीतराग, निरामय, निर्मल, निर्भय, नीर-क्षीर विवेकी देव—जिसे मुनिन्द्र, नरेन्द्र, सुरेन्द्र आदि मानते, स्मरण और पूजा करते हैं—को अथवा गुरु या शास्त्र को लक्ष्य में रखना चाहिये। वह शरण्य जगत् का कर्ता हो या न हो, पर उससे छुटकारा दिलाने वाला अवश्य हो।

मनुष्य स्वयं अपने संसार का निर्माता और भाग्य का विधाता है, स्वयं कर्म करता है और स्वयं उसका फल भोगता है। जीवन में शान्ति और भावी शुभ संस्कारों के निर्माण के लिए आचार का सम्यक् होना आवश्यक है। आचार या चारित्र्य को सम्यक् बनाने के लिए जैनागम में निम्न १३ बातें आवश्यक बतायी गयी हैं। पाँच व्रत (मुनियों के लिए महाव्रत और श्रावक गृहस्थों के लिए अणुव्रत), पाँच समितियाँ और तीन गुप्तियाँ, शौच, संतोष, मन, वचन और शरीर का संयम, तप, त्याग (दान), सदाचार आदि भी श्रावकों के लिए आवश्यक हैं। मोक्ष-मार्ग प्रकाशक सत्शास्त्रों का स्वाध्याय भी तप है (आजकल जो जासूसी (सस्पेंस), यौन (सेक्स) आदि साहित्य पढ़े जाते हैं वे वस्तुतः ताप हैं)।

हमारी दृष्टि में यह आचार - जैनाचार, श्रावकाचार अथवा विश्वमान्य सदाचार का स्थूल और संक्षिप्त लेखा-जोखा है। व्रत, आचार, मूलगुणों आदि के भेदों, उपभेदों की विस्तृत बातों के लिए विभिन्न श्रावकाचार ग्रन्थ प्रमाण हैं। विभावों से रहित वैचारिक अव्यभिचार श्रावकाचार का सूक्ष्म रूप है। □

श्रावक : मोक्षमार्ग पर क़दम-दर-क़दम

हमारे शरीर में मुख्यतः तीन संकाय (फैकल्टीज़) हैं। पहला हृदय है जहाँ श्रद्धा अपना आसान बिछाये बैठी है; दूसरा मस्तिष्क है, जहाँ ज्ञान ने डेरा डाला है; और तीसरे हैं हाथ-पैर जो चरंवेति चरंवेति में भरोसा रखते हैं। इन तीनों में भी श्रद्धा की भूमिका सर्वोपरि है। श्रद्धा के बिना ज्ञान अधा और क्रिया लँगड़ी होती है।

□ कन्ठेदीलाल जैन

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य तीनों का मेल अर्थात् 'रत्नत्रय' मोक्ष-का-मार्ग है।* श्रावक पद में 'श्र' अक्षर श्रद्धावान् होने का सूचक है। तत्त्वों का श्रद्धान (सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान) अथवा आत्मा से शरीर, धनादि पर पदार्थों के भिन्न होने का श्रद्धान (विश्वास) ही सम्यग्दर्शन है। श्रावक पद का दूसरा अक्षर 'व' विवेकी, या ज्ञानी होने का सूचक है। श्रावक को विवेकी होना चाहिये। श्रावक पद का तीसरा अक्षर 'क' क्रियावान् (आचरण वाला) प्रयत्नशील या (पुरुषार्थी) होने का सूचक है। इस तरह श्रावक पद के तीनों अक्षर रत्नत्रयधारी होने के सूचक हैं।

किसी भी रोग, या दुःख से मुक्त होने के लिए इन तीनों गुणों की आवश्यकता होती है। संसार के दुःखों से मुक्त होने के लिए भी इन्हीं तीनों गुणों को अपनाने की आवश्यकता है। कोई रोगी किसी औषधि का सेवन तभी करेगा, जब रोगी को औषधि पर रोग शमन करने की श्रद्धा होगी, उसके सेवन आदि की विधि का ज्ञान होगा, तथा उसका सेवन वह करेगा; रोग से मुक्ति उसे तभी मिल सकेगी।

देव, शास्त्र, गुरु में से वीतराग देव हमारी श्रद्धा के भाजन हैं; देवदर्शन को सम्यक् दर्शन की प्राप्ति का साधन माना गया है। शास्त्र स्वाध्याय के लिए हैं। उनसे ज्ञान की प्राप्ति होती है; वे मात्र पूजा के लिए नहीं हैं। हमारे गुरु, हमारे चारित्र्य के आदर्श हैं, उनसे सदाचरण/व्रताचरण की प्रेरणा लेनी चाहिये। इस प्रकार देव, शास्त्र, गुरु क्रमशः सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र्य के साधन हैं।

हमारे शरीर में मुख्यतः तीन संकाय (फैकल्टीज़) हैं। पहला हृदय है, जहाँ श्रद्धा निवास करती है; दूसरा मस्तिष्क है, जहाँ ज्ञान रहता है, और तीसरे हाथ-पैर आदि हैं, जो क्रिया या आचरण करते हैं। इस प्रकार ये विभाग श्रद्धा, ज्ञान तथा आचरण के आधार हैं। दूसरे शब्दों में इन्हें रति, मति, और गति भी कह सकते हैं। (आत्म) रति का आधार हृदय, मति का आधार मस्तिष्क एवं गति के आधार हाथ, पैर आदि अंगोपांग हैं।

इन तीनों में श्रद्धा का स्थान सर्वोपरि है। श्रद्धा के बिना ज्ञान और क्रिया सम्यक् नहीं होती। ज्ञान को मध्य स्थान दिया गया है। वह जहाँ श्रद्धा को अन्ध-

*सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्याणि मोक्षमार्गः - तत्त्वार्थ सूत्र १/१

श्रद्धा होने से बचा कर सहारा देता है, वहीं चारित्र्य को रूढ़िग्रस्त या पाखण्डग्रस्त होने से बचाता है। शरीर के इन अंगों में-से यदि किसी के हाथ-पैर न हों तो भी उसका जीवन चलता रहेगा, यद्यपि अंग-हीन जीवन पूरी तरह सुखद/निरापद नहीं होगा। इसी प्रकार चारित्र्य-हीन व्यक्ति का जीवन भी चलेगा तो परन्तु निर्बाध नहीं चलेगा। यदि किसी व्यक्ति का मस्तिष्क विकृत हो जाए, जो कि ज्ञान का आधार है, तो उसका जीवन अपंग से भी बदतर, अव्यवस्थित, और तिरस्कृत बन जाएगा। ऐसी ही स्थिति ज्ञान-हीन व्यक्ति की होगी। जिस व्यक्ति का हृदय काम करना बन्द कर देगा, उसका जीवन समाप्त हो जाएगा; इसी तरह श्रद्धा या आस्था-विहीन व्यक्तियों का धार्मिक जीवन भी समाप्त हो जाएगा।

हमें आज अपने द्वारा किये जाने वाले अच्छे-बुरे कर्मों के अच्छे, या बुरे फल मिलने का विश्वास नहीं है और न आगामी जन्म-में-आस्था है। चांवाक्-जैसी स्थिति है; इसीलिए अनुचित साधनों से छात्र परीक्षा उत्तीर्ण कर रहे हैं और अधिकांश लोग अनुचित साधनों से धन कमा रहे हैं। हमारा जीवन विकृत भावनाओं का अखाड़ा बनता जा रहा है। वह सदाचार-हीन बनता जा रहा है। मन में उज्ज्वलता नहीं है; बाहर उज्ज्वलता है। हृदय में दर्शन (श्रद्धाभाव) नहीं है, बाहर प्रदर्शन खूब है। ज्ञान का क्षेत्र फँस रहा है; परन्तु नैतिकता गिर रही है। ऊँचे पदों पर बैठे प्रतिष्ठित लोग नीच-से-नीच आचरण कर रहे हैं।

अन्य धर्मों ने सम्यग्दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र्य के स्थान पर भक्ति, ज्ञान तथा कर्म को माना है। ये सम्यग्दर्शन, ज्ञान, एवं चारित्र्य के ही नामान्तर हैं। मान्यता में सिर्फ इतना अन्तर है कि जैनधर्म तीनों के मेल को मुक्ति का मार्ग मानता है जबकि अन्य धर्म केवल भक्ति, या ज्ञान, या कर्म से भी मुक्ति मानते हैं। वैसे तीनों के समन्वय-से-मुक्ति की धारणा ही युक्ति-संगत है। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में लिखा है—

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक-दूसरे से मिल न सके,
यह विडम्बना है जीवन की॥

एक जैन कथा के अनुसार जब लोहाचार्य अग्रोहे (हिसार के पास) पहुँचे तब वे बेहोश हो गये थे। उन्हें बेहोश देख उनके गुरु ने उन्हें सल्लेखना दे दी। जब लोहाचार्य होश में आये तो स्पष्ट हुआ कि उनका रोग शान्त हो रहा है। ऐसी स्थिति में उनके गुरु ने उन्हें अनुमति दी कि वे नये श्रावक बनायें और उनके यहाँ भी आहार लें। लोहाचार्य नये श्रावक बनाते समय उन्हें णमोकार मन्त्र जपने तथा देवदर्शन करने की शिक्षा देते थे। ये दोनों कार्य श्रद्धा-के-बिना संभव नहीं हैं; अतः उसके जीवन्त प्रतीक हैं। स्वाध्याय करने की प्रेरणा भी वे देते थे, यह कार्य

सम्यग्ज्ञान के अनुकूल था। पानी छान कर पीने, रात्रि-भोजन न करने एवं सप्त व्यसन त्याग करने की प्रतिज्ञा भी वे कराते थे। यह कार्य चारित्र के अनुकूल था। इस प्रकार वे नये श्रावक बनाते थे।

हम लोग यदि इन स्थूल तथा पालन करने में सरल बातों को भी पालते रहें तो भी मोक्षमार्ग पर बने रहेंगे। जो लोग लोहाचार्य द्वारा जैन बनाये जाने वाले लोगों को बतायी जाने वाली मोटी-मोटी बातों को भी यदि नहीं पालते हैं तो वस्तुतः वे सामान्य श्रावक की श्रेणी में भी नहीं आते।

श्रावक को अपने से वही प्रश्न पूछने चाहिये, जो एक धर्मशाला का मुनीम किसी यात्री से सराय में स्थान देने से पूर्व पूछ कर रजिस्टर में दर्ज करता है। तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? तुम्हें यहाँ (इस नगर में) क्या काम है? कितने दिन यहाँ ठहरना है? और यहाँ से कहाँ जाना है? यदि वह अपने से ये प्रश्न पूछे कि 'तुम कौन हो?' तो उत्तर मिलेगा: 'तेरा स्वरूप हाड़-माँस का पिण्ड मात्र नहीं है बल्कि ज्ञान, दर्शन, चैतन्य एवं आनन्दमय है'। अन्य प्रश्न होंगे— हमने किस गति से आ कर जन्म लिया? क्या इस दुर्लभ मनुष्य-जन्म को पा कर केवल धन कमाना और भोगोपभोग करना ही उपयुक्त हैं, या इसके अतिरिक्त आत्म-कल्याण एवं परोपकार आदि परमार्थ भी जरूरी है? यह मनुष्य-जन्म कितने दिन का अतिथि है (अर्थात् स्थायी नहीं है)? हम कैसे काम कर रहे हैं? इन कर्मों के आधार पर हमें कौन-सी गति प्राप्त होगी? इस/ऐसे स्वस्थ चिन्तन से जीवन धार्मिक एवं सम्यक् बनेगा।

पेशा (आजीविका) भी ऐसा चुनना चाहिये जो श्रावकोचित हो। संकल्पी हिंसा वाले, चर्म-उद्योग, वाले अथवा शराब वाले व्यवसाय नहीं करने चाहिये। ऐसी नौकरी भी नहीं करनी चाहिये, जिसमें हिंसा के कार्यों में योग देना पड़ता हो जैसे मांसाहार का आयोजन, अथवा मछली-पालन (फिशरी), मुर्गी-पालन (पोल्ट्री) अथवा सूअर-पालन तथा विक्रय। जहाँ तक संभव हो मादक द्रव्यों एवं आमिष आदि के व्यापार से बचना चाहिये; क्योंकि इनका दूसरों के जीवन पर अपकारी प्रभाव पड़ता है।

श्रावकाचार का पालन न केवल आत्मकल्याण एवं धार्मिकता के अनुकूल है, बल्कि सांसारिक सुखों के लिए भी उचित है। इसके पालन से समता जागृत होती है, तनाव कम होता है, और सांसारिक सुखों में वृद्धि होती है। शरीर भी स्वस्थ एवं दीर्घायु बनता है। पहिले सभी प्रकार के अपराधों में जैनों की संख्या नगण्य रहती थी, वे प्रशंसा के पात्र भी बनते थे और आदर्श भी माने जाते थे; किन्तु आज स्थिति भिन्न है।

आत्मा को सांसारिक अवस्था में शुद्ध-बुद्ध मान व्रताचारण को अनावश्यक मानना हमारी भूल है। हमें स्थूल श्रावकाचार का पालन तो करना ही चाहिये साथ ही पर्वादि के दिनों में व्रतादि भी करने चाहिये। □ □



जीवन-धारा

चेतना की जो जीवन-धारा
मेरी रक्त-शिराओं में
दिन-रात बहा करती है—
वही गतिमान है अखिल सृष्टि में
एक लयात्मक नृत्य बन कर ।
एक ही चेतना
जो खुशी से पागल गाती फिरती है
धरती के कण-कण में
हरी घास के हर तृण में
और फूट पड़ती है
फूलों-पत्तों की लहरों में ।
वही प्राणिक चेतना
जन्म और मृत्यु के
समुन्दर-रूपी झूले में झूलती है;
वही ज्वार और भाटे में चढ़ती-उतरती है ।
उसी प्राण-शक्ति की ऊर्जा से
मेरे रोम-रोम थरथराते हैं
और
यह मेरा सौभाग्य है
कि युगों-युगों के
इसी चैतन्य की जलधारा
मेरे रक्त में
अविराम बहती है ।

मूल अंग्रेजी : रवीन्द्रनाथ टैगोर
हिन्दी-रूपान्तर : दिनकर सोनवलकर

पूर्ण एकत्व

रेत के कण-कण में
पूरी दुनिया को देख लेना;
और
देखना सौन्दर्य
एक जंगली फूल में !
करना अनन्त के दर्शन
—अपनी हथेली में,
और महसूस करना
समय की अनन्तता
हर एक लमहे में !!

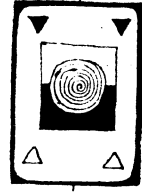
मूल : विलियम
रूपान्तर : दिनकर सोनवलकर

अलौकिक संवादत्व

जब भी मैं अपनी आँखें खोल कर
देखता हूँ बाहर की दुनिया को
तब मुझे लगता है
कि मेरा वजूद
समुन्दर में एक बूंद की तरह है;
लेकिन जब मैं
अपने भीतर झाँकता हूँ
तो मुझे पूरी दुनिया
अपने मन के समुन्दर में
एक बुलबुल की मानिन्द
गाती हुई लगती है ।

मूल : इनायत खान
रूपान्तर : दिनकर सोनवलकर

काम यह कठिन है : बहुत कठिन



हम नंगे पैदा हुए थे; किन्तु हम ही ने कुण्ठाग्रस्त हो कर अपने हर स्तर पर कपड़े पहन लिये—हर स्तर से तात्पर्य अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय कोश-स्तरों से है। परिणाम यह हुआ कि हमारा वास्तविक 'मैं' हमारी आँखों से ओझल हो गया और हम खो गये। हम बहुत अधिक समय कहला कर भी खोखले और निष्प्राण हो गये।

—डॉ. प्रद्युम्नकुमार जैन

धर्म मनुष्य को परत-दर-परत नंगा कर देने की प्रक्रिया है। जीवन की चंचकोशीय संरचना में प्रत्येक कोश-स्तर पर जो जितना नंगा हो सके वह उतना ही धार्मिक है। नंगा होने पर ही मनुष्य की मौलिकता उभरती है। वह वह होता है जो वह है, वास्तव में, यथार्थ में। मौलिकता में ही वह सृजनशील होता है। सृजनशीलता की चरम अवस्था ही परम आनन्द की अवस्था है। परम आनन्द में ही मनुष्य की मुक्ति निहित है; और मुक्ति ही धार्मिक जीवन का चरम साध्य है। नग्नता उस साध्य का साधन है। नग्न होना ही धार्मिक जीवन-पद्धति है। नग्न होने के अलावा दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है मुक्त होने के लिए: तनाव से, दुःख से, त्रासदी से। अब यह दूसरी बात है कि कौन, कैसे, कितना नंगा हो पाता है, लेकिन नंगा होना प्रत्येक धार्मिक जीवन-शैली का हेतु है।

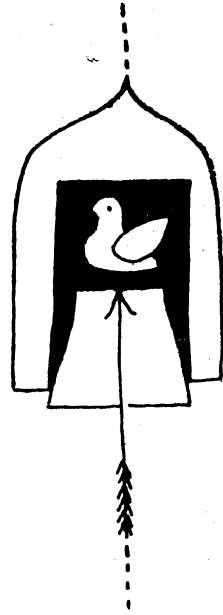
काम यह कठिन है, बहुत कठिन। अपने मौलिक स्वरूप पर कपड़ा लपेटने की विभाव परिणति (स्वभाव-से-विपरीत) काफी गहरे में बैठी है। कहीं बहुत गहरे से ही वह अपनी जकड़बन्दी की लगाम कसे हुए मनुष्य को कुछ-से-कुछ होने के लिए मजबूर कर रही है। वैसे मनुष्य भी एक जानवर है; लेकिन वह अन्य जानवरों से भिन्न इसी बात में है कि उसे नंगा रहने में शर्म लगती है, जानवरों को वैसे शर्म नहीं लगती। तो प्रश्न 'पैदा होता है कि मनुष्य ने शरीर ढँकने की इस शैली का विकास आखिर क्यों किया? क्यों उसे कपड़े उतार फेंकना इतना कठिन कार्य लगता है? आइये, थोड़े व्यापक आधार पर विचार करें।

स्थूल दृष्टि से देखें, तो मनुष्यों में सार्वजनिक रूप से नंगे हमें तीन तरह के

लोग मिलते हैं : (१) अबोध शिशु, (२) असामान्य पगले; और (३) फक्कड़ अवधूत, या निर्धन्व मुनि। पहले अबोध शिशु को लें। प्रश्न है, शिशु अबोध किस बात से है? बनावट से न! वह सहज सरल प्राकृत है अपने मौलिक रूप में। मौलिक रूप में रमा हुआ वह परम सुन्दर कृष्ण-कन्हैया रूप है। वह जो कुछ करता है, सहज करता है। जहाँ चाहा टट्टी-पेशाब की, जो चाहा खाया-पिया, जैसे चाहा अपनी छुछ्छी से खेला। कहीं पर उसे गिल्ट (दोष, झिझक) नहीं, कोई तनाव नहीं। इसी गिल्टहीनता के कारण उसे अबोध और निर्दोष कहा गया; किन्तु कुछ काल के बाद उस की टोका-टाकी शुरू होती है। वह 'क्या करे, क्या न करे' की समस्या में पड़ जाता है। विशेष रूप से उस पर जो वर्जनाएँ थोपी गयीं वे उसके मलमूत्र की क्रियाओं और उसी के अंगों से संबंधित रहीं। वह अपने कामांगों के प्रति सशक्त हुआ और उनकी क्रियाओं, जो अभी तक सहज थीं, पर चिन्तित होने लगा। बस, इसी चिन्ता और सशक्तता के बिन्दु से शिशु की अबोधता तिरोहित हो गयी और वह अब चिन्तानुर हो कर कुष्ठाग्रस्त होने पर मजबूर हो गया। कुष्ठाग्रस्तता ने ही उसे चोर बनाया; और वह अब चोर बन कर अपनी सहज वृत्तियों पर पर्दा डालने लगा। अब वह छिपाने लगा अपना वह कुछ जो वह वास्तव में था, और है, और दिखाने लगा वह जो वह नहीं है। इस प्रकार उसके जीवन में शुरूआत हुई झूठ, चोरी और वंचकता की। इन्हीं से फूटी बाद को संग्रह-वृत्ति और छीना-झपटी की हिसावृत्ति। यह सारा विकास जब हो लिया तो बच्चा अधिक-से-अधिक सभ्य कहा जाने लगा, प्रशंसा होने लगी उसकी। तो, सभ्यता का विकास तब हुआ जब शिशु ने अपना सहज, मौलिक नग्न रूप खो दिया और उसने कपड़े पहनने और छिपाने की कला में महारत हासिल कर ली; फिर हम भूल गये कि हम कभी शिशु थे, नंगे रहे थे और वैसे रहने में कोई परम सुख था।

हम नंगे पैदा हुए थे, किन्तु हम ही ने कुष्ठाग्रस्त हो कर अपने हर स्तर पर कपड़े पहन लिये—हर स्तर से तात्पर्य, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय कोशस्तरों से है। परिणाम यह हुआ कि हमारा वास्तविक 'मैं' हमारी आँखों से ओझल हो गया और हम खो गये। हम बहुत अधिक सभ्य चलते-फिरते आदमी होते हुए भी खोखले हो कर जिन्दा लाश हो गये। हम घुटने लगे, त्रस्त होने लगे, रोने लगे; तो फिर जब इस घुटन से मुक्ति पाने का कोई सभ्य रास्ता नहीं मिला, तो आदमी पागल हो गया, दूसरी कोटि का आदमी। उसने सभ्यता के सारे बन्धन तोड़ फेंके और वह मुक्त हो कर सड़कों पर नंगा घूमने लगा। वह बच्चों की तरह आचरण करने लगा, किन्तु ओह, उसे समाज से वह प्यार और सहानुभूति नहीं मिल सकी जो एक बच्चे को मिलती है। इस तरह उसकी स्थिति बेहद संकटापन्न हो गयी। सहानुभूति की जगह लोग उसे पत्थर मारने लगे, नफरत करने लगे। वे यह भूल गये कि वे भी उसी दिशा में बढ़ते हुए पागल इंसान हैं। पागल उनसे कोई भिन्न जीव नहीं है।

तो, सोचने की बात है—मनुष्य का शिशु-रूप उससे छिन जाने के बाद उसे फिर पाने के लिए वह पागल बना, नंगा होने का सुख प्राप्त करने के लिए वह पागल बना; किन्तु वह रूप उसे मिल न सका। समाज ने उसे शिशु मान्य नहीं किया; फलतः उसे प्यार से वंचित कर दिया गया। ऐसा क्यों हुआ? इसलिए, कि गया हुआ समय फिर वापस नहीं आता। विकास-क्रम में मनुष्य को अधिक-से-अधिक ज्ञान और संकल्पधारी होना चाहिये। प्रकृति की यह माँग है। जब ज्ञान और संकल्प के बिना मनुष्य ने अबुद्धिपूर्वक असंयत हो कर पुनः शिशुरूप धारण करने का प्रयास किया तो उसे पागल करार दिया गया और वह समाज की उपेक्षा का शिकार बना। वही मनुष्य जब सम्यग्ज्ञान को धारण कर दृढ़ संकल्प-शक्ति को ले कर संयत रूप में शिशु बना तो समाज ने उसे सिर आँखों पर उठा लिया। वह तीसरी कोटि का मनुष्य कहलाया—निर्ग्रन्थ मुनि, जो सड़क पर नंगा घूमते हुए भी लोगों का श्रद्धेय बना, जीवन का परम शास्ता।



नग्नता की उपर्युक्त तीन पर्यायों हमें देखने को मिलीं। शैशव की नग्नता सामान्य और सहज थी, किन्तु वह भंग होनी थी विकास-क्रम में, सभ्यता के परिवेश में। असामान्य नग्नता समाज और सभ्यता को ग्राह्य और स्वीकार्य नहीं रही; अतः उसका सुख अल्पजीवी सिद्ध हुआ और वह अनेक अनबूझी समस्याओं का वाहक बना। केवल तीसरी कोटि का नंगापन जो निर्ग्रन्थ मुनियों और फक्कड़ अवधूतों ने धारण किया समाज को ग्राह्य हुआ और उसका सुख दीर्घजीवी सिद्ध हुआ। ये मुनि और अवधूत ही धम्मकाय के जीते-जागते उदाहरण हुए, जिन्होंने मुक्ति के मार्ग की देशना की। वे स्वयं धर्मरूप बन कर धार्मिक चारित्र के अग्रणी देवदूत माने गये। भारत में ऐसे लोग ही धर्मप्राण मान्य हुए। भागवत धर्म के ऋषभदेव, जड़ भरत, शुकदेव, श्रमण धर्म के तीर्थंकर महावीर, संजय बेलट्टिपुत्र, पकृथ कच्चायन, आजीवक धर्म का शास्ता मंखलि गोशाल इसके प्रमुख उदाहरण हैं। गौतम बुद्ध की भी पहली दीक्षा नग्न साधु आलारकालाम के अंतेवास में हुई और बृद्धत्व-प्राप्ति तक वे नग्न साधु ही रहे। उधर ईसा मसीह के बारे में भी कहा जाता है कि उन्होंने अपना अधिकांश जीवन पश्चिमोत्तर भारत में किसी नग्न साधु के सत्संग में व्यतीत किया और हो सकता है कि वे स्वयं भी नंगे हुए घूमते रहे हों। कैलाशवासी शिव तो नंगों के सिरमौर ही कहे जाते हैं। इसके अतिरिक्त भी जिन धर्म-गुरुओं ने

वस्त्र धारण किये वे इतने अल्प हैं कि उन्हें यदि नंगा नहीं, तो अधनंगा तो कहा ही जा सकता है। धर्म के द्वारा नग्नता गौरवान्वित हुई और धार्मिक साधना का परम हेतु मानी गयी।

अब यदि हम-जैसे सभ्यों में-से कोई नंगे आदमी से पूछे कि वह नंगा क्यों है, कपड़े क्यों नहीं पहनता, तो क्या इससे 'उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे' कहावत चरितार्थ नहीं होती? क्योंकि कपड़ा पहने व्यक्ति से ही यह पूछा जाना अधिक सही है कि जब वह मूलतः नंगा था, तब उसने कपड़े क्यों पहने? उसे नंगा रहने, या अब नंगा होने में शर्म क्यों लगी? और यदि उसे शर्म लगी तो क्या यह जरूरी है कि किसी दूसरे को भी वह लगे? मैं समझता हूँ उसके पास इसका कोई तर्कयुक्त जवाब नहीं है। आइये, हम उसके तर्कसम्मत उत्तरों की खोज करें और समझें कि वह नग्नता से इतना अधिक घबराया हुआ क्यों है?

कपड़े पहिनना, या कामांग ढँकना मात्र प्रतीक है हमारी अपराधी अंतश्चेतना की अवस्था का, जिस में ग्रन्थि-बन्धन किये बँठी है घुटन और जीने की त्रासकारी वेदना। इस घुटन और वेदना से हम उबरना चाहते हैं, क्योंकि इसके रहते हमारी मौलिकता और सृजनशीलता क्षतिग्रस्त है। सृजनशीलता के अभाव में हम नैसर्गिक आनन्द से वंचित हैं। आनन्द के बिना हमारा जीवन मुर्दा है। हम प्रतिक्षण मृत्यु के शिकार हैं। हम मृत्यु की विभीषिका से मुक्त होना चाहते हैं। इस मुक्ति का संदेश देता है धर्म।

धर्म का मुक्ति-संदेश है ब्रह्मचर्य। ब्रह्म यानी ज्ञान, सम्यक् ज्ञान में चरण। ज्ञान किस का? वस्तुस्थिति का। वस्तुस्थिति यह कि हम वर्जना के शिकार हैं। उस वर्जना ने हमारे अंदर 'सेक्स' के बारे में एक हीवा बिठाया है। उसके साथ पाप-बोध जुड़ गया है।

सहज हो कर जियें। यही है सम्यक् ज्ञान, वह ज्ञान, जिसे हम 'ब्रह्म' कहते हैं, बल्कि इससे भी आगे, ब्रह्म आनन्द में रमा हुआ ज्ञान है। वह सत् चित्त आनन्द से परिव्याप्त ज्ञान है, जिसमें चरण करना या रमना, वास्तव में ब्रह्मचर्य है। तो, ब्रह्मचर्य सेक्स की वर्जना का हेतु नहीं है, अपितु उसे गरिमा-मण्डित करने की विधा है; इसलिए सच्चे ब्रह्मचारी में सेक्स के प्रति कोई गिल्ट होने का प्रश्न नहीं उठता। ऐसा गिल्टहीन आदमी यदि नंगा हो जाए तो इसमें क्या आश्चर्य? नंगा होना तो मन की निर्दोष सहजता का प्रतीक है, वह भला अपने कामांग-दर्शन से घबराया हुआ क्यों रहे? भले ही वह किसी जरूरतवश, चाहे मौसम की कठोरता से या औरों के कहने से, कपड़े पहिन ले, किन्तु ऐसे व्यक्ति को कपड़े उतार फेंकने में झिझक नहीं होती। वह मन से सदैव नंगा रहता है। यह वेञ्जिक नग्नता ही उसका सच्चा ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य को मात्र मैथुन-क्रिया की वर्जना से जोड़ना मिथ्या दृष्टि है। मिथ्यात्व सम्यक् ज्ञान का सब-से-बड़ा शत्रु है; इसीलिए अमैथुन

पर जोर दे कर ब्रह्मचर्य को पालना किसी पागल से भी बड़ा पागलपन है। ब्रह्मचर्य की धारणा केवल गिल्टहीन, निर्दोष, सहज मन की अवस्था में होती है।

ब्रह्मचर्य का तात्पर्य है परत-दर-परत नंगा होना, अपने ब्रह्म को नंगा करना, ज्ञानानन्द से ओत-प्रोत अपने आत्म को शत-प्रतिशत उघाड़ना और अपने प्रियतम से खुले बदन आलिगन करना। यह तब होगा जब हम बेझिझक निर्भय अपने अंतः प्रदेश में घुसेंगे और वहाँ की सिसकती कराहती जनता-जनार्दन की पीड़ा पर ध्यान देंगे। यही फटेहाल जनता है आपके प्रियतम राजा की प्रजा, जिसकी उपेक्षा कर आप अपने प्रियतम को खुश नहीं कर सकते। यही है ब्रह्म की माया, जिससे आपको साक्षात्कार करना ही है। इसके ऊपर से अपनी उपेक्षा या डर का काला नक्काब हटाइये। उसे नंगा कीजिये या होने दीजिये खुद अपने सामने और उसकी कुण्ठित रूमानियत की शिकायतें सुनिये। अपने ब्रह्म की इस माया के साक्षात्कार के बाद, उसी की राजी और मर्जी से ही आप ब्रह्म तक पहुँच सकते हैं, ब्रह्मचारी हो सकते हैं। इसे दुत्कार कर आप अपने सत्य से ही भागते रहेंगे और भागते हुए शुतुरमुर्ग की तरह अपनी आँखें किसी स्वकल्पित लोक में छिपायेंगे, और कपड़ा ओढ़े हुए निरन्तर मृत्यु-भय से त्रस्त भव-समुद्र में डूबते रहेंगे।

नग्नता, या निर्वसनता निर्ग्रन्थता की पहचान है। जिसे निर्वसन होने में झिझक है, उसकी निर्ग्रन्थता में कहीं-न-कहीं खोट है; इसलिए निर्ग्रन्थ दीक्षा के लिए निर्वसन होना जरूरी होता है, यद्यपि कोई यह कह सकता है कि निर्ग्रन्थ भाव धारण करना ही काफी है, कपड़े उतारने की क्या जरूरत? बाह्य पर इतना जोर क्यों? तो यह तो ऐसा ही तर्क हुआ कि दीन-दुखियों पर करुणा का भाव रखना ही काफी है, उन पर दया करने की क्या जरूरत? लेकिन नहीं, भाव और तदनुसार कर्म दोनों साथ-साथ होने चाहिये। बल्कि कभी-कभी बाह्य का महत्त्व अधिक हो जाता है। जैसे तैरने की इच्छा है, परन्तु पानी की धार में उतरने की झिझक है, तो प्रशिक्षक झिझक दूर करने के लिए प्रशिक्षार्थी को जबरदस्ती धारा में धकेल देता है और उसे गोते लगवा देता है, क्योंकि वह जानता है कि इस विधि से प्रशिक्षार्थी तैरना जल्दी सीखेगा। कभी-कभी प्रारम्भिक झिझक सम्पूर्ण साधना में बहुत बड़ी बाधा खड़ी किये रहती है और साधना का स्वरूप लँगड़ा बना रहता है; इसलिए निर्ग्रन्थ होने के लिए नग्नता कसौटी है। साथ ही नग्नता को सार्थक बनाने के लिए निर्ग्रन्थ भाव का होना भी जरूरी है। यदि कोई मग्न ही रहे और निर्ग्रन्थ न हो सके, तो वह बेशर्म धोखेबाज़ है खुद अपने अन्तःकरण के सामने। अंतरंग और बहिरंग दोनों ही शर्तें जब पूरी हों तब हो सकता है कोई अवधूत, निर्ग्रन्थ मुनि और तभी वह सच्चे धर्म-मार्ग का अनुयायी कहला सकता है। ऐसे धम्म-मार्ग का अनुयायी होना मामूली साहस का काम नहीं है। निर्ग्रन्थ हो कर नग्न हो जाना बहुत बड़ा पराक्रम है। इस पराक्रम की तुलना किसी दूसरे पराक्रम से नहीं की जा सकती। यह अतुलनीय पराक्रम है; इसीलिए ऐसे पराक्रमी



व्यक्ति को जितेन्द्रिय की संज्ञा देते हैं। जितेन्द्रिय व्यक्ति ही अतिमानव (सुपरमेन) है। वहीं ब्रह्मचर्य की पराकाष्ठा है और धर्म का साक्षात् रूप है।

अब कुछ शब्द ऐसी धर्म-संस्था के प्रति, जो विश्व के सम्पूर्ण ज्ञात इतिहास में अपना सानी नहीं रखती। अद्भुत संरचना है उस संस्था की। वह संस्था है जैनधर्म की दिग्म्बर शाखा। इस शाखा ने नग्नत्व को संस्थाबद्ध करते हुए गरिमा-मण्डित किया है। वैसे नग्नत्व की प्रशंसा करने वाले तो बहुत मिलेंगे और इक्के-दुक्के अनेक सम्प्रदायों में उनके कुछ साधु नंगे भी मिल जाएँगे, किन्तु नग्नता को आचार-संहिता का अभिन्न और अनिवार्य अंग घोषित करने वाला पराक्रमी सम्प्रदाय जैन सम्प्रदाय के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र नहीं दिखायी पड़ता। नग्नत्व आचार-प्रक्रिया की अनिवार्य परिणति है—ऐसा साहसिक उद्घोष दिग्म्बर जैनों के अलावा इस धरती पर कोई और नहीं कर सका है। आज भी उस सम्प्रदाय के साधु नंगे विचरते हुए प्रायः दिखायी पड़ जाते हैं। कितनी ईमानदारी है इन साधुओं की अपने सम्प्रदाय की उद्घोषणा और निष्ठा के प्रति यह देखने और सराहने की चीज़ है, खासतौर से आज के युग में जब कि धरती बेईमान लोगों की क्रीड़ास्थली बनी हुई है जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में।

□ □

स्वयं में उठते-घुमड़ते सवाल

समर्थ वह नहीं है, जो दूसरों का अस्तित्व मिटाना चाहता है; बल्कि समर्थ वह है, जो दूसरों के अस्तित्व की रक्षा करता हुआ अपना अस्तित्व बरकरार रखता है। वस्तुतः जो समर्थ होगा, वह किसी दूसरे द्वारा खींची गयी लकीर को मिटाने की अपेक्षा, उससे अधिक गहरी, मोटी, और लम्बी लकीर खींचना बेहतर समझेगा।

—डॉ. एम.पी. पटैरिया

आज आम आदमी चाहता है—'इस दुनिया में वह कुछ इस तरह से जिये कि कोई दूसरा न जी सके; इतने ठाठ से रहे कि सबके ठाठ फीके पड़ जाएँ'। अपनी इस चाहत को पूरा करने के लिए वह सोचता है—'दुनिया-भर की दौलत, उसके कब्जे में आ जाए; दुनिया-भर-के-समाचारों में उसी का नाम सुखियों में छपे; और दुनिया-भर की हर होनी/अनहोनी में, उसका सम्बन्ध जुड़ता चला जाए।'

ये विचार, आज के आदमी के ही हों, यह बात नहीं है। आदमी हो या जानवर; पक्षी हो या कीड़ा-मकोड़ा; हर प्राणी, स्वयं-को सब-से ज्यादा समर्थ और खुशहाल बनाना चाहता है। ये भावनाएँ, अतीत में भी रहीं, भविष्य में भी रहेंगी। प्राणिमात्र का यह स्वभाव चिरन्तन है, शाश्वत है; न कभी मिटा है, न मिटेगा; न कोई मिटा सका है, न मिटा सकेगा।

आशय यह है, आदमी के सोच-विचार के सिर्फ दो ही मुद्दे होते हैं। एक तो वह स्वयं; दूसरा, उसके आस-पास का परिवेश; जिसे हम 'दुनिया' के नाम से जानते/कहते हैं। जिस क्षण आदमी जन्म लेता है, उसी क्षण, वह अपने 'अस्तित्व' का, अपने 'वजूद' का अहसास करने लगता है। 'मैं हूँ' यह बात, किसी को भी कोई दूसरा नहीं समझाता; 'सामने दिखलायी पड़ने वाली दुनिया भी है' यह भी, वह स्वयं ही महसूस करता है। धीरे-धीरे, जब वह बड़ा होने लगता है, तब, उसकी जिज्ञासा जागती है—'उसके आस-पास क्या-क्या है? कैसा है यह सब?' यहीं से, वह दुनिया की खाना-तलाशी शुरू कर देता है। इसमें मौजूद एक-एक चीज़ को बारीकी से देखता है; उसे जानने/पहिचानने की कोशिश करता है।

घर-आँगन, गाँव-शहर, हरे-भरे खेत, नदी-पर्वत, पेड़-पौधे, घरों/दुकानों में सजी बहुविध वस्तुएँ, अलग-अलग स्वाद वाले व्यञ्जन/भोजन, रंग-बिरंगे वस्त्र-आभूषण आदि-आदि। इन सबकी उपयोगिता, महत्ता और गुणवत्ता को, जब आदमी जानने लग जाता है, तब वह सोचता है—'कितने लुभावने हैं ये सब?' इसी आकर्षण-वश, इन सबको हथिया लेने के प्रयास में, वह जीवन-भर उलझा रह जाता है। जिंदगी के आखिरी क्षणों तक, जिनका मन/मस्तिष्क इन्हीं सब को पाने के लिए

बेचैन बना रहता है, उन्हें, धर्म/दर्शन की भाषा में 'संसार' कहा जाता है। ऐसे लोगों से, संसार की सत्ता सार्थक बनती है, और ऐसी भावनाओं से आदमी की सांसारिकता, शाश्वतता में ढलती है।

परख कर देख लीजिये, जगत् के आकर्षणों में भूला-भटका आदमी, दुनिया की हर वस्तु को अपने अधीन कभी नहीं बना पाता। जो कुछ चीजें, उसे उपलब्ध हो भी जाती हैं, उनसे, न तो उस की चाहत सन्तुष्ट हो पाती है, न ही उसे कुछ ऐसा सुख/आनन्द मिलता है, जो उसकी चाहत को विराम दे दे; या फिर, उसके जीवन में अक्षय खुशियाँ भर दे। इन्हीं तीन कारणों से, समझदार/विवेकशील आदमी सोचने को विवश हो जाता है—'क्या है यह दुनिया? ये सारी चीजें, सदा एक-सी क्यों नहीं बनी रहती? इनकी विनाशशीलता के मूल में कौन से मौलिक कारण हैं? कहाँ है इस सबका ओर-छोर? क्या ऐसा भी कोई क्षण आयेगा, जब ये सारी चीजें एक साथ नष्ट हो जाएँगी? तब, इस दुनिया का स्वरूप कैसा बनेगा? इसका अस्तित्व भी बचेगा या सबका सब शून्य बन जाएगा?'

इन सवालों में उलझा मन/मस्तिष्क, आदमी को बेचैनी में डुबो देता है और और दुनियादारी के फर्जों को भुला/बिसरा कर, इन्हीं सवालों के जवाब तलाशने में तल्लीन बना डालता है। किन्तु, उसकी ज़िदगी-भर की तलाश, इन सवालों का कोई 'आखिरी जबाब' नहीं दे पाती; क्योंकि, जगत् की संरचना और सत्ता का सही स्वरूप, दुनिया की आँखों से कभी भी देखा/परखा नहीं जा सकता। इसके लिए ज़रूरत होती है उस तीसरी आँख की, जिसके एक बार खुल जाने से, हमारी दोनों आँखें, दुनियावी चीजों को देखती/परखती हुई भी उन्हें अनदेखा-सा मानने लगती हैं। यही अन्तर्दृष्टि, 'दर्शन' के नाम से, दार्शनिक जगत् में जानी/पहिचानी जाती है।

इस तीसरी/भीतरी आँख वाले आदमी का अन्तस् स्वयं के अस्तित्व को ले कर उठे सवालों को, स्वयं से पूछता है—'कौन हूँ मैं? कहाँ से आया हूँ यहाँ? कैसे मिला मुझे यह शरीर? मौत के बाद मेरी शब्दिसयत क्या होगी? किसी और दुनिया में जाऊँगा मैं? कैसी होगी वह दुनिया? इसी दुनिया-जैसी, या इससे कुछ अलग? कितनी दुनियाएँ ऐसी हैं, जहाँ, लोगों का आना-जाना लगा रहता है? कोई ऐसी भी दुनिया है, जहाँ पहुँचने के बाद, किसी और दुनिया में आना-जाना न पड़ता हो?'

इन सवालों से, आदमी के मन में, विकल्पों का ऐसा ज्वार उठता है, जो कहीं ठहरने का नाम नहीं लेता; और मस्तिष्क में, जिज्ञासाओं का ऐसा महासागर उमड़ पड़ता है, जिसे ठहराव देने वाला कोई किनारा नहीं मिल पाता। ये सवाल, न तो आज के आदमी ने खड़े किये हैं, न ही आज की सामाजिकता ने इन्हें पैदा किया है बल्कि हज़ारों-हज़ार सालों से, इसी क्रूर बेचैन होता चला आ रहा है आदमी। फिर क्या वजह है, जो इन सवालों के अन्तिम समाधान अब तक नहीं ढूँढ़े जा सके?

किसी एक दृश्य का फोटोग्राफ, यदि कई कोणों से लिया जाए, उसका चित्र कई लोग खींचें; तो, दृश्य एक होने पर भी, इन सारे चित्रों में, भिन्नता सहज ही आ जाएगी। इन अलग-अलग चित्रों में से किसी भी एक चित्र को 'सही' कहना, और शेष चित्रों को 'गलत', 'कल्पित', या 'असत्य', ठहराना, उचित नहीं माना जाएगा। यही स्थिति, पूर्वोक्त सवालों के जवाबों के बारे में मानी जा सकती है। जिन ऋषियों/मुनियों ने, विचारकों/चिन्तकों ने, अपनी साधना-अनुभूतियों के बल पर, पूर्वोक्त सवालों के जो-जो उत्तर दिये वे हमें गलत, भ्रामक, या अपूर्ण जैसे भले ही लगते हों; सच भी तो हो सकते हैं। उन्हें, तब तक, गलत नहीं कहना चाहिये, जब तक हम स्वयं, उन सवालों का जवाब दे पाने की सामर्थ्य, अपने साधनाबल से, स्वयं में नहीं जुटा लेते। इतना सामर्थ्य जुटा लेने पर ही वस्तुतः किसी को हक मिलता है, दूसरों की मान्यताओं/सिद्धान्तों का खण्डन/मण्डन करने का।

मेरी दृष्टि से, स्थापित मान्यताओं का खण्डन करना, न तो बुद्धिमत्ता का परिचायक होता है, न ही इस बात का, कि खण्डन करने वाला व्यक्ति, पूर्व मान्यताओं के संस्थापकों से विशिष्ट ज्ञान/साधना-सामर्थ्य रखता है। मेरी मान्यता है—समर्थ वह नहीं है, जो दूसरों का अस्तित्व मिटाना चाहता है; बल्कि समर्थ वह है, जो दूसरों के अस्तित्व की रक्षा करता हुआ भी, अपना अस्तित्व बरकरार रखता है। वस्तुतः, जो समर्थ होगा, वह किसी दूसरे द्वारा खींची गयी लकीर को मिटाने की अपेक्षा, उससे गहरी, मोटी और लम्बी लकीर खींचना, ज्यादा बेहतर सम्भरेगा। यदि, एक से अधिक, छोटी-बड़ी तमाम लकीरें खींची जा चुकी हों, तब कोई और नयी लकीर खींचने की अपेक्षा, इन तमाम लकीरों के अलग-अलग सिरों को, एक-दूसरे से जोड़ कर, उन्हें एक लम्बी लकीर का आकार दे कर, अपनी सच्ची सामर्थ्य का उदाहरण प्रस्तुत करेगा।

लोग, तीर्थ करने जाते हैं। वहाँ के पवित्र जल में स्नान करने से पूर्व, अपने खानदानी पण्डे के पास जाना, और उसी के द्वारा बतलायी गयी विधि से स्नान करना, वे अपना नैतिक/धार्मिक कर्तव्य मानते हैं। कुछ लोग तो, उनकी बहियों में अपना नाम दर्ज करा कर, स्नान किये बगैर ही वापिस चले आते हैं। जरा गौर से विचार कीजिये, तीर्थ जाने वालों के लिए, वहाँ के पवित्र जल में स्नान, निर्मल होने का भाव ही प्रधान लक्ष्य होता है। यह स्नान, किसी पण्डे के माध्यम से न करके तीर्थयात्री द्वारा स्वयं सीधे तीर्थ-जल तक पहुँच कर, कर लिया जाए, तो उसके स्नान का, उसकी निर्मल भावना का मूल्य, क्या किसी तरह कम हो जाएगा ?

दरअसल, तीर्थ-स्थानों के पवित्र जल में स्नान करने के साथ, पण्डे का कोई तारतम्य नहीं होता; क्योंकि, पण्डों के पास उनके ऊँचे-ऊँचे ङण्डों पर लहराते बड़े-बड़े झण्डे, और तीर्थयात्रियों का पीढ़ी-दर-पीढ़ी हिसाब-भर है। उनमें न तो तीर्थों-जैसी पवित्रता है, न ही तीर्थ-जल-जैसी निर्मलता और शीतलता है। पावनता और निष्कलुषता के बगैर, कोरी पण्डा-परम्परा पर निर्भर रहने वाली, तमाम धर्मों/दर्शनों की शाखा/प्रशाखाओं को भी, इसी कोटि का माना जा सकता है। इन सबके सन्तों/आचार्यों से यह आशा करना कि वे पूर्वोक्त सवालों के आखिरी जवाब दे पायेंगे, गर्दभशृङ्गवत्, आकाश-कुसुमवत् और वन्ध्यापुत्रवत् निस्सार माना जाएगा।

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/२९.

‘जो, जैसा करेगा, वैसा ही भरेगा’ यह मान्यता है कर्मवादियों की। यदि हम बबूल बोयेंगे, तो बबूल का फल ही पायेंगे; आम का बीज बोयेंगे, तो आम का फल खायेंगे। बबूल बो कर आम कोई नहीं पा सका; आम बोने वाले को, बबूल कभी नहीं मिला। हम, किसी के सिद्धान्तों का खण्डन करेंगे, तो हमारी मान्यताओं का खण्डन करने वाला भी कोई-कोई, पैदा हो ही जाएगा। खण्डन-मण्डन का यह कर्म-प्रपञ्च, हमें नैष्कर्म्य की स्थिति में न पहुँचा कर, कर्म और कर्मफल के गड्ढ में, और अधिक गहराई तक पटक देगा; फिर, एक दार्शनिक, जिसका लक्ष्य नैष्कर्म्य की साधना हो, वह, कर्म-परम्परा के मकड़-जाल में भला क्यों उलझना चाहेगा? इसलिए, वास्तविक धर्म, वास्तविक दर्शन, वही हो सकता है, जो पर-निन्दा में, पर-खण्डन में लिप्त न हो।

विचार, वाणी, और व्यवहार में एकरूपता तभी आ सकती है, जब इन तीनों का मौलिक स्वरूप, ‘समत्व’ के धरातल पर खड़ा होगा। जब तक, हमारे भीतरी सोच-विचार में, कथनी-करनी में, आचार-व्यवहार में एकरूपता नहीं बनती, तब तक दूसरों से एकरसता की बातें करना, कोरा दिखावा, थोथा छलावा भर बन कर रह जाएगा। ऐसे दिखावों और छलावों से, किन्हीं भी सवालों के आखिरी जवाब नहीं दिये जा सकते।

धर्म/दर्शन का मौजूदा इतिहास बतलाता है—अब तक, अनेक ऋषियों/मुनियों ने कई ऐसे समाधान प्रस्तुत किये, जिन्हें पाने के बाद ऐसा अनुभव हुआ कि वे ‘आखिरी जवाब’ हैं; किन्तु कालान्तर में, इन्हीं सब में, नये-नये तर्क फिर उठे, नयी-नयी जिज्ञासाएँ फिर उभरीं; जिनके सामने, आखिरी जवाब जैसे प्रतीत होने वाले समाधान बौने साबित होते गये। वजह यह थी कि इन तमाम समाधानों में एकरूपता नहीं थी। कई मायनों में, वे एक-से नहीं थे।

गणित कहता है—‘हर सवाल का सही उत्तर, एक ही होता है’। चाहे जितने लोग उसे हल करें, सबका उत्तर, एक ही आयेगा। विज्ञान ने, अपनी प्रयोगशालाओं में, गणित के इस कथन पर, सच्चाई का ठप्पा लगा दिया है; किन्तु ‘मैं’ और ‘दुनिया’ से जुड़े सवालों के जो-जो भी जवाब/समाधान, अब तक मिले हैं; वे सब-के-सब भिन्न-भिन्न हैं। उनकी अन्तिमता पर, गणित और विज्ञान ने, फिर कई प्रश्न-चिह्न खड़े कर दिये हैं; इसलिए तमाम धार्मिक/दार्शनिक सिद्धान्तों की मौजूदगी के बावजूद, दुनिया का आम आदमी आज तक यह नहीं समझ पाया कि ‘जीव’ और ‘जगत्’ का यथार्थ रहस्य क्या है?

दरअसल, हर सवाल के पीछे एक जिज्ञासा छुपी रहती है। सही समाधान मिलने पर वह शान्त हो जाती है; किन्तु, यह समाधान, सर्वांशतः परिपूर्ण न हुआ, तो फिर कोई नया तर्क सिर उठाता है, और अगली जिज्ञासा को उभार कर खड़ा कर देता है। समाधानों की इसी अपूर्णता की वजह से, तर्कों और जिज्ञासाओं का सिलसिला चलता ही रहता है; तब तक, जब तक कि सारी जिज्ञासाओं को विराम देने वाला कोई ऐसा समाधान नहीं मिल जाता, जिसमें तर्क को फिर उठ खड़े होने की कतई गुंजाइश न रहे; बेशक, ऐसे ही समाधान को अन्तिम उत्तर माना जाएगा। □ □

बातचीत एक ऐसी प्रखर/प्रभावी विधा है, जिसके माध्यम से हम कठिन-से-कठिन/जटिल-से-जटिल समस्या का कोई समीचीन/तात्कालिक/कारगर समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

'तीर्थकर' ने इस विधा का कई दार्शनिक/सामाजिक संदर्भों में इस्तेमाल किया है और इस सिलसिले में उसे अपने सैकड़ों पाठकों से जो चिट्ठियाँ मिली हैं, उनसे पता चलता है कि वे इससे लाभान्वित हुए हैं और उनकी कई पेचीदा मुद्दों पर रचनात्मक पकड़ बनी है। कइयों ने तो प्रेरित/उत्साहित हो कर स्वयं को सम्बन्धित विषयों की गहराइयों में डाल लिया है।

इन्हीं सारे नतीजों से प्रेरित हो कर हमने 'श्रावकाचार विशेषांक' के लिए पाँच बातचीत रेकर्ड की हैं।

जिन मनीषियों/समाज-सेवियों से बातचीत संभव हुई; वे हैं : एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी, पूज्य आनन्द ऋषिजी (अहमदनगर), सौ. श्रीमती ललिता ताई (बम्बई), केवलचंदजी जैन (दिल्ली) तथा ज्ञानवृद्ध पं. फूलचंदजी शास्त्री (इन्दौर)।

मुनिश्री विद्यानन्दजी ने भारत/उसकी संस्कृति को समुज्ज्वल जो कुछ दिया है, वह किसी से छुपा नहीं है। उन्होंने देश की लोकशक्ति को सदाचार के लिए जगाया है/नयी करवट दी है/आधुनिक वैज्ञानिक संदर्भों में उसे जन-कल्याण की दृष्टि से देखा है, और अखिल विश्व को उन सारे खतरों से आगाह किया है जो उसके अतिस्व के चारों ओर हिंसा, क्रूरता, बर्बरता, तथा जानलेवा व्यसनों के रूप में मँडरा रहे हैं; फन उठाये खड़े हैं। हम किस क्रूर खण्डित/विघटित/विनष्ट हुए हैं—होते जा रहे हैं; तथा किन उपायों से हमें अपनी मर्यादाओं और परम्पराओं की रक्षा करनी चाहिये—इन सारी सावधानियों की स्वस्थ धड़कनें हम सुन सकते हैं उनकी इस बातचीत (पृ. ३३-५१) में।

स्थानकवासी संत पूज्य आनन्द ऋषिजी की गौरव-गाथा लोकोत्तर है। वे स्पष्टवादी संत हैं और भारतीय संत-परम्परा की जीवन्त नुमाइंदगी करते हैं। उन्होंने अपनी संक्षिप्त बातचीत (पृ. ५३-५४) में मिलावट की जो तीखी समीक्षा की है वह जैन साधुओं के लिए अनुकरणीय है। सारे साधुओं को उन्हीं के सुर पर ट्यून होने की बहुरत है। हम कौन-सा धन काम में लें और कौन-सा न लें; तथा अपने विवेक

का कितना चौकशा उपयोग करें इस तथ्य पर भी उन्होंने बिना किसी लाग-लपेट के दो टूक विचार दिये हैं ।

जहाँ तक श्रीमती सौ. ललिता ताई से हुई बातचीत (पृ. ५५-६१) का प्रश्न है, वह सादा है; किन्तु एक ऐसी नदी की तरह है जो सदानोरा और गतिमान है । वह प्रेरक/सजेस्टिव्ह है । एक भारतीय नारी, विशेषतः जैन नारी, के क्या कर्तव्य-कर्म हो सकते हैं; और इन्हें उसके जीवन में किस तरह प्रकट होना चाहिये — इसे ताईश्री ने सरल/स्पष्ट शब्दों में सामने रख दिया है । वे बालचंद्र उद्योग समुदाय के स्वामी सेठ लालचंद्रजी की धर्मपत्नी हैं और इसीलिए देश के एक समृद्ध खानदान की प्रतिनिधि हैं अतः उनका यह इंटरव्यू हर जैन महिला के लिए महत्त्व का है; उसके लिए मननीय है । उनसे हुई इस बातचीत में श्राविका की एक स्वस्थ/सुंदर छवि का अहसास होता है । इस छवि की पूरक छवि प्रकट हुई है आर्थिका ज्ञानमती माताजी के लिखित परिचर्चाश (पृ. ८९-९१) में । हमें विश्वास है हमारे पाठक इन दोनों को पूर्वापर पढ़ रहे हैं ।

चौथी बातचीत शाकाहार-के-प्रचार-प्रसार को अपना जीवनव्रत/मिशन बनाये श्री केवलचंद्र जैन से है । वे निश्छल/सरल मन के सुकुमार भावनाओं वाले व्यक्ति हैं—कर्मठ/कर्तव्यनिष्ठ और खुद-में सैकड़ों पंचकल्याणकों तथा मंदिर-प्रतिष्ठाओं की पुण्यशक्ति संजोये । उन्होंने सन् १९७८-१९८१ में जो ऐतिहासिक कार्य किया है उसमें 'शाकाहार-प्रदर्शनी' तो मुख्य है ही, मुख्य किन्तु यह भी है कि उन्होंने गुजरात, मध्यप्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, तथा महाराष्ट्र के शिक्षा-विभागों का ध्यान उन शालेय पाठ्य पुस्तकों की ओर खींचा जो मांसाहार का पुरजोर प्रचार कर रही थीं । उन्होंने अथक/निरन्तर पत्राचार किया/आन्दोलन चलाया और पाठ्यपुस्तकों के उन-उन अंशों को हटवा कर साँस ली, जो मांसाहार से सम्बन्धित थे । उनकी निष्ठा और लगन पूज्य है, परम पूज्य है । क्या हम उन-जैसे कर्तव्य-परायण कार्यकर्ता/समाजसेवी अब/आगे पैदा कर पायेंगे ? इस बातचीत (पृ. ६३-६८) में आप पढ़ेंगे शाकाहार-सम्बन्धी उन्हीं कोशिशों की कामयाबी का इतिहास ।

पाँचवीं बातचीत का सम्बन्ध पं. फूलचन्द्रजी से है । पाण्डित्य की दृष्टि से आज के प्रणम्यों के शीर्ष पर हैं; आगमज्ञ हैं, अतः उनसे जो सलाह-मशविरा हमें इस बातचीत (पृ. ६९-७०) में मिला है, हमें विश्वास है हमारे प्रिय पाठक उस पर गौर करेंगे और प्रयत्न करेंगे कि वह उनके जीवन में प्रकट हो ।

इन पाँचों बातचीतों में-से एक आदर्श श्रावक की जो छवि बनती है, जो सुगंध उठती-फैलती है, हमें आशा है उससे सारा समाज सुरभित होगा और उसका बीमार आचारशास्त्र किंचित् स्वास्थ्य-लाभ करेगा ।

—संपादक ।

→

श्रावकाचार : विचारपूर्वक आचार



एलाचार्य मुनि श्री विद्यानन्दजी/डॉ. नेमीचन्द; रावलगाँव (महाराष्ट्र), २६ फरवरी १९८५

डॉ. नेमीचन्द जैन : 'श्रावक' शब्द, जो परम्परित है, का शास्त्रीय अर्थ क्या है ?

एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्द : श्रावक अर्थात् गुरुमुख से उपदेश सुन कर विचार-पूर्वक आचार करने वाला । न्यास-निक्षेप के अनुसार श्रावक चार प्रकार के हैं: नाम श्रावक, स्थापना श्रावक, द्रव्य श्रावक, भाव श्रावक ।

ने. : इस तरह इसके दो पक्ष हो गये ।

वि. : विचार वह तभी कर सकता है, जब गुरु से सुने अतः श्रवण करके विचार पूर्वक आचार करने वाला जो है, वह 'श्रावक' है ।

ने. : यानी सुनता हो, गुनता हो, और चरित्र में डालता हो वह श्रावक है ।

वि. : श्रावक संज्ञा उसीके लिए है । आचार्यों ने श्रावकों के जो चार भेद किये हैं तदनुसार 'नाम श्रावक' वह है, जिसने श्रावक कुल में जन्म लिया है ।

ने. : यह नाम श्रावक हो गया ?

वि. : इसी प्रकार जिसके खान-पान में शुद्धि है, जो पानी छान कर पी रहा है, जिसका रात्रि-भोजन त्याग है उसे पाक्षिक श्रावक कहेंगे । वह तीन म-कार (मांस, मदिरा, मधु) के सर्वथा त्याग का पालन तो कम-से-कम पालन करता ही है ।

ने. : इतना तो पालना ही चाहिये ?

वि. : पालता ही है ।

ने. : नहीं पाले तो वह श्रावक नहीं है; तब वह नाम श्रावक मात्र रह जाएगा ।

वि. : जो भाव श्रावक है, वह सम्यग्दृष्टि है । सम्यग्दर्शन से प्रेरित उसकी समस्त क्रियाएँ होती हैं; 'उपशम' हो या 'क्षयोपशम' हो ।

ने. : श्रावक का विकास उत्तरोत्तर होता है ?

वि. : क्रमिक होता है ।

ने. : 'नाम श्रावक' से 'भाव श्रावक' तक ।

बि. : जैसे, बालक अक्षरों का क्रम से अभ्यास करता है, वैसे ही श्रावक भी अपना अभ्यास क्रमशः विकसित करता है।

ने. : यदि 'नाम श्रावक' प्राथमिक शाला है, तो भाव श्रावक विश्वविद्यालय की अन्तिम उपाधि है।

बि. : बिल्कुल सही है।

ने. : यह जो सम्यग्दृष्टि श्रावक होगा उसकी विशेषताएँ क्या होंगी ?

बि. : उसके जीवन में सर्वप्रथम श्रद्धा गुण होगा। उसका यह गुण कभी विचलित नहीं होगा। वह कभी नष्ट नहीं होगा।

ने. : अविचलित बना रहेगा।

बि. : हाँ।

ने. : उसमें जो भी दोष आयेगा, अनजाने में आयेगा।

बि. : हाँ; अबुद्धिपूर्वक आयेगा। और फिर उसका आचार त्याग की तरफ ही सतत् झुका रहता है।

ने. : एक आदर्श श्रावक में क्या-क्या गुण होने चाहिये ?

बि. : सर्वप्रथम उसमें अरहंत भगवान् के प्रति अत्यन्त दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिये। जो अभक्ष्य पदार्थ (तीन मकार) हैं, उनके बारे में मन में कभी कोई विचार नहीं आना चाहिये।

ने. : विचार तक नहीं ?

बि. : हाँ।

ने. : बाकी सब तो दूर की बातें हैं।

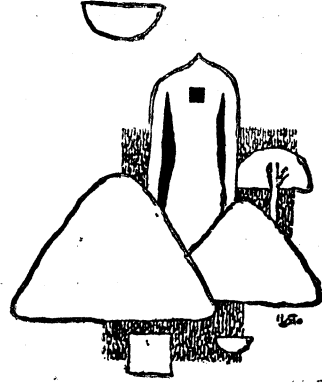
बि. : हाँ; फिर उसके साथ-साथ आदर्श श्रावक न्यायोत्पादित धन कमाये अर्थात् वह नीति-संगत धनोपार्जन करे।

ने. : यह बड़ी बात है।

बि. : यदि उसका खान-पान शुद्ध / सात्त्विक नहीं है, आचार भी अच्छा नहीं है, और फिर भी धन आता है, तो वह उसे कहीं भी पटक सकता है, या पटक देगा। आचार्य श्री शान्तिसागरजी ने कहा था कि जो सट्टे का व्यापार करते हैं, वे बिल्कुल ठीक नहीं करते। इसे उन्हें तत्काल छोड़ना चाहिये। यदि आप हमारे शिष्य बन गये हैं, या उपदेश सुनते हैं, तो ऐसा चल ही नहीं सकता। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि श्रावकों का चोरी करके मन्दिर बनाना सर्वथा अनुचित और अनैतिक है। मन्दिर चाहे छोटा बनाओ, लेकिन बनाओ, उसे न्याय-पूर्वक कमाये हुए धन से ही।

ने. : न्याय से उत्पन्न, या अर्जित धन - इसका क्या मतलब हुआ ?

वि. : वास्तव में देखा जाए, तो मनुष्य एकदम बहुत बड़ा धनाढ्य तो हो ही नहीं सकता। 'आत्मानुशासन' (गुणभद्राचार्य) में लिखा है कि नदी जब भी भरती है, आसपास के गन्दे नालों से ही वह भरती है। इसी प्रकार कोई न्याय-पूर्वक एकाएक, क्षण-भर में धनाढ्य नहीं हो सकता।



ने. : नालों में से मलिन पानी आता है।

वि. : धन को किन्तु न्याय-मार्ग से ही आना चाहिये।

ने. : मतलब यह हुआ कि धनाढ्यता एक किस्म की मलिनता है।

वि. : ऐसा सर्वथा / सर्वदा नहीं है; नहीं होता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी न्यायपूर्वक कमाते हुए 'कम खर्चों और बचावों' के नियम का पालन करते हुए भी कोई धनाढ्य हो सकता है। ऐसे पवित्रतापूर्वक कमाने वाले भी हैं; अभिप्राय यह है कि जो क्षण-भर में धनाढ्य बनते हैं या बन कर दिखाना चाहते हैं, तो वे स्थायी धनाढ्य नहीं हो सकते।

ने. : न्याय से आपका अर्थ प्रामाणिकता से है ?

वि. : प्रामाणिकता से ही है।

ने. : जो काम हम करें, उसका एक स्तर हो, उसका प्रमाण हो, उसमें निष्ठा हो।

वि. : कमाते समय व्यसनों से बचा जाए। जैनों में यह परिपाटी है। बहुतों ने पूछा कि जैनों ने देश में इतने कलात्मक मन्दिर कैसे बनाये? बात यह है कि हमारे आचार्यों ने शुरू से ही उन्हें माँस-मदिरा-सेवन जैसे दुर्व्यसनों से बचने का उपदेश दिया। बराबर देते रहे हैं। फिर माँ-बाप भी अपने बच्चों को दुर्व्यसनों से बचने की सीख देते आये हैं। व्यसनों से बचने के कारण पैसा बच गया। तो अब क्या करें? आचार्यों के उपदेशानुसार औषधदान, आहारदान, ज्ञानदान आदि के साथ मन्दिर-निर्माण में अपने धन का सदुपयोग करने की उन्हें प्रेरणा मिलती रही; इसलिए इतने कलात्मक मन्दिरों का निर्माण हो सका और स्वर्णाक्षरों में सुन्दर-नयनाभिराम शास्त्रों को लिखवाया जा सका।

ने. : जैन वाङ्मय / साहित्य को हस्तलिखित रूप में भी तैयार करवाया गया।

वि. : जैसे, किसी महिला ने व्रत किये, उपवास किये। दशलक्षण के उपवास-व्रत किये, तो संकल्प किया कि दस शास्त्र लिखवा कर दस मन्दिरों में रखवा-ऊँगी। 'षोडशकरण' व्रत सम्पन्न करते हुए संकल्प किया कि सोलह हस्तलिखित शास्त्र सोलह मन्दिरों में रखवाना है। ऐसी परम्परा रही है।

ने. : यह 'प्रिंटिंग प्रेस' थी हमारी !

वि. : हाँ, उस युग में हमारी यही प्रिंटिंग प्रेस थी। इससे हस्त-लेखन-उद्योग विकसित हुआ। लिपिक (लहिमे) बड़ी पवित्रता और सावधानी के साथ लिखते थे।

ने. : स्याही, कागज, कलम—सब में पवित्रता रखते थे।

वि. : हाँ; क्योंकि हमारे उद्देश्य अर्थात् साध्य-साधन जितने ऊँचे / उदात्त होंगे, हमारा श्रावकीय जीवन भी उतना ही आदर्श बनेगा।

ने. : इसका मतलब यह हुआ कि न्याय का संबन्ध विवेक और चरित्र से है।

वि. : बिलकुल सही है।

ने. : यदि विवेकपूर्वक धन का अर्जन किया जाए, तो वह न्यायोत्पन्न कहा जाएगा ?

वि. : जैसे, एक नन्हा-सा पेड़ एक दिन में तो फल देता नहीं है। वह क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होता है, उसी प्रकार श्रावक का जीवन भी शनैःशनै बढता है ठीक वैसे ही जैसे एक चींटी मन्दगति से चलती है, परन्तु वह लतामण्डप पर धीरे-धीरे चढ़ कर अंगूर पा लेती है।

ने. : श्रावक का जीवन भी नीति-और-धर्म का पेड़ है।

वि. : हाँ, इसी तरह से अपने जीवन को ऊँचा उठाते समय श्रावक स्थित-प्रज्ञ होता है।

ने. : 'स्थितप्रज्ञ' बहुत अच्छा शब्द है; क्या अर्थ है इसका ?

वि. : स्थितप्रज्ञ वह है, जो अपने सिद्धान्तों पर अत्यन्त दृढ़ रहता है। जब वह दृढ़ रहता है, तब आचारपूर्वक दृढ़ रहता है। उसमें चारित्र्य का अंश रहता है।

ने. : स्थितप्रज्ञता में ?

वि. : चारित्र्य का अंश न होने पर भी श्रद्धा की अपेक्षा भी उसे स्थितप्रज्ञ कह सकते हैं, लेकिन मूलतः स्थितप्रज्ञ में चारित्र्य का अंश तो होता ही है।

ने. : विवेकपूर्वक जो चारित्रवान् है, उसे स्थितप्रज्ञ कहेंगे ?

वि. : क्योंकि श्रावक-का-धर्म है विचारपूर्वक आचार !

ने. : स्वाध्याय की फलश्रुति चरित्र में प्रकट होनी चाहिये।



एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी से श्रावकाचार पर विचार-विमर्श
करते हुए डॉ. नेमीचन्द जैन

वि. : क्योंकि बिना ज्ञान के चारित्र चारित्र नहीं हो सकता । ज्ञानात् त्याग ऐसा सूत्र है । जैसे, रास्ते में साँप है, 'काटता है' इसका ज्ञान है, तो हम बगल से निकल जाएँगे, और यदि इसका ज्ञान नहीं है, तो हम उस पर पैर भी रख सकते हैं; इसलिए ज्ञानपूर्वक आचरण ही त्याग है; भले ही वह श्रुतज्ञान हो, अल्पज्ञान हो । अल्पज्ञानी भी मोक्षमार्ग में जा सकता है, कालान्तर में वह मुक्ति भी पा सकता है; ज्ञान गुण आवश्यक है ।

ने. : आपने यह बहुत अच्छा बताया; क्योंकि शाकाहार लाभकारी है, इसकी सूचना लोगों के पास नहीं है; यह अज्ञान है । यदि यह सूचना लोगों के पास पहुँच सके, तो उन्हें शाकाहार की उपयोगिता छुएगी ।

वि. : तब वह त्यागपूर्वक ज्ञान होगा । जहर को मारक जानने के बाद भला उसे कौन पीयेगा ? बालक अज्ञानता के कारण ही मिट्टी मुँह में रख लेते हैं ।

ने. : नित-नये संदर्भ इन दिनों हमारे सामने आ रहे हैं । बड़े पैमाने पर नये-नये उद्योग भी आ गये हैं । नये जीवन-मूल्य विकसित हो रहे हैं । इसके साथ ही एक नया वातावरण भी बन गया है । लोगों में धर्म के प्रति थोड़ी अरुचि / अश्रद्धा भी उत्पन्न हुई है । ऐसी स्थिति में श्रावक क्या करे ?

वि. : धर्म के प्रति लोगों में रुचि कम हुई है, अथवा श्रद्धा कम हुई है; ऐसी कोई बात शायद नहीं है। धर्म के प्रति लोगों में रुचि और श्रद्धा तो है; किन्तु हर युग में धर्म में श्रद्धा और रुचि रखने वालों की संख्या कम ही रही है। 'आत्मानुशासन' में कहा है, जब सुनने वालों की संख्या ही कम है, तब आचरण करने वालों की तो कम होगी ही फिर यह तो कलियुग है, पंचम काल है; इस युग को देखते हुए अभी भी हम बहुत-सी बुराइयों से बचे हुए हैं। यह हमारे पुरखों की कृपा और हमारे आचार्यों की दूरदृष्टि का ही सुफल है। श्रावक और साधु के परस्पर संबन्ध होने से गृहस्थाचार में हम अनेक दोषों से बचे हुए हैं। 'रोटी सुरक्षित है, तो बेटी सुरक्षित है'—इसीलिए खान-पान से अभी भी हमारे घर-घराने बचे हुए हैं। वैसे तो १०-२० प्रतिशत की घटती-बढ़ती होती रहती है।

ने. : नये संदर्भ से मेरा मतलब यह था कि इसके पहले हम आयुर्वेदिक औषधियाँ लिया करते थे; आज तो तरह-तरह की दवाइयाँ आ गयी हैं। नाना प्रकार के कपड़े आ गये हैं—टेरेलिन, पोलिस्टर, रेशमी। इन सबमें हिंसा होती है।

वि. : रेशमी वस्त्र पहले भी थे, परन्तु वे वनस्पति-जन्य थे; इसीलिए उन्हें पहनते थे। जो प्राणीहिंसा-जनित थे, उन्हें तो कोई श्रावक पहिनता नहीं था। भले ही कुछ नामधारी श्रावक पहनते हों किन्तु व्रती श्रावक तो उन्हें कभी छूता ही नहीं था; पहिनना तो दूर की बात है।

ने. : किन्तु आज तो वे व्यापार करते हैं।

वि. : अज्ञानता के कारण करते हैं। हमने देखा है, जो चीज हलवाई की दुकान पर बनती हुई देखता है, वह वहाँ नहीं खाता, क्योंकि साफ-सफाई में लापर-वाही यानी गन्दगी, पसीना इत्यादि देख कर उसे ग्लानि होती है, अतः वह नहीं खाता किन्तु जब वही उसके सामने प्लेट में आती है, तब साफ दिखायी देने से वह उसे खाता है। इसी तरह ज्ञान न होने से अर्थात् अज्ञानता के कारण ही वह व्यापार आदि करता है; इसलिए तथ्यों को तर्कसंगत और व्यापक रूप में रखने की आवश्यकता आज सबमें बड़ी है।

ने. : आप शायद यह कहना चाहते हैं कि जहाँ-जहाँ हिंसा होती है; किस तरह से वह वहाँ हो रही है, इसका व्यापक प्रचार-प्रचार होना चाहिये।

वि. : प्रचार-प्रसार करना चाहिये। विषम काल है। आज भी आयुर्वेदिक औषधियाँ उपलब्ध हैं; अच्छे-अच्छ विद्वान् हैं। शिष्य-परम्परा से शुद्ध औषधियों का छोटे पैमाने पर निर्माण भी होता है। घरेलू औषधियाँ तैयार कर आहार-के-समय श्रावक त्यागी-साधुवर्ग को भी देते हैं; इस प्रकार साधुवर्ग अभी बचा हुआ है। व्रती भी बचे हुए हैं; परन्तु इतर लोग जल्दी ठीक होने की आशा-अपेक्षा से औषधियों की शुद्धि, या अशुद्धि पर विचार नहीं करते। एलापैथी, होम्योपैथी

की इतनी सारी दवाइयाँ हैं, कि उनकी शुद्धि अशुद्धि का पता लगाने में बड़ी सावधानी की जरूरत है। विवेक तो रखना ही है। यदि विवेक नहीं रखेंगे तो हम अपने आचार से गिर ही जाएँगे; गिरेंगे ही।

ने. : विज्ञान का जो नया वातावरण बना है, उसने हिंसा को बढ़ाया है; इससे कैसे बचा जा सकता है ?

वि. : जब तक 'विज्ञान' में 'अज्ञान' का अंश है, तब तक हम बच नहीं सकते। यह समझना जरूरी है कि विज्ञान में भी अज्ञान है। जो सिर्फ भौतिक सुख के साधनों को उपलब्ध करवाये, उसे विज्ञान नहीं कहते हैं। जैन शास्त्रों में विज्ञान शब्द का अर्थ है : 'आचरणपूर्वक ज्ञान'। आचरणपूर्वक ज्ञान ही विज्ञान है।

ने. : विशिष्ट ज्ञान।

वि. : जो ज्ञान आचरण का अनुगामी है उसे विज्ञान कहा है।

ने. : यह तो नयी परिभाषा हुई। जो विवेक और चारित्र्य का सहवर्ती है, वह विज्ञान है।

वि. : हाँ; वही वास्तविक विज्ञान है।

ने. : यह विज्ञान की जैन परिभाषा है ?

वि. : बिल्कुल।

ने. : विज्ञान की अन्य परिभाषा क्या है ?

वि. : नयी-नयी शोध करके, नये-नये लौकिक साधन बनाने में, सौंदर्य-प्रसाधन बनाने में, इस भौतिक-नश्वर शरीर की पुष्टि के लिए नाना प्रकार की चीजें तैयार करने में जो ज्ञान लगा है, वह आधुनिक विज्ञान है।

ने. : इसमें मनुष्येतर प्राणियों की सुख-सुविधा का ध्यान कहाँ है ? जो जैन-धर्म-सम्मत विज्ञान है, उसमें समस्त प्राणियों की विशेष चिन्ता रखनी होती है।

वि. : सही है। प्रत्येक प्राणी को जीने-का-अधिकार है। वे जीते भी हैं। मोटी बात है कि हम किसी को दुःख देकर स्वयं सुखी नहीं रह सकते। क्षणभंगुर सुख आकर्षक तो दीखता है, परन्तु वह सुख सुख तो है नहीं; कल हमें भी भोगने पड़ते हैं, पड़ेंगे ही; इसलिए दुनिया के किसी भी प्राणी को हम से कष्ट हो जाए; भले ही वह मन से, वचन से, या अनुमोदना से हो दोष उसका हमें अवश्य लगेगा। हम किसी हिंसा से प्राप्त वस्तु को यदि लेते हैं, या उसकी अनुमोदना करते हैं तो निःसंदेह पाप के भागी बनते हैं। किसी को यदि कोई मारता है, तो कोर्ट में सजा देते समय 'मारने' का कहने वाले—यानी अनुमोदना करने वाले को भी सजा मिलती है। किसी षड्यंत्र में अप्रत्यक्ष रूप से भी यदि किसी का समर्थन, या अनुमोदन हो, तो उसे भी सजा होती है। मारने वाले को जितना पाप है, मारने के षड्यंत्र में भाग लेने वाले को भी उतना है। जैन शास्त्रों में जो भी हिंसाचार-से-प्राप्त वस्तु है, उसकी अनुमोदना में भी पाप माना है।

ने. : क्योंकि उसमें उसकी भागीदारी तो है, चाहे वह दिखायी न पड़ती हो ।
तीन जगह हम टूटे हैं— खान-पान में, रहन-सहन में, पठन-पाठन में । जो भी मिल
जाता है, चाहे वह अश्लील हो हम पढ़ते हैं, तरह-तरह के अखबार हैं, पत्र-पत्रिकाएँ
हैं; पढ़ने के नाम पर पढ़े जा रहे हैं; पहले बताइये कि खान-पान में हम क्या करें ?

वि. : एक बात है । खान-पान में साधु-संस्था के कारण जैन समाज के बहुत-
से घर/घराने आज बचे हुए हैं । जहाँ तक मैं देखता हूँ, श्रावकों पर साधुओं
का काफी नियंत्रण है; क्योंकि जो शुद्ध आचार-विचार से रहते हैं; साधु उन्हीं
के यहाँ आहार ग्रहण करते हैं ।

ने. : खान-पान पर साधुओं का अंकुश है ?

वि. : हाँ, श्रावकों का भी साधुओं पर नियंत्रण है । जहाँ आचार-विचार
शुद्ध है, वहीं साधु आहार लेते हैं । बहुत कुछ यह है । साधुओं ने भी संस्कार
रक्षा की है । दूसरी कौन-सी बात है ?

ने. : रहन-सहन ।

वि. : ग्रामीण जीवन में अभी भी सादगी है । शहरों में सौंदर्य-प्रसाधनों,
अन्य वस्तुओं, कपड़ों वगैरह के बारे में बिना विचारे सिर्फ अच्छे तड़कीले-भड़कीले
मुलायम जो दिखते हैं, उनका उपयोग करते हैं; परन्तु ऐसे लोगों की संख्या अभी भी
शहरों में कम है । यदि उन्हें समझाया जाए और ऐसी वस्तुओं के गुण-दोष बतलाने
वाला साहित्य उन्हें मिले, या सुलभ कराया जाए, तो उससे वे बच सकते हैं ।

ने. : उन्हें बताया जाए कि यहाँ-यहाँ हिंसा होती है— इन साधनों में होती
है । यदि उन्हें सही और समूची सूचना दी जाए, तो वे बच सकते हैं ।

वि. : अब पठन-पाठन के विषय में । हम यदि वैज्ञानिक ढंग से तैयार साहित्य
उनके घरों में पहुँचायें, या ऐसा साहित्य उन्हें किसी तरह सुलभ हो जाए, तो वे
उसे पढ़ सकते हैं और अपने विचारों को पवित्र बना सकते हैं । वे सम्यग्दर्शन /
सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति भी कर सकते हैं । प्राचीन आदर्शों को, प्राचीन तत्त्वज्ञान को
आधुनिक भाषा में समझाने की यदि हम कोशिश करेंगे, तो मैं सङ्कशता हूँ कि
अश्लील साहित्य से हम उन्हें बचा सकते हैं और स्वयं भी बच भी सकते हैं ।

ने. : चिन्ता का विषय यह भी है कि हमारे पास लेखकों की लगातार
कमी होती जा रही है ।

वि. : लेखकों को तो तैयार करना होगा । जब समाज में अन्य बहुतेरे कामों
में इतना खर्च होता है, तब यदि हम लेखकों को पारश्रमिक दें, उन्हें सम्मान-निधि
दें, तो वे परिश्रमपूर्वक लिख सकते हैं । आज आर्थिक जटिलताएँ बहुत हैं । हमें
श्रमजीवी लेखक / पत्रकार तैयार करने होंगे । यदि वास्तव में हमें समाज को
बुराइयों से बचाना है (बचना है); तो ऐसा करना जरूरी है ।

ने. : इसके लिए किया क्या जाए ?

बि. : इसूके लिए समाज में योजनापूर्वक एक फण्ड कायम किया जाए; जिसके माध्यम से जो अच्छे लेखक, पत्रकार, रचनाकार हैं, उन्हें पारिश्रमिक दिया जाए।

ने. : यानी प्रबुद्ध/समर्पित लेखकों और पत्रकारों के लिए एक निधि स्थापित होनी चाहिये,।

बि. : उन्हें ऐसा काम दें, ताकि वे अपना जीवन-यापन करते हुए सत्साहित्य तैयार कर सकें।

ने. : उन्हें आजीविका दी जाए और निवेदन किया जाए कि वे सत्साहित्य के निर्माण में सक्रिय योगदान करें।

बि. : ऐसा पहले भी होता था। उदाहरण मिलते हैं कि राज्याश्रय मिलने से बड़े-बड़े विद्वान् ने बहुत महत्त्वपूर्ण साहित्य लिखा, या कहिये कि उनसे लिखवा लिया गया।

ने. : एक 'श्रावक' समाज के लिए क्या कर सकता है; चारित्रिक दृष्टि वह उसे कैसे प्रभावित कर सकता है; क्योंकि उसकी भी कुछ जिम्मेदारियाँ, कुछ कर्तव्य हैं ?

बि. : कर्तव्य तो प्रत्येक श्रावक के हैं; और यदि प्रत्येक अपनी जिम्मेदारी को स्वयं निभाये, अपने को सुधारे, तो यह दुनिया अपने-आप सुधर जाएगी। यदि एक श्रावक दूसरे श्रावक को सुधारने में लगेगा, तो फिर वह स्वयं भी सुधर नहीं सकेगा। जैन तत्त्वज्ञान की आधारशिला है व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और स्वावलम्बन। यदि इन दोनों माध्यमों से वह अपने जीवन को ऊँचा उठाता है, तो हम उसे 'स्थितप्रज्ञ श्रावक' कहेंगे।

ने. : जैसे, एक श्रावक व्यापारी है; जो व्यापार की दृष्टि से समाज के संपर्क में आता है, तो वहाँ वह समाज के लिए क्या कर सकता है ? एक व्यापारी की हैसियत से उसे क्या करना चाहिये ?

बि. : वह शुद्ध वस्तुएँ दे; फिर भले ही उसमें दो पैसे कम मिलते हों। इससे उसके मन को संतोष होगा, उसका चित्त बहुत प्रफुल्लित होगा है कि कम-से-कम उसने शलत काम तो नहीं किया। वह यदि चाहे तो अल्प परिश्रमी रह कर सीमित आय में ही अपने जीवन को सुन्दर, सात्विक, और सहज बना सकता है।

ने. : प्रामाणिकता उसमें आ सकती है।

बि. : बिल्कुल आज भी बड़ी संख्या में जो पुराने लोग हैं; वे ऐसा कोई काम नहीं कर रहे हैं, जो भारतीयता को कलंकित करता हो, फिर भले ही एकाध पैसा ज्यादा वे लेते हों। वे मिलावट आदि नहीं करते। मिलावट/रिश्वत आदि दुष्प्रवृत्तियाँ तो ज्यादातर आज़ादी के बाद की विषमताओं की संतानें हैं; जल्दबाजी में अमीर बनने की लालसा की दुष्परिणाम हैं, लेकिन इसके शिकार कम ही लोग हुए हैं। उनका कुल प्रतिशत एक से भी कम है।

ने. : मिलावट (अपमिश्रण) की दुष्प्रवृत्ति लगातार बढ़ रही हैं, इसे कैसे नकारा जा सकता है ?

वि. : 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' जैसे ग्रंथों में भी स्पष्ट लिखा है कि मिलावट नहीं करना चाहिये। इससे सिद्ध होता है कि उस समय भी मिलावट-जैसी दुष्प्रवृत्ति थी।

ने. : ऐसा आया है ?

वि. : यह भी आया है कि अतिभाररोपण मत करो। पशुओं पर अधिक भार मत लादो; जबकि आज ट्रकों पर भी निर्धारित वजन से अधिक नहीं रख सकते। पहले ऐसे कानून थे कि पशुओं पर ज्यादा भार नहीं लाद सकते थे। लोग उनका पालन करते थे। बुराईयाँ पहले भी थीं, लेकिन आज ये इतनी बढ़ गयी हैं कि बहुत घबराहट पैदा होती है। कहा नहीं जा सकता वे देश को कहाँ ले जा कर पटकेंगी ?

ने. : कोई समाधान है इसका ?

वि. : समाधान; हम उसे प्रोत्साहन न दें और हृदय-परिवर्तन के लिए सत्साहित्य का निर्माण करें। अच्छाइयों का व्यापक प्रचार-प्रसार करें।

ने. : हम देखते हैं कि हिंसा चारों तरफ बहुत बढ़ गयी है—जीवन के हर क्षेत्र में, हिंसा का रूप विकराल हुआ है; विविध भी वह हुआ है—सूक्ष्म रूप में; चुनावी हिंसा-जैसी चीजें भी सामने आयी हैं; तब फिर ऐसे विषम और प्रतिकूल वातावरण में अहिंसा की अभिव्यक्ति कैसे करें ?

वि. : पहले तो घर-घर में हमारे पूर्वजों को यह ज्ञान ठीक से था कि यदि पेड़ के पत्तों को निरर्थक तोड़ा गया, तो उसे दुःख होगा, हमारे निमित्त से हिंसा क्यों हो, यह सोच कर आदमी बहुत सँभल कर किसी पेड़ का काटता था, उसका टहनी, या पत्ते तोड़ता था; लेकिन अब उद्योग के माध्यम से कहिये या उस उद्योग में मर्यादित न रहते हुए ज्यादा लोभ के कारण, अथवा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के कारण पेड़ों/जंगलों को इतना काट डाला गया है कि आज स्वयं मनुष्य का जीवन खतरे में पड़ गया। वनस्पतियों और पेड़ों से यानी जंगलों से हमें ऑक्सीजन मिलता है। जंगलों का श्वासोच्छ्वास से सीधा संबन्ध है।

ने. : वर्षा को भी वे नीचे खींचते हैं।

वि. : खींचते हैं और वायुमण्डल के प्रदूषण को रोकते हैं। ऐसी अनेकानेक बातें वनस्पतियों, पेड़ों, और जंगलों पर आधारित थीं; लेकिन आज हम अपने व्यक्तिगत क्षुद्र/क्षणिक सुख-लाभ के लिए उन्हें नष्ट करने पर आमादा हैं; जिससे हमारा स्थायी आरोग्य और स्वास्थ्य चौपट होता जा रहा है। हम मुसीबत और परेशानी में फँस कर दुःखी हो रहे हैं। पेड़ों और जंगलों की अंधा-धुंध कटाई को रोकने के लिए जहाँ कानून जरूरी है, वहीं लोकमत बनाने की आवश्यकता भी है। अहिंसा का इससे जीवन्त और प्रत्यक्ष संबन्ध है।

ने. : यानी हम वनस्पतियों से शुरू करें, उनकी रक्षा करें।

वि. : बिल्कुल ठीक; उनकी रक्षा ही, हमारी अपनी रक्षा है। मनुष्य जीवन ८० से ९० प्रतिशत वनस्पति पर अवलम्बित है।

ने. : मतलब आप यह कहना चाहते हैं कि वनस्पति को किसी तरह घायल न करें, चोट न पहुँचायें; उन्हें अक्षत बनाये रखें। उनका उपयोग तो करें, लेकिन उन्हें बर्बाद न करें?

वि. : इतना ही नहीं, अब तो वैद्य और शोधक भी कह रहे हैं कि पचास वर्ष पहले वनस्पतियों में जो औषधि के उत्तम-से-उत्तम गुण थे; वे अब नहीं हैं। पहले आधा अंश भी देने से उन औषधियों का असर होता था, लेकिन आज दुगुना भी दिया जाए, तो रोगी को वह उतनी जल्दी ठीक नहीं कर सकता। उसे वनस्पति में जो रस-गुण थे, वर्षा की कमी के कारण, वायुमण्डल के प्रदूषित होने से घट गये हैं। हमारे आरोग्य और स्वास्थ्य पर इसका बुरा असर पड़ रहा है।

ने. : इसका मतलब यह कि जब मनुष्य ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया, तब उन वनस्पतियों ने भी अपनी मदद का हाथ खींच लिया है।

वि. : ऐसा भी हो सकता है (हँसी)। प्रदूषण का बुरा प्रभाव पड़ता ही है।

ने. : सबसे पहला काम तो हमें वनस्पतियों यानी जंगलों के रक्षण/संरक्षण का करना चाहिये। उसके बाद पशुरक्षा पर आना चाहिये।

वि. : क्या कहें, गाय घास खा कर मनुष्य को पोषण देती है। माँ बहुत-से-बहुत नौ महीने या साल-भर दूध पिलाती है, जबकि गाय तो जीवन-भर दूध पिलाती है। गोवंश ने हमें जीवन-भर दूध पिलाया और जो अभी भी पिला रहा है; इतना कि जितना हम जीवन में किसी को पानी भी नहीं पिला पाते। ऐसे कितने ही प्रिय पशु हैं; वृक्ष हैं, जो फलों के रूप में; नदी हैं, जो पानी के रूप में मनुष्य-जीवन को पोषण प्रदान करते हैं। इस तरह प्रकृति का मनुष्य पर बहुत उपकार है; लेकिन विचारणीय है कि मनुष्य प्रकृति पर क्या उपकार कर रहा है? जब तक वह यह नहीं सोचेगा कि व्यर्थ में ऐशो-आराम के लिए, संयमी जीवन को छोड़ कर प्रकृति की इस सम्पदा को निर्दयता पूर्वक विवेक-शून्य हो कर नष्ट करना कहाँ तक हितकारक है, तब तक वह अहिसक जीवन-पद्धति को अपना नहीं सकेगा। प्रकृति के दोहन का जो घातक दुष्परिणाम हमारे जीवन पर; समाज, देश-राष्ट्र पर पड़ रहा है, वह आज गहन चिन्ता का विषय है।

ने. : प्रकृति और मनुष्य के जीवन में बड़ा असन्तुलन बनता जा रहा है।

वि. : असन्तुलन बढ़ता जा रहा है। प्रकृति तो ऊर्जा का बहुत बड़ा भण्डार है। उसका आज जो दुरुपयोग हम कर रहे हैं, उसे निरर्थक खर्च रहे हैं, यदि इसमें कमी नहीं हुई, तो हमारे जीवन में ऐसे क्षण भी आ सकते हैं जब हमें झोपड़ियों में रहना पड़े, या पेड़ों के नीचे रहना पड़े लेकिन तब वह हमारी मज-

बूरी होगी, स्वेच्छा नहीं। हमारे पूर्वजों ने अपरिग्रह पर जोर दे कर कहा था कि तुम दूसरों के लिए त्याग करना सीखो। विवशता में अपरिग्रही बनने और स्वेच्छा से बनने में बुनियादी अन्तर है।

ने. : क्या मनुष्य आज अपरिग्रही हो कर जी सकता है ?

वि. : बिलकुल; बहुत-से लोग ऐसा कर रहे हैं।

ने. : लोभ-लालच इत्यादि इतने ज्यादा हैं।

वि. : वे तो हैं, थोड़े-से आकर्षणों के कारण; फिर भी वह अपरिग्रही रह सकता है। २०-३० प्रतिशत लोग ही परिग्रहवादी हैं; शेष ७० प्रतिशत तो अपरिग्रहवादी ही हैं। वे प्रकृति के निमित्त से हैं, उनका अपना स्वभाव है कि 'क्या रखा है संसार में; जो है उसीमें संतोष रखो'। लोग अनेक कारणों से अपरिग्रहवादी हैं; लेकिन जो उसे सिद्धान्ततः मान कर/समझकर अपरिग्रही बनेगा, वह अनुभव करेगा कि अल्पपरिग्रही को सुख मिलता है और बहुत परिग्रही को नर्क-तुल्य दुःख भोगने पड़ते हैं। जितना ज्यादा-से-ज्यादा परिग्रह बढ़ता चला जाएगा, उतना ही दुःख भी बढ़ता जाएगा—शारीरिक अथवा मानसिक वह यह भी अनुभव करेगा कि प्रकृति के साथ मिल-जुलकर रहना स्वास्थ्य/आरोग्य के लिए कारणीभूत है। प्रकृति से हट कर जो भी हम करेंगे, दुःखद होगा।

ने. : श्रावक के संदर्भ में अपरिग्रह का अर्थ अल्प-परिग्रह ही लेना चाहिये ?

वि. : हाँ, श्रावक खाने में संयम रखता है, थाली में दो ग्रास कम खाता है; ऊनोदर व्रत, रस-परित्याग आदि का पालन करता है। हमारे यहाँ उठते-बैठते भी त्याग की बात कही गयी है; यह इसलिए कि आपके पास अधिक धन है, तो उसे आप थोड़ा-थोड़ा खर्च कर सकते हैं; इसी प्रकार प्रकृति में जो भण्डार हैं, उनकी भी अपनी सीमा है।

ने. : संग्रह की अपेक्षा त्याग पर हमें अधिक बल देना चाहिये।

वि. : गुणभद्राचार्य ने 'आत्मानुशासन' में कहा कि मीठा है, इसलिए ज्यादा खाओगे, तो पेट में कीड़े पड़ जाएँगे, बीमार पड़ जाओगे, बदहजमी हो जाएगी; इसलिए तुम इतना ही खाओ, जितना तुम हजम कर सको। ज्यादा खाओगे, तो 'मीठा' तुम्हें खा जाएगा; इसलिए खाने में संयम, पीने में संयम; हर चीज में संयम की जो बात कही गयी है, वह मानव-जीवन को सुखी बनाने के लिए है। 'त्येन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है कि त्यागपूर्वक भोग करो।

ने. : संग्रह तो अभिशाप है।

वि. : बिलकुल।

ने. : जिस वर्ग का शोषण होता है, वह दुःखी होता है; तो इस तरह तो संग्रह में दुःख-ही-दुःख है; और त्याग में सुख-ही-सुख है।

वि. : ठीक बात है; त्याग से मानसिक शान्ति और आनन्द भी प्रचुर मिलता है।

ने. : सबसे पहले अज्ञान का त्याग करना चाहिये ।

बि. : थोड़ा भी ज्ञान हो जाए, तो फिर संग्रह में कोई क्यों जकड़ेगा ?

ने. : श्रावकों में जैनधर्म की जानकारी कम होती जा रही है ।

बि. : पचास साल पहले की अपेक्षा आज जानकारी कम नहीं है । बात यह है कि जैनधर्म के तत्त्व बड़े गूढ़ हैं, अतः उनके जानने वाले कुछ आचार्य/विद्वान् ही हो सकते हैं ।

ने. : लेकिन श्रावकों को जैनधर्म की मौलिकताओं की जानकारी तो देनी होगी ।

बि. : कुछ जानकारी माता-पिता से सामान्यतया होती है; वह परम्परा से प्राप्त है । कुछ प्रवचन द्वारा प्राप्त करते हैं; कुछ स्वतन्त्र स्वाध्याय से भी बैसा करते हैं । इस तरह श्रावकों को जैनधर्म का थोड़ा-बहुत ज्ञान तो हो ही जाता है । आमतौर से सबको जैनधर्म के तत्त्वज्ञान की, उसकी मौलिकताओं की जानकारी मिले, इसके लिए एक स्वतन्त्र मशीनरी (तन्त्र) खड़ी करनी होगी ।

ने. : पूरा प्रचार-तन्त्र खड़ा करना होगा ।

बि. : हाँ, प्रचार-तन्त्र बनाना होगा । प्रत्येक परिवार और व्यक्ति से सम्पर्क करना होगा । ऐसी संस्था हो, जो गाँव-गाँव जा कर, घर-घर पहुँच कर महिलाओं-पुरुषों को जैनधर्म के तत्त्वज्ञान को सरल भाषा और शैली में समझाने वाला साहित्य दें । चल वाचनालय-पुस्तकालय की तरह एक पुस्तक देने के बाद पढ़ लेने की सूचना मिलने पर दूसरी पुस्तक दे कर उन्हें बराबर साहित्य सुलभ करता रहे । ऐसा ही शहरों में भी किया जाना चाहिये । इस दृष्टि से लोकसुगम साहित्य का निर्माण भी करना होगा ।

ने. : लेकिन यह करेगा कौन ?

बि. : समाज में जो जिम्मेदार व्यक्ति हैं वे करेंगे/करायेंगे; कुछ साधु भी मार्गदर्शन कर सकते हैं ।

ने. : अभी तो लोगों का ध्यान इमारतें खड़ी करने पर ज्यादा है; साहित्य पर बहुत कम है ।

बि. : इस शताब्दी में साहित्य तो प्रकाशित हुआ है; परन्तु पढ़ने वालों की संख्या जितनी बढ़नी, या बढ़ानी थी, उतनी बढ़ी नहीं ।

ने. : हम पाठकों की संख्या बढ़ा नहीं सके हैं ।

बि. : यह संख्या बढ़ानी चाहिये; तदनुसार फिर पुस्तकों की संख्या भी बढ़ सकती है ।

ने. : पाठकों की संख्या कैसे बढ़ायें ?

बि. : समझाया जाए कि कम-से-कम दस मिनट पठन-पाठन में देने चाहिये, स्वाध्याय करना चाहिये । आत्मा-अनात्मा का ज्ञान नहीं होगा, तो भेदविज्ञान की

प्रगति कैसे होगी? यदि ऐसा नहीं होगा, तो यह मनुष्य-जीवन निरर्थक है। नामधारी श्रावकों में भी इसके प्रति रुचि और श्रद्धा पैदा करनी होगी।

ने. : समाज का कोई तरुण आ कर पूछे कि जैनधर्म क्या है? तो उसे जैन-धर्म की ऐसी कौन-कौन सी तीन-चार मौलिकाताएँ हम बता सकते हैं?

वि. : शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि सम्यग्ज्ञान से मनुष्य अपने दुःख दूर कर सकता है। जो हमारे दुःख दूर करने में असमर्थ है, उसे हमारे आचार्यों वे सच्चा ज्ञान नहीं माना है। जो दुःखों को दूर करे, वही सम्यग्ज्ञान है। ऐसे सम्यग्ज्ञान का कथन शास्त्रों में कई स्थानों पर आया है। इस / ऐसे सम्यग्ज्ञान को जानने से वह स्वयं अपने दुःख की निवृत्ति कर सकता है। उन्हें दूर भगा सकता है। प्रकाश आ जाए, तो अँधेरा जाता ही है। इसी प्रकार ज्ञान के आने पर अज्ञान दूर होता ही है; और अज्ञान दूर होने से वह सुखी हो सकता है। यही उसकी खुराक है। ढेर सारे ग्रन्थ पढ़ लिये, और यदि प्राप्त ज्ञान हमारा दुःख दूर नहीं कर सका, तो वह व्यर्थ है।

ने. : दूसरी मौलिकता आप उसे क्या बतायेंगे?

वि. : यह कि शक्ति के अनुसार, थोड़ा ही क्यों न हो, आचरण अवश्य करना चाहिये; जैसे, देवदर्शन करना, मन्दिर में जा कर बैठना, पानी छान कर पीना इत्यादि। भगवान् की वीतराग मूर्ति के दर्शन से मन की चंचलता दूर होती है; उस भव्य/दिव्य मूर्ति को ध्यानपूर्वक देखते रहने से कुछ-न-कुछ वैराग्य तो उत्पन्न होगा ही। देवदर्शन को बहुत महत्त्वपूर्ण बताया गया है कि सौम्य/शान्त मूर्ति को ध्यानपूर्वक देखने से आँखों की चंचलता दूर हो कर एकाग्रता सधने लगती है। यह एकाग्रता यदि बढ़ती चली जाए, तो फिर तीर्थंकरों के गुण आदि जानने की जिज्ञासा और रुचि भी बढ़ती जाएगी, इससे स्वाध्याय की प्रेरणा होगी। स्वाध्याय से ज्ञानवर्धन होगा— फिर सत्संग होगा जिससे आचरण लगातार सुधरता जाएगा।

ने. : तीसरी मौलिकता कौन-सी हो सकती है? क्या उसका संबन्ध अहिंसा से है?

वि. : अहिंसा से तो है ही; क्योंकि जैनों को विरासत में, परम्परा से, स्वभाव से भी, बचपन से ही अहिंसा के संस्कार मिल चुके हैं; यह ठीक है कि उन्हें विकसित करना चाहिये। हमारे आचार्यों ने घोषणा की कि सारी दुनिया की प्रत्येक आत्मा अहिंसक है; परन्तु है वह आंशिक रूप में जैसे, जैनाचार्यों ने कसाई को भी अहिंसक माना है। वह कैसे? वह अपने पाले हुए तोते को नहीं मारता। अपने पाले हुए पत्नी-बच्चों को नहीं मारता। वह पले हुए (दूध देने वाले) पशुओं को नहीं मारता, बल्कि उन्हें प्यार से पालता है। उसमें भी किंचित् अहिंसक भाव है अतः उसमें भी इसे व्यापक रूप से विकसित करने की जरूरत है। जहाँ-जहाँ अहिंसा का भाव है, वहाँ वहाँ उसे पोषण देने की आवश्यकता है। जैनधर्म की मौलिकता है— अहिंसा परम धर्म है,

लेकिन इसे चरितार्थ करने की जिम्मेदारी हम सब पर है। श्रावक का जीवन अहिंसा से ओतप्रोत होना चाहिये।

ने. : अचार्य का कोई महत्व है ?

वि. : अहिंसा के बाद या साथ सत्य है; मनुष्य गृहस्थ रूप में तो आंशिक सत्य ही बोलेंगा। पूर्ण सत्य दुनिया में कोई बोल नहीं सकता; क्योंकि सत्य होता है अनुभव-गम्य। आत्मा अनुभूति का विषय है और सत्य-का-साक्षात्कार अनुभूति के बिना संभव नहीं है।

ने. : सत्य की अनुभूति आत्मानुभूति पर निर्भर करती है।

वि. : जैसे, आजकल कहते हैं 'पैसा दो नम्बर का'। तो जुवान से जो भी हम कहेंगे वह दो नम्बर का सत्य होगा। बिना बोले जो भी हम अनुभव करेंगे, वही अवल नम्बर का होगा।

ने. : बहुत अच्छा निष्कर्ष है।

वि. : पूर्ण सत्य का जुवान से कभी कथन नहीं हो सकता।

ने. : अनुभूति-का-सत्य ही प्रामाणिक है।

वि. : वह प्रमाणिक भी है, और उपकारी भी। अहिंसा, सत्य, अचार्य — इस अनुक्रम में अचार्य अर्थात् किसी की कोई चीज यदि रखी या पड़ी हुई हो, तो उसका लोभ नहीं करना चाहिये। 'जो अपने पास है, वह भी मेरी-अपनी नहीं है, उसे भी छोड़ना है' जो यह भावना रखता है, वही सच्चा ज्ञानी है। परद्रव्य को पर तो सभी कहते हैं, लेकिन जो मेरे पास है, वह द्रव्य भी मेरा नहीं है; यह संयोगमात्र है, मुझे इसे छोड़ना ही होगा, मुझे उसमें आसक्त नहीं होना है; धीरे-धीरे अनासक्त होते जाना है; इसे भी वह हृदयंगम करता जाता है।

ने. : और परिग्रह ?

वि. : इसके पहले ब्रह्मचर्य है, शील है। हमारे आचार्यों ने शील और ब्रह्मचर्य-रूपी संयम की जो बात कही है, वह बड़ी दूरदृष्टि से कही है। संयम न रहने के कारण आज लोकसंख्या में जो अमर्याद बढ़ोतरी हो रही है, उससे चारों ओर हा-हा-कार है, लोग घबरा रहे हैं। लोकसंख्या को सीमित रखने का ध्येय राष्ट्र-हित के सिद्धान्त में निहित है। आचार्यों ने संयम का उपदेश दे कर मात्र व्यक्ति का हित ही नहीं देखा; वरन् उसका पारिवारिक हित भी देखा; राष्ट्रीय हित भी देखा, सामाजिक हित भी देखा। असंयमी जीवन से जो जनसंख्या बढ़ेगी, वह सबके लिए दुःखदायी होगी, हमारे आचार्यों ने इसे स्पष्टतया देख लिया था; तभी तो उन्होंने संयम, शील, और ब्रह्मचर्य पर इतना जोर दिया।

देखिये, सुखमा-सुखमा काल में युगलिये जनमते थे। कालान्तर में जन्म की अन्य प्रक्रिया ने स्थान ले लिया, इसलिए तीर्थंकरों ने शुरू से ही संयम की बात कही। फिर आचार्यों ने जोर दिया। ब्रह्मचर्य में स्वहित तो है ही, राष्ट्र का हित

भी है। एक आचार्य ने तो यहाँ तक कह दिया है कि पुत्र के समान दुनिया में कोई बैरी नहीं है। जन्म से पहले ही वह माता-पिता की शक्ति का हरण कर लेता है। जन्म के बाद पति के प्रति जो शत-प्रतिशत प्रेम था, वह बेटे के कारण पचास प्रतिशत बँट जाता है; और जब उसकी शादी हो जाती है, तब उससे कुछ कहने जाएँ, तो कहता है कि जमाना बदल गया है। इसलिए आचार्यों ने कहा है कि तुम पुत्र को सर्वथा/सर्वदा सुख का कारण मानते हो, लेकिन वह भी तुम्हारा शत्रु है। यह इसलिए भी कि यदि तुम पुत्र/पुत्री की संख्या बढ़ाते चले जाओगे, तो उसी मात्रा में दुःख में भी वृद्धि करते जाओगे। संयम, शील और ब्रह्मचर्य ही सुख के कारण हैं, या यों कहिये इनमें ही सुख सन्निहित है। इस प्रकार संयम, शील और ब्रह्मचर्य से जो सन्तति-निरोध होता है, वह व्यक्ति-हित के साथ समाज और राष्ट्र-हित में है, कृत्रिम उपायों से जो सन्तति-निरोध होता है, वह कभी सफल नहीं हो सकता। उसकी पृष्ठभूमि पर भय और आतंक है।

ने. : शास्त्रों में बहुत अमृत है।

वि. : है; शास्त्रोक्त मार्ग (संयम, शील, तथा ब्रह्मचर्य) से ही अमर्याद जन-संख्या की वृद्धि को रोका जा सकता है, उसे नियंत्रित किया जा सकता है।

ने. : अब अपरिग्रह।

वि. : देखिये, दुनिया में हिंसा है, इसलिए अहिंसा है। असत्य है, इसलिए सत्य है। चोरी है, इसलिए अचौर्य है। अब्रह्म है, इसलिए ब्रह्मचर्य है और परिग्रह है, इसलिए अपरिग्रह है। दोनों स्थितियाँ परस्पर-विरोधी हैं। प्रकाश है, तो अँधेरा है। ये द्वन्द्व अनादि से है। आवश्यकता से अधिक अपने पास नहीं रखना चाहिये; अपरिग्रह की मूल भावना यही है।

ने. : अर्थात् परिमाण या सीमा निर्धारित करना।

वि. : हाँ; इससे हमारे मन की आकुलता कम हो जाएगी। धर्म ध्यान में भी योगदान मिलेगा। यह बहुत बड़ा सिद्धान्त है। लौकिक अपरिग्रहवाद को महात्मा गाँधी ने व्यावहारिक रूप दिया। आज भी ऐसे बहुत सारे श्रावक हैं, जिनके पास परिग्रह बहुत कम है। यदि कुछ है भी तो काफी सीमित है, अल्प है। वे संतोषी हैं; आनन्दपूर्वक रहते हैं।

ने. : यदि बाह्य परिग्रह कम होगा, तो भीतर का खुद-ब-खुद कम हो जाएगा।

वि. : बिलकुल होगा। दोनों एक-दूसरे पर अवलम्बित हैं।

ने. : 'व्यसन' क्या है?

वि. : 'व्यसन' एक सामान्य शब्द है। आचार्य समन्तभद्र ने तो यहाँ तक कह दिया कि भगवान् के प्रति कुछ-न-कुछ व्यसन है। व्यसन रहे कि पैर तीर्थयात्रा के लिए समर्थ बने रहें; भगवान् हाथ आपके चरणों में झुकने के लिए समर्थ रहें; जो जुबान है, वह आपके गुणगान के लिए समर्थ रहे; आँखें आपके दर्शन के लिए

समर्थ बनी रहें। मेरा मस्तक आपके सम्मुख झुकने के लिए तत्पर रहे; अर्थात् मेरे सारे अंगोपांगों को यह व्यसन हो कि वे सब आपके प्रति समर्पित रहें। इन्हें यह व्यसन हो कि ये सब धर्ममय हो जाएँ।

ने. : मुझे लगता है, व्यसन में जो 'वि' उपसर्ग है, उसके दो अर्थ हैं— 'विशिष्ट' और 'विकृत'।

वि. : सही है। बहुत अच्छी बात कही आपने। 'व्यसन' 'विकृत' के अर्थ में अधिक प्रचलित है। जैसे, तम्बाकू का व्यसन; उसे खाते हैं, चबाते हैं और फिर थूक देते हैं। चबाने के लिए उसे कुछ-न-कुछ चाहिये। तम्बाकू तो गधा भी नहीं खाता। उसमें अनेक दुर्गुण हैं। एक रूसी दार्शनिक ने लिखा है कि मैं तम्बाकू का एक चूट रोज पीता था, एक बार मैंने किसी कारण से ज्यादा पी लिया, नशे में बुद्धि-भ्रम के कारण मैंने अपनी पत्नी को गला घोट कर मार डाला, यानी उसकी जान ले ली।

ने. : नशे में विवेक समाप्त हो जाता है, व्यक्ति विवेक-शून्य हो जाता है।

वि. : इसलिए व्यसन जो भी है, दुःखदायी है। जैसे अफीम है, व्यर्थ की भूख बढ़ाती है, फिर आलस्य लाती है, नींद लाती है। भाँग खाने वालों को भी भूख बेहिसाब लगती है, उनकी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है। शराब से आँतड़ियाँ खराब हो जाती हैं। बुद्धि तो भ्रष्ट होती ही है। यदि कोई शराब पी कर आया हो और सत्य भी बोल रहा हो, तो भी उसके बयान को सत्य नहीं माना जाता। न्यायालय में भी उसकी कोई इज्जत नहीं है। इस प्रकार हम साफ-साफ देखते हैं कि सारे व्यसन दुःखदायी होने के साथ-साथ विनाशकारी भी हैं। तीर्थकरों और आचार्यों का समाज पर यह आशीर्वाद ही है कि हमारे समाज का एक बड़ा भाग कलियुग में भी इन व्यसनो से बचा हुआ है। जैन समाज आज आदर्श रूप में जीवित है। विषम काल में भी यदि हम इन व्यसनो से अपने परिवार और बच्चों को बचाने का पुरुषार्थ नहीं करेंगे तो हमें यह कल किसी गहरी खाई में धकेल देंगे।

ने. : आपने जैन समाज को स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दे दी है कि यदि वह व्यसन-मुक्त नहीं रहा, तो उसका अधःपतन हो जाएगा। जैन शास्त्रों में तो मुख्य व्यसन सात बताये गये हैं। थोड़ा इनके संबंध में बताइये।

वि. : व्यसन तो वैसे अनन्त हैं, लेकिन शास्त्रों में उन्हें सात की सीमा में गिना दिया गया है। जैसे—जुआ, शराब, मांस, वैश्या-गमन, शिकार, चोरी और परदार-सेवन। ये सब दुःख के कारण हैं। इनसे बचना चाहिये। आज इनमें से कुछ को प्रोत्साहन मिल रहा है। जुआ बढ़ता जा रहा है। जुए के कारण पाण्डवों को बारह साल बनवास भोगना पड़ा था। नल और दमयन्ती को दुःख भोगने पड़े थे। यदि जुआ मनुष्य को इतना उत्पीड़ित कर सकता है, तो अन्य सब व्यसनो के एक साथ होने से कितनी दुर्गति हो सकती है?

ने. : कोई कल्पना नहीं कर सकते ।

वि. : कल्पनातीत है यह क्षति; इसलिए इनसे बचना चाहिये; परिवार और समाज को बचाना चाहिये। यह साफ-साफ समझ लेना चाहिये कि व्यसन बुद्धि का नाश करते हैं, विवेकशून्य बनाते हैं; और व्यक्ति, परिवार तथा समाज को बर्बाद कर डालते हैं।

ने. : एक व्यसन-मुक्त समाज के लिए हम क्या करें ?

वि. : अपने आदर्श सामने रखें। एक आदर्श घराना किसे कहेंगे ? जिस घर में ये सात व्यसन नहीं हैं, वह आदर्श है। बड़ी-बड़ी बिल्डिंग-बंगले, महल-अट्टालिकाएँ, अपार धन-दौलत, बेशकीमती कपड़े, बहुमूल्य गहने—इन और ऐसी चीजों से कोई घराना बड़ा नहीं बनता। निर्व्यसनी घराना ही आदर्श घराना है, वही सबसे बड़ा है। इक्ष्वाकु वंश का जो वर्णन हम पढ़ते हैं, वह एक आदर्श घराने का वर्णन है। आदर्श घरानों की उज्ज्वल परम्परा रही है कि प्रारंभ में विद्याध्ययन तदुपरान्त घर-गृहस्थी में सात्विकता। गृहस्थी भी तब तक रहे, जब तक बुढ़ापा न दबोच ले। जब बुढ़ापा आने लगे तो त्यागमय जीवन व्यतीत करे, अपना समय तीर्थयात्रा में, स्वाध्याय धर्मध्यान में बिताये; मरण समीप आ जाए, तो भगवान् का नाम लेते हुए स्वेच्छा से शरीर छोड़ दे। ये हैं एक आदर्श घराने की पहचान।

ने. : बड़ा घराना। एक झोपड़ी में भी वह हो सकता है। शायद अमीरी, या गरीबी से उसका संबंध नहीं है।

वि. : यह है। बड़ा महल हो और उसमें रहने वाले व्यसन-मुक्त न हों तो, वह झोपड़ी से भी गया-बीता है।

ने. : यदि हम श्रावकों के लिए कोई आचार-संहिता बनाना चाहें, तो उसके प्रमुख सूत्र क्या होंगे ?

वि. : उत्कृष्ट श्रावकाचार दो हैं : एक, पं. आशाधरजी (सागर धर्माभूत) का; दो, आचार्य श्रीसमन्तभद्र (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) का। पहले में पाक्षिक श्रावक को प्रमुखता दी गयी है और दूसरे में व्रतिक श्रावक को।

ने. : पाक्षिक और व्रतिक श्रावक में क्या अन्तर है ?

वि. : पाक्षिक और व्रतिक विभाजन क्यों हुआ, यह तो शोध (रिसर्च) का विषय है। सामान्य रूप में इतना कहा जा सकता है कि जिसने तीन मकारों (मद्य-मांस-मधु) का त्याग किया है, वह पाक्षिक श्रावक है। व्रतिक श्रावक तीन मकारों को त्याग कर पाँच अणुव्रतों का भी पालन करता है। एक श्रावक में अष्ट मूलगुण होने जरूरी हैं।

ने. : इसका मतलब तो यह हुआ कि एक श्रावक को कम-से-कम मांस-अण्डा आदि के सेवन से बचना चाहिये, या बचाया जाना चाहिये।

वि. : पाक्षिक श्रावक के लिए यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है कि तीन मकारों (जिनमें मांस-अण्डे आदि त्याज्य/अभक्ष्य पदार्थ हैं ही) का वह दृढ़तापूर्वक त्याग कर संकल्प का कठोरतापूर्वक सावधानी के साथ मात्र पालन ही न करे, अप्रत्यक्ष रूप से भी उन्हें त्याज्य समझे/माने/प्रतिकूल-से-प्रतिकूल परिस्थिति में भी वह शाकाहारी ही रहे। श्रावक की आचार-संहिता के इस प्रथम सूत्र का हमें व्यापक प्रचार-प्रसार करना चाहिये और नामधारी श्रावक या सामान्य श्रावक को दृढ़तापूर्वक चरितार्थ करने की/जागरूकतापूर्वक पालन करने की प्रेरणा देना चाहिये। खान-पान से संबंधित यह सर्वप्रथम सूत्र है।

ने. : दूसरा सूत्र ?

वि. : देवदर्शन और स्वाध्याय; यह दूसरा सूत्र है। तीर्थकरों की मनोज्ञ-दिव्य मूर्तियों का दर्शन नित्य कर्तव्य होना चाहिये। भगवान् का जलाभिषेक देखने से चित्त की शुद्धि होती है और उसे शान्ति मिलती है। यदि वह अभिषेक-पूजा आदि में उत्तरोत्तर बढ़ता जाएगा तो स्वाध्याय आदि से वह अपने जीवन को अधिक स्वच्छ और स्वस्थ बना सकेगा।

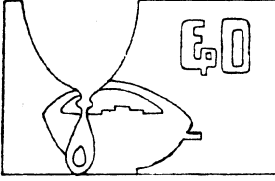
आज प्रचार-प्रसार का युग होते हुए भी बहिरंग वातावरण से बचना-बचाना बहुत मुश्किल है। रेडियो/टेलीविजन आ गये हैं; पिकचरें (फिल्म्स) आ गयीं — इन साधनों और माध्यमों के कारण विकृतियों का फैलाव हो रहा है। सिन्धु में अमृत की एक बूंद डाल कर उसे कैसे बचाया जा सकता है? समस्या जटिल है; फिर भी एक हवा है। महात्मा गांधी ने तो यहाँ तक कहा था कि किसी भी खिड़की से यदि शुद्ध हवा आ रही हो, तो उसे ले लो; किन्तु यदि उसमें-से धूल-कचरा आयेगा तो फिर उसे बन्द करना होगा। इस प्रकार आपके बहिरंग वातावरण में जो अच्छाइयाँ हों, उन्हें ले लो, लेकिन जो बुराइयाँ हैं, वे हमारे विनाश का कारण न बनें, इसका पूरा-पूरा ध्यान रखो। प्रतिकूल-से-प्रतिकूल वातावरण में भी श्रावक धार्मिक जीवन जीते हुए आत्मोन्नति कर सके, इसलिए आचार-संहिता में ऐसे सूत्रों या नियमों का समावेश हम कर सकते हैं।

ने. : आपके षष्टिपूर्ति-वर्ष को सारे देश में 'श्रावकाचार' वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है; इस पावन अवसर पर श्रावकों के लिए कोई सन्देश दीजिये।

वि. : बात यह है कि आत्मा की तो कोई उमर होती नहीं है। वह तो अजर-अमर है। गणित के हिसाब से देखा जाए तो साठ वर्ष की उमर हो गयी यानी साठ वर्ष बीत गये, अब जितना बच गया है, वह महत्वपूर्ण है। आप लोग मना रहे हैं, उसमें से यदि कुछ अच्छाइयाँ आती हैं, तो वह शुभ है। मैं यदि अपने परिणाम ऊँचे और श्रेष्ठ बनाऊँगा, तो मुझे लाभ होगा। आप इस निमित्त से समाज में एक स्वच्छ वातावरण तैयार करने जा रहे हैं; यह मंगलमय है। □ □

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/९१

साठ वसंत द्वार पर आ कर देते तुम्हें बधाई



फूल हँसे, कलियाँ मुस्कायीं, नव बहार है आई ।
साठ वसंत द्वार पर आ कर देते, तुम्हें बधाई ॥

जड़, चेतन के मन-प्राणों ने, ली नूतन अँगड़ाई ।
धर्म-कार्य साकार देख कर, प्रेम-घटा है छाई ॥
आत्मज्ञान के उदित सूर्य से, फँल गया उजियाला ॥
एलाचार्य मुनिश्री युगदृष्टा, विद्यानन्द निराला ॥

अन्धकार में आत्म तेज से, जागृति-ज्योति जलाई ।
साठ वसंत द्वार पर आ कर, देते तुम्हें बधाई ॥

त्याग-तपस्या देख तुम्हारी, चकित सूर्य-शशि-तारे ।
अंतस् आँखों की पलकों से, पथ के शूल बुहारे ॥
जाति-पाँत से ऊपर उठ कर, सबको गले लगाया ।
अहंकार-अभिमान गला कर, समता-रस बरसाया ॥

लाँघ गये वर्षों की सीमा, तब तरुणाई पाई ।
साठ वसंत द्वार पर आ कर, देते तुम्हें बधाई ॥

कुंठित मन को, थके पाँव को, देते आत्म सहारा ।
ज्ञानोदय की प्रखर धार से, तोड़ रहे तम-कारा ॥
खिले हृदय-सरवर में अभिनव, मादकता का शतदल ।
ऐसी दिव्य भावना का तुम, जप करते हो प्रतिपल ॥

अनेकान्त की दृष्टि अलौकिक, सहज आत्म सुखदाई ।
साठ वसंत द्वार पर आ कर, देते तुम्हें बधाई ॥

काम क्रोध मद मोह लोभ का, होता तुरत विसर्जन ।
आत्मज्ञान-गुंजन में डूबे, करते प्रभु का दर्शन ॥
झाँक-झाँक बाहर से भीतर, विद्यानन्द जगाया ।
बंद हुआ जग का कोलाहल, नव चेतन मुस्काया ॥

नये क्षितिज के द्वारा खोल कर, आत्म-सुरभि फँलाई ।
साठ वसंत द्वार पर आ कर देते, तुम्हें बधाई ॥

—बाबूलाल जैन 'जलज'

श्रावक वह जिसके आचरण में जैनत्व हो

आचार्यश्री आनन्द ऋषि/डॉ. नेमीचन्द जैन; अहमदनगर (महाराष्ट्र), २२ फरवरी, १९८५

डॉ. नेमीचन्द जैन : श्रावक कौन हो सकता है ?

आचार्यश्री आनन्द ऋषि : पाँच अणुव्रतों (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह), तीन गुणव्रतों (दिशा-परिमाण, भोगोपभोग-परिमाण, अनर्थदण्ड), और चार शिक्षाव्रतों (सामायिक, देशावकालिक, पीषध, अतिथि-संविभाग)—इन बारह व्रतों का जो निष्ठापूर्वक पालन करता है, वह उत्कृष्ट श्रावक है। श्रावकों की जो ग्यारह प्रतिमाएँ हैं, उनका भी जो पालन करे, उसका नम्बर और आगे है। प्रतिमाएँ तो श्रावक की चारित्रिक उन्नति की सोपान हैं।

ने. : श्रावक का खान-पान पहले जैसा नहीं रहा; उसमें बहुत-सी अशुद्धियाँ झा गयी हैं; क्या किया जाए ?

आ. : सुधार होना चाहिये। आहार पर ही विचार है—यह सिद्धान्त है। आहार अगर तामसी है, रजोगुणी है, तो विचार तामसी और रजोगुणी होंगे। सात्विक वृत्ति का जो आहार है, श्रावक को वही करना चाहिये। जैनों में पहले रात्रि-भोजन का विलकुल त्याग था। दिगम्बर जैन समाज में तो ऐसा कहा जाता था बच्चों को समझाते हुए कि 'देखो, यदि रात्रि में रोटी खाओगे, तो चमगादड़ की तरह लटकना पड़ेगा'।

ने. : अब डराने से काम नहीं चलता। डर से बात नहीं बन रही है अब; और क्या उपाय किया जाए ?

आ. : समझाने का; और उपाय है नहीं।

ने. : लोग कहाँ समझ रहे हैं ?

आ. : उन्हें लाभ-हानि बतायी जाए, गुण-दोष बताये जाएँ। जैसे—यदि कन्दमूल खाओगे, तो तामसी वृत्ति होगी। शास्त्रीय दृष्टि से इनमें अनन्त जीव हैं। 'समझाने' का ही मार्ग है।

ने. : जैन लोग जो व्यापार कर रहे हैं, उसमें आजकल हिंसा बहुत होती है। इसके लिए क्या किया जाए ? रेशम का कई जैन भाई व्यापार कर रहे हैं।

आ. : घी में चर्बी मिलाले हैं।
 ने. : उन्हें जैन कहें, या नहीं?
 आ. : कैसे कहेंगे?
 ने. : जो रेशम का धन्धा करता है, जो चर्बी मिलालता है, क्या उसे जैन कह सकते हैं?
 आ. : हरगिज नहीं; कैसे कह सकते हैं?
 ने. : दान दे तो?
 आ. : दान वह जैन के नाते नहीं दे रहा है।
 ने. : जैन के नाते वह दान दे रहा है—ऐसा वह मान रहा है, तो?
 आ. : ऐसा आदमी दान देगा, तो जैन के नाते हम कैसे ले सकते हैं? सबसे पहले धर्म के प्रति श्रद्धान होना चाहिये।
 ने. : जिसमें धर्म के प्रति श्रद्धान होगा, वह ऐसा कभी करेगा ही नहीं।
 आ. : कभी नहीं करेगा।
 ने. : श्रावकों को सेवा करनी चाहिये या नहीं?
 आ. : सेवा कैसी?
 ने. : गरीब की, बीमार की।
 आ. : हमारे यहाँ चार मुख्य भावनाएँ हैं, षोडश/बारह भावनाएँ हैं, उनमें गरीबों की रक्षा करना भी सन्निहित है; 'सत्त्वेषु मैत्रीं गुणेषु प्रमोदम्' तो है ही।
 ने. : लेकिन ईसाई लोग जैसी सेवा कर रहे हैं, वैसी जैन लोग कहाँ कर रहे हैं?
 आ. : सेवा का गुण उनमें अधिक है, तो लेना चाहिये।
 ने. : यानी जैनों को ईसाइयों से सेवा-तत्त्व सीखना चाहिये। श्रावकों के लिए यदि कोई सन्देश देना चाहें, तो अवश्य दीजिये।
 आ. : हिन्दुओं-में-भक्ति, मुसलमानों-में-यकीन, और जैनों-में-दया — ये तीन बातें हैं।
 ने. : क्या इन तीनों को मिला दें, तो 'श्रावक' बन जाता है? इनसे जो एक त्रिकोण बनता है; क्या वही श्रावक है?
 आ. : श्रावक में भक्ति होनी चाहिये, यकीन अर्थात् श्रद्धान होना चाहिये, और दया अर्थात् करुणा होनी चाहिये।
 ने. : 'दया' की बजाय 'करुणा' शब्द ज्यादा सार्थक है।
 आ. : करुणा कहो, अनुकम्पा कहो।
 ने. : इन तीनों तत्त्वों से जैनत्व बनता है। यह आपका श्रावकों के लिए सन्देश है?
 आ. : मुद्दे की बात तो यह है कि ढेर-सा वाचन किया, श्रवण किया, अगर आचरण में उसे नहीं उतारा, तो सब शून्य है, निरर्थक है। जिसके आचरण में जैनत्व प्रकट होता है, वही श्रावक है। □ □

श्राविका : संभाले / पहले घर, फिर बाहर

श्रीमती सौ. ललिताबाई/डॉ. नेमीचन्द जैन; रावळगाँव; २६ फरवरी १९८५

डॉ. नेमीचन्द जैन : आप जैन समाज के एक सुख्यात, समृद्ध घराने की गृहणी/ गृहलक्ष्मी हैं, श्राविका भी हैं। सबसे पहले तो आप यह बताइये कि आपकी आयु का यह कौन-सा वर्ष चल रहा है?

श्रीमती ललिताबाई : ७०वाँ चल रहा है।

ने. : आप अनुभव का विश्वकोश बन गयी हैं। एक श्राविका कैसी हो— इसकी जो परिकल्पना आपके चित्त पर हो, उसे बताइये। श्राविका किसे कहें? क्या गुण उसमें हों?

ल. : श्राविकाएँ गृहस्थ होती हैं और आश्रम की लड़कियाँ भी श्राविकाएँ होती हैं; आप किसके बारे में पूछ रहे हैं?

ने. : गृहणी के विषय में, जो घर-गृहस्थी का काम जिम्मेदारी के साथ करती है। 'श्राविका' शब्द मैं उसी के लिए काम में ले रहा हूँ। ऐसी श्राविका के गुण क्या हैं, या क्या होने चाहिये?

ल. : वह शादी करके आती है, उसकी पहली जिम्मेदारी अपने पति के साथ होती है। फिर घर में यदि सास-ससुर हैं, अन्य रिश्तेदार हैं, उन सबका ध्यान रखने की जिम्मेदारी है। इस जिम्मेदारी को निभाने का पहला गुण उसमें होना चाहिये। उसे देव-दर्शन का ध्यान भी रखना चाहिये। धर्म का पालन करने का दूसरा गुण होना चाहिये।

ने. : पारिवारिक जिम्मेदारी से आपका क्या मतलब है?

ल. : जहाँ संयुक्त कुटुम्ब होता है, उसमें बड़े-छोटे सदस्य होते हैं। उन सबकी सेवा करना आवश्यक हो जाता है; यानी पति-बच्चों के अलावा जो दूसरे संबन्धी हैं, उनका भी ध्यान रखना होता है।

ने. : क्या आपने शुरू से ऐसा किया है?

ल. : जब मैं इस घर में आयी, तब सोलह साल की थी। पहले दो सालों में कोई खास जिम्मेदारी नहीं थी, लेकिन तीन साल बाद जेठानी (श्रीमती बालचंदजी) के देहान्त हो जाने से उनके बच्चों की देखभाल की जिम्मेदारी आ गयी। जो भी जिम्मेदारी आयी, उसे अच्छी तरह से निभाया और अब तक निभाती आ रही हूँ।

ने. : ऐसा करते हुए आपको कैसा लगता है?

ल. : आनन्द आता है; आत्मीयता का अनुभव होता है।

ने. : मतलब यह कि एक श्राविका को अपने कुटुम्ब के प्रति कर्तव्य निभाने में आनन्द का अनुभव होना चाहिये और उसमें आत्मीयता भी होनी चाहिये; और क्या गुण जरूरी हैं ?

ल. : सबके साथ प्रेमपूर्वक रहना चाहिये।

ने. : घर के लोगों के साथ, या समाज के लोगों के साथ भी ?

ल. : दोनों के साथ; अपने जो नौकर-चाकर हैं, उनके साथ भी उसे ऐसा ही करना चाहिये।

ने. : क्या कभी आप अपने नौकरों पर नाराज होती हैं ?

ल. : थोड़ा-सा होना पड़ता है, जब वे बहुत गलती करते हैं; लेकिन वे जानते हैं कि यह हमारी माँ हैं; बुरा नहीं मानते।

ने. : आपका वह गुस्सा नकली होता है ?

ल. : बाद में मैं ही उसे (नौकर को) समझाने के लिए जाती हूँ : 'जो कहा उसे भूल जाओ और अपना काम करो'।

ने. : एक बड़े घराने की श्राविका को निश्चित रूप से नौकरों के साथ भी अच्छा व्यवहार करना चाहिये।

ल. : करना ही चाहिये। हमारे कुटुम्ब में सब ऐसा ही करते हैं।

ने. : आपका अनुसरण सब लोग करते हैं ?

ल. : हमारी जेठानी थीं, वे सबको सिखाती थीं कि ऐसे रहना चाहिये। लड़कियाँ जो स्कूल, या कॉलेज में पढ़ने जाती थीं, उन्हें हर रविवार को रसोई करने को लगाती थीं। उनका कहना था कि लड़कियों को रसोई बनाना तो आना ही चाहिये।

ने. : घर का सारा काम आना चाहिये ?

ल. : क्योंकि उन्हें ससुराल जाना है, इसलिए घर का सब काम आना चाहिये, इसका उन्हें बड़ा ध्यान रहता था।

ने. : जैसा उन्होंने सिखाया, वैसे आप भी सिखा रही हैं ?

ल. : हाँ। मैंने उनके पास से सीखा; अब सबको सिखाती हूँ।

ने. : आप एक शिक्षिका भी हैं; यानी एक श्राविका को शिक्षिका भी होना चाहिये।

ल. : होना पड़ता है।

ने. : जरूरी है। अच्छा, यह बताइये कि आपका खानदान कहाँ से है ?

ल. : मैं बहुत छोटे गाँव से आयी। वाल्हे नामक गाँव से, जो पूना जिले में है। कहा जाता है वाल्या कोड़ी था, वह रामनाम जपते-जपते वाल्मीकि हो गया। वाल्हे

नाम उन्हीं के नाम पर है। मैं उसी गाँव की हूँ। पिताजी अनाज का थोक व्यापार करते थे।

ने. : आपकी माँ ने आपको क्या-क्या संस्कार दिये ?

ल. : यह कि समुराल जाओगी, तो इतना सब करना आना चाहिये। उन्होंने मुझे रसोई बनाना सिखाया। पढ़ने भेजा। मैं सातवीं कक्षा तक पढ़ी थी, लेकिन पिताजी ने परीक्षा के लिए पूना नहीं भेजा। कहते थे कि लड़की को क्या करना है परीक्षा दे कर ?

ने. : आप तो ऐसा नहीं सोचती हैं ?

ल. : नहीं (हँसी)। यहाँ तो सब पढ़े-लिखे हैं। सबको शिक्षा जरूर देना चाहिये, पढ़ना अच्छा है; लेकिन मुझे इतना ही मौका मिला।

ने. : और क्या सिखाया आपकी माताजी ने ?

ल. : घर में, गाँव में भी, सबके साथ अच्छी तरह से रहना; सहेलियों तक से कभी लड़ाई नहीं करना। ऐसा वे थोड़ा-थोड़ा सिखाती थीं। घर में मन्दिर भी था; उसमें बहुत बढ़िया मूर्ति थी। अब तो वह पंचायती मन्दिर हो गया है।

ने. : आपको मूर्ति क्यों अच्छी लगती है ?

ल. : समाधान मिलता है। सामने बैठ कर दर्शन करते हैं, तो आनन्द आता है।

ने. : कैसा आनन्द आता है ?

ल. : मन को आनन्द आता है; शान्ति मिलती है।

ने. : चित्त को शान्ति मिलती है, वह स्थिर हो जाता है।

ल. : जरूर; चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं, सब भूल जाते हैं।

ने. : अभी भी आप उपासना करती हैं ?

ल. : हाँ; यहाँ भी घर में मन्दिर है; अभिषेक होता है; पूजा भी नियमित करती हूँ। कभी-कभी बहुत गड़बड़ होने से छूट जाती है।

ने. : भोजन इसके बाद ही करती हैं ?

ल. : भोजन तो बात में करती हूँ, लेकिन चाय-पानी पहले कर लेती हूँ। चाय-पानी का बन्धन नहीं है, लेकिन दर्शन का नियम है। यह मैंने जब सम्मेलन शिखरजी गयी थी; तब लिया था। सन् १९७५ के आस-पास।

ने. : क्या आपका वह संकल्प बराबर चल रहा है; प्रतिज्ञा निभ रही है ?

ल. : दर्शन का बराबर चल रहा है; लेकिन बीच में मैं विदेश गयी थी।

ने. : वहाँ क्या हुआ ?

ल. : दर्शन का नियम मैंने लिया है, अतः 'अब क्या करूँ' यह समस्या क्षु. सुमतिसागरजी के सामने रखी। उन्होंने समाधान दिया कि वहाँ (विदेश में) 'णमोकार

मन्त्र' का जाप करो; इसलिए मैं वहाँ स्नान के बाद हाथ पर णमोकार मन्त्र की जाप नियमित करती थी। हम दोनों गये थे। जाप के बाद हमारा अन्य काम होता था।

ने. : धार्मिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक रूप में हम अपनी सन्तान को बहुत-सी बातें देती हैं, वे ज्यादातर अच्छी होती हैं; कुछ खराब भी होती हैं। आपने अपनी आने वाली पीढ़ी को धार्मिक रूप में क्या दिया ?

ल. : णमोकार मन्त्र जपो, दर्शन करो, स्वाध्याय करो।

ने. : शुद्ध खाओ।

ल. : हाँ; शुद्ध और अच्छा खाओ। यह तो हम अपनी नयी पीढ़ी को बताते ही हैं, लेकिन आग्रह नहीं रखते।

ने. : समाज-सेवा के लिए कुछ कहती हैं ?

ल. : यहाँ तो समाज-सेवा से मतलब फैक्टरी या उद्योग में जो लोग काम करते हैं, उनके साथ अच्छा व्यवहार करना है।

ने. : आपका परिवार ही इतना बड़ा है कि उसने समाज का रूप ले लिया है।

ल. : यहाँ भी और मेरे पिताजी की तरफ से भी, सबकी देखभाल मुझे करनी पड़ती है।

ने. : यही आपका समाज है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आपको बहुत काम करना पड़ता है। क्या पति (श्री लालचंदजी) इन कामों में आपकी मदद करते हैं ?

ल. : उन्होंने ये सारे काम मुझे सौंप दिये हैं। उन्हें इतना विश्वास हो गया है कि मैं जो भी करती हूँ, वह किफायत से करती हूँ और बराबर करती हूँ। घर मेरा, उद्योग उनका।

ने. : बाहर वे, भीतर आप। क्या इस उम्र में कोई फर्क आया है ?

ल. : अभी वे निवृत्त (रिटायर्ड) हुए हैं। उनकी उम्र ८१ वर्ष की हो गयी है। थोड़ी-थोड़ी सलाह भी देते हैं।

ने. : इसका मतलब यह कि जब व्यक्ति वृद्धावस्था की ओर आता है, तब विचार-विमर्श करता है; उसके पहले वह नहीं कर पाता है। आप तो समाज में बहुत घूमती हैं; आपका परिवार ही बहुत बड़ा है। जैन नारी के संपर्क में आप निश्चित बनी रहती हैं। भारतीय नारी का चित्र आपकी आँखों के सामने रहता है, आप विदेश भी हो आयी हैं; वहाँ की नारी भी आपके चित्त में है। तो बताइये, भारतीय नारी की सबसे बड़ी विशेषता क्या है ?

ल. : भारतीय नारी का जीवन त्याग-प्रधान है। उसे सब के लिए 'खुद' को छोड़ना पड़ता है। उसे सबका ख्याल रखना होता है। वह अपना ख्याल छोड़ कर सेवा करती है। यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

ने. : जैनधर्म का तो आपको ज्ञान होगा ही ?

ल. : थोड़ा तो है; मैंने शास्त्र नहीं पढ़े हैं। समय ही कहाँ मिल पाता है।
हाँ, स्वाध्याय के लिए थोड़ा-थोड़ा पढ़ती हूँ।

ने. : क्या पढ़ती हैं।

ल. : 'समयसार' (कुन्दकुन्दाचार्य-रचित) थोड़ा-थोड़ा पढ़ती हूँ। अच्छा
लगता है। 'छहढाला' (पं. दौलतराम-कृत) मैंने पढ़ा है।

ने. : 'छहढाला' सरल है; यानी कोई पुस्तक यदि सरल भाषा में हो, तो
आपको अच्छी लगती है?

ल. : हाँ, माहिती (जानकारी) भी आसानी से मिल जाती है।

ने. : सेठजी (लालचंदजी) ने भी तो बचपन में 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार',
'द्रव्यसंग्रह'; 'तत्त्वार्थसूत्र' आदि पढ़े हैं। क्या आज भी वे आपके साथ पढ़ते हैं?

ल. : नहीं; लेकिन एक बात तो सच्ची है कि उन्होंने कभी भी मुझे धर्म के
बारे में मना नहीं किया। धर्म-कार्य से कभी भी रोका नहीं।

ने. : कभी हस्तक्षेप नहीं किया?

ल. : नहीं। वे खुद करें, या न करें; लेकिन मुझे पूरी छूट है। इतना तो
सेठजी और घर के सभी सदस्य मानते हैं कि साल में दो-तीन बार मुख्य रूप से
भगवान् महावीर के निर्वाण-दिवस पर हम सब इकट्ठा हो कर पूजा करें, उसमें सब
बच्चे भी शामिल होते हैं। हमारे जेठजी के जो बच्चे बम्बई में हैं, उन्हें भी मैं
दो दिन पहले यहाँ बुला लेती हूँ। हम सब मिल कर पूजा करते हैं, उसमें सेठजी
भी होते हैं।

ने. : जैनधर्म को सरल शब्दों में बताइये।

ल. : मुख्य तो अहिंसा है; पंच अणुव्रत हैं, इतना मैं बता सकती हूँ, इससे
ज्यादा गहराई में जा कर नहीं बता सकती। इनका पालन करना जैनधर्म है—यह
मैं मानती हूँ; उसी तरह पालन भी करती हूँ।

ने. : थोड़ा और बतालाइये।

ल. : एक तो हमें शाकाहारी होना चाहिये। मांस-मदिरा का सर्वथा त्याग
करना चाहिये। सच बोलना चाहिये और चोरी नहीं करनी चाहिये।

ने. : क्या इनमें से आप सबका पालन कर लेती हैं?

ल. : मैं तो लगभग करती ही हूँ।

ने. : आपके रसोईघर में शुद्ध वातावरण तो रहता ही होगा?

ल. : हाँ; बिलकुल शुद्ध ही रहता है।

ने. : आहार की बात कर रहा हूँ।

ल. : वह भी शुद्ध होता है। नल से पानी छान कर लेते हैं। स्नान करके रसोई बनाते हैं। हमारे यहाँ सब सुबह-सुबह स्नान कर लेते हैं। रसोईघर में कोई भी बिना स्नान किये नहीं जाता है। खाना अधिकतर सादा बनता है।

ने. : घर के खास-खास काम तो आप ही करती होंगी ?

ल. : हाँ।

ने. : घर का छोटा-से-छोटा काम करने में आपको कोई परहेज तो नहीं है ?

ल. : बिलकुल नहीं।

ने. : कभी झाड़ू लगाना पड़े तो ?

ल. : हाँ, जरूर लगायेंगे; और सफ़ाई भी करनी पड़े, तो वह भी करेंगे। कुटुम्ब में सबको सिखा दिया है कि जरूरत पड़ने पर सब काम खुद ही करना चाहिये। संकोच नहीं करना चाहिये।

ने. : अब थोड़े में अपनी दिनचर्या बताइये।

ल. : सुबह पौने पाँच उठती हूँ; वात का रोग होने से घण्टे-भर पाँवों में मालिश कराती हूँ। फिर स्नान करके पौने छह बजे बाहर आती हूँ। दूध-चाय का बन्दोबस्त मैं खुद करती हूँ। चाय-पानी सात बजे तक हो जाता है। रसोइये को आवश्यक बातें बता कर और स्कूल जाने वाले बच्चों से मिल कर सवा आठ बजे मन्दिर जाती हूँ। वहाँ अभिषेक, पूजा होती है। सवा नौ बजे लौटती हूँ। सेठजी का खाना रिटायर्ड होने के बाद से ग्यारह बजे होता है। उन्हें खिलाने के बाद चारह बजे मैं खाती हूँ। डेढ़-दो बजे थोड़ा विश्राम करती हूँ। फिर दोपहर की चाय होती है। अब्बार पढ़ती हूँ। घर का कोई काम हो, तो देख लेती हूँ। पाँच बजे बच्चे स्कूल से आते हैं; उनसे मिलती हूँ। वे नाश्ता करते हैं। साढ़े पाँच या छह बजे तक जो भी खाना-पीना हो, खाती हूँ। रात में खाना नहीं खाती। समाचार सुनती हूँ, टी. वी. (दूरदर्शन) नहीं देखती हूँ। लगभग दस बजे सो जाती हूँ।

ने. : विज्ञान ने मनोरंजन के इतने साधन उपलब्ध किये हैं; क्या आप उनका उपयोग नहीं करती हैं ?

ल. : पहले कभी-कभी सिनेमा देखती थी, लेकिन अभी का सिनेमा तो मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है। सिखाने की बात तो दूर, बिगाड़ने वाली बातें ही उनमें हैं।

ने. : श्रीमती शरयू दफ्तरी तो आपकी इकलौती पुत्री हैं, उन्हें आपने माता की हैसियत में क्या दिया है ?

ल. : छुटपन से ही शरयू बहुत शान्त रहती थी; बात भी नहीं करती थी। दो, तो ठीक; नहीं दो, तो ठीक। नवकार मन्त्र दिया। पढ़ाया; वह बी. ए. हो गयी। बाद में शादी कर दी। वह आज जो कुछ है, वह सब उसका खुद का है।

ने. : आपकी ओर से कुछ नहीं है ?

ल. : खास कुछ नहीं है।

ने. : अब जो वे कर रही हैं ?

ल. : उसमें एलाचार्य विद्यानन्द मुनिजी का आशीर्वाद है। हमारा आशीर्वाद तो है ही। उसने जो कुछ किया, या कर रही है, वह अपने घराने के गौरव को ध्यान में रख कर कर रही है। उसका कहना है: घर के बुजुर्गों (वालचंदजी आदि), ने ऐसा किया, तो हमें भी करना चाहिये।

ने. : आप तो उम्र की अच्छी मंजिल पर पहुँची हुई हैं। आप वयोवृद्ध होने के साथ-साथ अनुभव-समृद्ध भी हैं। भारतीय नारी विशेष कर जैन समाज की नारी को कोई सन्देश दीजिये।

ल. : आधुनिक नारी पढ़ेगी, सीखेगी तो जरूर; लेकिन इतना खयाल उसे अवश्य रखना चाहिये कि 'वह नारी है'। उसे पुरुष की बराबरी नहीं करना है। उसे अपने घर का और बच्चों का खयाल रखना चाहिये। फिर बाहर जा कर काम करना चाहिये। आजकल क्या हो गया है कि घर का काम साइड में (एक तरफ) हो गया है।

ने. : घर के काम को 'साइड' में कर दिया गया है; यानी वह गौण हो गया है।

ल. : होना यह चाहिये कि घर के काम को प्राथमिकता दें और बाहर के काम को समय मिलने (बचने) पर करें। जो नारी आज बाहर निकल गयी है, उसे अपने घर में लौटना चाहिये। उसे अपने घर के कर्त्तव्यों/दायित्वों को निभाना चाहिये। उसके बाद समय बचे, तो वह बाहर जाए। बाहर का काम उसे जरूर करना चाहिये। उसमें कौशल है, कला है, ज्ञान भी है—सब कुछ है; लेकिन पहले अपने घर का काम उसे करना चाहिये, फिर बाद में जो करना हो, करे।

ने. : पहले घर, फिर बाहर।

ने. : इसके बिना न तो उसे सुख-शान्ति मिलेगी, न घर के सदस्यों को।

ने. : आप आदर्श गृहणी के साथ ही श्राविका भी हैं; अतः हमारे लिए प्रणम्य हैं।

□□

सच्ची कोशिश बेकार नहीं जाती

इन खेतों को देखिये। इनमें बोये हुए अनाज के दानों को कुछ वक्त तक ज़मीन के अंदर दबे रहना पड़ता है, तब इसमें अंकुर निकलते हैं और ठीक वक्त पर वैसे ही सैकड़ों गुना अनाज पैदा हो जाता है। यही बात ऐसे हरएक जतन की है, जो किसी अच्छे काम के लिए किया जाता है। सच्ची कोशिश कोई भी बेकार नहीं जाती।

—अब्दुल गफ्फार खां

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/६१

क्या आप जानते हैं कि—

१. जिलेटिन कृतल किये गये पशुओं की हड्डियों और उनके चर्म से प्राप्त होता है। केप्सुलें इसी की बनायी जाती हैं।
२. १०० ग्राम रेशमी वस्त्र तैयार करने में १५०० कोसेटों (रेशम-के-कीड़ों) को उबालना पड़ता है।
३. रेनेट नामक पदार्थ, जो गाय-के-बछड़े के चतुर्थ आमाशय की झिल्ली से प्राप्त होता है चीज़/पनीर बनाने के काम आता है। चीज़ के लिए प्रतिदिन सैकड़ों-हजारों गौवत्सों की जानें जाती हैं।
४. देश में लगभग २७ हजार कटीखाने हैं, जिनमें ५५ हजार गायें हर दिन काटी जाती हैं।
५. अंडों में कोलेस्टेरोल की मात्रा के अधिक होने से उनसे हृदय-रोगों की उत्पत्ति अधिक होती है। युवावस्था में होने वाले हृदय-रोग, लकवा, गुर्दे-संबंधी रोगों की उत्पत्ति के प्रमुख कारण अंडे ही हैं।
६. विश्व में प्रतिदिन २० से २५ हजार व्यक्ति केवल प्रदूषित जल पीने के कारण मर रहे हैं।
७. एक किलो कस्तूरी प्राप्त करने के लिए २०० हिरण मारने पड़ते हैं।
८. सुगंधित पदार्थों (सेंट, परफ्यूम, पाउडर, क्रीम, लोशन इत्यादि) में नर-सिवेट (गंध-मार्जार) नामक पशु को पिंजरे में डाल कर उसकी गंध-अन्यि से एक स्राव निकाला जाता है, किन्तु जैसे ही यह स्राव निकलना कम, या बंद हो जाता है, उसे मार डालते हैं।
९. स्टीयरेट, जिसे क्रीम/लिप्स्टिक आदि बनाने के काम में लाया जाता है, मटन टेलो (चर्बी) में से प्राप्त होता है।
१०. इन्मुलीन भेड़-बकरियों को मार कर उनके अग्न्याशय (पेंक्रियाज़ नामक अवयव) से प्राप्त किया जाता है। मधुमेह के रोगी इसका उपयोग करते हैं।
११. लाख; जिसे रंग-रोगन, सील करने, खेल-खिलौनों इत्यादि के काम में लिया जाता है, लाखों सूक्ष्म जीवों के मारने पर किलो-भर प्राप्त होती है।

शाकाहार : अहिंसक जीवन-शैली का प्रमुख आधार

केवलचन्द जैन/डॉ. नेमीचन्द जैन,
दिल्ली, ५ मार्च १९८५

डॉ. नेमीचन्द जैन : आप शाकाहार के प्रचार-प्रसार में जुटे हुए हैं; इसके लिए तो आपका संपूर्ण जीवन समर्पित है, तो सबसे पहले आप बताइये कि शाकाहार के प्रचार-प्रसार में आपको रुचि कैसे हुई?

केवलचन्द जैन : दिल्ली के नवभारत हाईस्कूल नामक प्राइवेट विद्यालय में पढ़ाता था।

ने. : कौन-सा वर्ष था वह ?

के. : सन् १९७०। वहाँ मुझे बच्चों को पढ़ाने को मिला कि 'अण्डा खाओ, मछली खाओ, मांस खाओ, इनमें प्रोटीन बहुत है'। मुझे यह बहुत बुरा लगा। यह धर्म-विरोधी था, अतः इसके खिलाफ एक सोसायटी बनायी और आन्दोलन चलाया कि स्कूलों में मांसाहार की शिक्षा नहीं दी जानी चाहिये।

ने. : आप मानते हैं कि खान-पान का सम्बन्ध धर्म से है ?

के. : है ही।

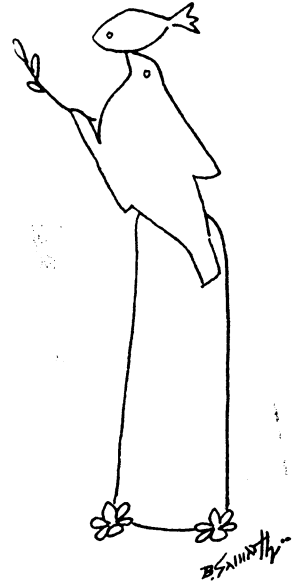
ने. : क्या यह मान लिया जाए कि जो मांसाहार नहीं करते, वे धार्मिक हैं।

के. : शाकाहार धार्मिक है और वैज्ञानिक भी है। मांसाहार से ज्यादातर बीमारियाँ होती हैं—ऐसा वैज्ञानिक तथ्य मान कर भी लोग शाकाहार करते हैं। धार्मिक परम्परा से भी शाकाहारी होते हैं। इसमें धर्म और विज्ञान दोनों की दृष्टि है।

ने. : शाकाहार के प्रचार के लिए आप घूमते भी हैं ?

के. : हाँ, मैं राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, मैसूर आदि में घूमा हूँ। इन राज्यों के दृष्टिकोण को समझने के लिए कि स्कूलों में इस सम्बन्ध में

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/६३



क्या पढ़ाया जाता है। पाठ्य पुस्तकों में क्या-क्या रखा गया है। यह सब देख कर मुझे ऐसा लगा कि सारे देश में बच्चों को मांसाहारी बनाने की सरकारी योजना है। शाकाहार का आन्दोलन खड़ा करने का प्रमुख कारण यही है।

ने. : शुरू में क्या किया ?

के. : पाँच राज्यों की पाठ्यपुस्तकों में जिनमें अण्डे-मछली के पाठ थे, उनमें शाकाहार के पाठ जुड़वाये।

ने. : कौन-सी कक्षाओं की ये पुस्तकें थीं ?

के. : १ से ११वीं तक की। इनसे संबंधित जो पाठ्य पुस्तकें हैं, उनमें सुधार करवाना है।

ने. : कॉलेजों में नहीं ?

के. : वहाँ विषय अलग-अलग हो जाते हैं। स्कूलों में तो आमतौर पर पढ़ाया जाता है।

ने. : आपने अपनी शक्ति को स्कूलों तक ही सीमित रखा ?

के. : हाँ।

ने. : यह काम भी बहुत बड़ा है। अब बतलाइये, शाकाहार का मतलब क्या है ?

के. : जो दाल-रोटी है, सब्जियाँ हैं, यही सन्तुलित और सबसे बढ़िया आहार है।

ने. : इसमें हिंसा नहीं होती ?

के. : कम-से-कम होती है। मांसाहार में तो हिंसा-ही-हिंसा है। क्रूरता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन) जो पहले अण्डे-मांस का प्रचार करता था, उसी ने अब शाकाहार का प्रचार शुरू किया है। अण्डे-मछली-मांस खाने से १३४ बीमारियाँ होती हैं, यह विश्व स्वास्थ्य संगठन ने बताया है। उसका असर भारत में भी पड़ा, दिल्ली में उसकी शाखा है।

ने. : विश्व स्वास्थ्य संगठन के किस बुलेटिन में आपने यह सब पढ़ा है कि मांसाहार से १३४ बीमारियाँ होती हैं ?

के. : 'वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन' क्रॉनिकल-३५, ५.२२७-३२२; १९८१; जिसमें बताया गया है कि आँतों का कैंसर, दिल की बीमारी-जैसी १३४ बीमारियाँ मांसाहार से होती हैं। पश्चिम भी अब मांसाहार छोड़ रहा है। स्वास्थ्य की दृष्टि से वह भी शाकाहार की ओर झुक रहा है। हमें भी अपने देश में तेजी से कार्य करना चाहिये।

ने. : क्या आपके गैर-शाकाहारी मित्र हैं ?

के. : हैं। उन्हें बातचीत में बताता हूँ कि बाज़ार से जो सब्जी लाते हैं, साफ-सुथरी लाते हैं। कौन-सी सब्जी कैसी है, यह भी लेते समय पूछते हैं; लेकिन क्या मांस खरीदते समय ऐसा करते हैं। बीमार जानवर का मांस भी खाने की

आशंका बनी रहती है। कुल मिलाकर मांस का खाना महंगा और बीमारी फैलाने वाला होता है। वे कई बार महसूस करते हैं और मांस खाना छोड़ने पर राजी हो जाते हैं ?

अण्डों के बारे में बतलाता हूँ कि इसमें छह प्रकार के विष हैं, जो शरीर के मुख्य अंगों—धमनियों, हृदय, मस्तिष्क, गुर्दों, जिगर आदि को हानि पहुँचाते हैं, इनसे सम्बन्धित बीमारियों को जन्म देते हैं। वे इसे समझने की कोशिश करते हैं।

ने. : कितनों ने मांस-अण्डा खाना छोड़ दिया ?

के. : संख्या बताना मुश्किल है; लेकिन जो लोग संपर्क में आते हैं, उन्हें यह बात समझाता अवश्य रहता हूँ।

ने. : कितने वर्षों से आप यह प्रयत्न कर रहे हैं।

के. : सन् १९६७ से शुरू किया था; १७-१८ वर्ष हो रहे हैं।

ने. : इस सब के पीछे आपका उद्देश्य क्या है ?

के. : यह कि लोगों को शाकाहार की सही और परिपूर्ण जानकारी होनी चाहिये। अभी तो यह प्रचार जोरों पर है कि मांस-अण्डों में पौष्टिक तत्व ज्यादा है। स्कूलों में बच्चों को जैसी सही, वैज्ञानिक और तुलनात्मक जानकारी दी जानी चाहिये; उसका अभाव है। सरकारी स्तर पर जो अंधाधुंध प्रचार किया जा रहा है, उसे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता, वह भारतीय परम्परा के बिल्कुल विरुद्ध है। इस मिथ्या, भ्रामक; और लुभावने व्यापक प्रचार से हमें बचना होगा और दूसरों को बचाना होगा। जब तक शाकाहार का बड़े पैमाने पर जोरदार प्रचार नहीं होगा, तब तक मांसाहार रोका नहीं जा सकेगा।

ने. : यह काम आप धार्मिक दृष्टि से कर रहे हैं, समाज-सेवा की दृष्टि से कर रहे हैं, या आत्मसंतोष के लिए कर रहे हैं ?

के. : पहले तो व्यक्तिगत संतोष की दृष्टि से करता रहा। यदि मेरा बच्चा मांस-अण्डे खाने की शिक्षा पायेगा, तो मुझे बुरा लगेगा, असंतोष भी होगा। मेरा अपना स्वार्थ था। मुझे याद आ रहा है, जब मेरे सबसे बड़े बच्चे ने प्रश्न किया था कि 'मैं अण्डा क्यों न खाऊँ; जबकि मेरे सहपाठी अण्डा खाते हैं?' इस तरह यदि स्कूल में मांसाहार का पाठ पढ़ाया जाएगा, तो घर में शाकाहार का पालन बहुत मुश्किल हो जाएगा।

ने. : क्या 'शाकाहारी अण्डा' होता है ?

के. : हो ही नहीं सकता। चूँकि शाकाहारी समाज के बच्चे शाकाहार करते हैं, उन्हें यदि कहा जाए कि अण्डा मांसाहार है, तो वे खायेंगे नहीं, इसलिए उन्हें 'शाकाहारी' कह कर बरगलाया जाता है। शाकाहारी अण्डा यानी अण्डा शाक-सब्जी है। अण्डा कोई पेड़ पर तो पैदा होता नहीं? वह तो मुर्गी से पैदा होता है। जिस

अण्डे से उत्पत्ति नहीं होती, प्रचार के लिए कुछ लोग अपनी बिक्री के लिए उसे 'शाकाहारी अण्डा' कह देते हैं। वास्तव में यह 'मुर्गी-का-गर्भपात' होता है, जो कि खून, मल-मूत्र आदि से भींगा हो कर मुर्गी के पेट से बाहर निकल पड़ता है। इसमें साधारण अण्डे की अपेक्षा बीमारी पैदा करने की अधिक शक्ति होती है। इस तरह के अण्डे न पैदा किये जाते हैं और न बाज़ार में मिलते हैं। तथाकथित शाकाहारी अण्डे की पहचान भी मुश्किल है। यह तो शाकाहारी समाज को मांसाहारी बनाने की योजना है, या कहें षड्यंत्र है। कहते हैं, मछली शाकाहारी है, तो क्या वह वृक्ष पर पैदा होती है?

ने. : 'शाकाहार-प्रदर्शनी' लगाने की प्रेरणा आपको कैसे मिली ?

के. : विश्व स्वास्थ्य संगठन वाले नुमाइश करते थे। उन्होंने कहा कि शाकाहार के विषय में आपने जो कार्य किया है, उसे हम प्रदर्शित करना चाहते हैं। शाकाहार से सम्बन्धित चार्टर्स, पोस्टर्स आदि तैयार करके मैंने लगाये आगे चल कर उसी ने प्रदर्शनी का रूप ले लिया। बढ़ते-बढ़ते आज वही इतना विशाल हो गया है।

ने. : आपकी प्रदर्शनी की विशेषता क्या है ?

के. : इसमें शाकाहार से सम्बन्धित सभी धर्मों का उपदेश है; जैसे; सनातन धर्म, आर्य समाज, सिक्ख मत, कबीर पंथ, इस्लाम, ईसाई, बौद्ध, जैनधर्म; वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भी प्रदर्शनी में दर्शाया गया है; जैसे : शरीर-रचना; एवं शरीर-विज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन, शाकाहार-शक्ति से भरपूर, अंडों में ६६ प्रकार के विष आदि।

ने. : वैज्ञानिक तथ्य भी प्रदर्शित किये हैं ?

के. : हाँ; कोई धर्म को माने, न माने; लेकिन विज्ञान को तो आमतौर पर सब मानते हैं; इसलिए वैज्ञानिक तथ्यों को भी इसमें प्रस्तुत किया गया है। चाहे धर्मावलम्बी हो, या सर्वसाधारण यदि जिज्ञासु हैं, तो वह शाकाहार प्रदर्शनी को देख कर प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

ने. : क्या प्रदर्शनी के संयोजन में आपको आर्थिक संघर्ष करना पड़ा ?

के. : शुरू में हम एक गोलक रखते थे। निवेदन किया जाता था कि यदि आपको यह प्रदर्शनी अच्छी और उपयोगी लगी हो, तो सहयोग के प्रतीक-रूप इसमें कुछ डालते जाइये। लोग अपनी शक्ति/श्रद्धा के अनुसार डालते थे।

ने. : आरंभिक पूँजी कहाँ से आयी ?

के. : शुरू में चन्दा इकट्ठा किया। प्रदर्शनी की उपयोगिता देख कर लोग आकर्षित होने लगे। अधिक सहयोग मिलता गया।

ने. : कभी निराश भी होते होंगे ?

के. : कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं, यह देख कर कि मांसाहार के प्रचार में सरकार कितना खर्च कर रही है और हम उसके मुकाबले शाकाहार का जोरदार प्रचार नहीं कर पा रहे हैं। मांसाहार के प्रचार में लगे लोगों का ख़ज़ान उधर ज्यादा है, क्योंकि उन्हें ज्यादा पैसा और पद मिलता है, तरक्की होती है। शाकाहार

के प्रचार करने वालों को इतनी सुविधाएँ कहाँ मिल पाती हैं? फिर भी हमें विश्वास है कि शाकाहार की महत्ता और उपयोगिता को लोग समझेंगे और हम डट कर मांसाहार का मुकाबला कर सकेंगे।

ने. : क्या जैनों का खानपान गिरा है।

के. : हाँ, मांसाहार की जो हवा चल रही है, उसका असर जैनों पर भी पड़ रहा है। जैनेतर बच्चों के साथ हमारे बच्चे भी पढ़ते हैं। उन्हें देख कर हमारे बच्चे भी इच्छा करते हैं। खुले आम नहीं, तो चुपचाप खाने की आदत उनमें पड़ने लगी है।

ने. : यह तो आपने सामान्य तथ्य बता दिया। क्या किसी जैन घराने में आपको देखने को मिला कि अण्डे खाये जा रहे हैं, या मांस खाया जा रहा है?

के. : सुना जरूर है, प्रत्यक्ष कभी देखा नहीं है।

ने. : प्रदर्शनी अब तक कितनी जगह लगायी जा चुकी है?

के. : ४००-५०० जगहों पर।

ने. : सुना है, आपके पास जो सामग्री है, वह पुरानी हो गयी है, उसमें ताज़गी नहीं है?

के. : ऐसा तो नहीं है। उसे सँभाल कर रखा जाता है; पानी-हवा-धूल से हम उसे सुरक्षित रखते हैं। जो चित्र धुँधले पड़ जाते हैं, उन्हें सही करवाते हैं, नये-नये तथ्यों से संबंधित चार्ट्स, पोस्टर्स भी जोड़ते रहते हैं।

ने. : क्या यह काम आप अकेले ही कर रहे हैं या आपकी कोई 'टीम' है?

के. : टीम है। सोसायटी के मेम्बर हैं। स्थानीय कार्यकर्ता भी मिल जाते हैं।

ने. : सोसायटी का नाम क्या है?

के. : 'नव जीवदया मण्डल'।

ने. : क्या आपने इसे दिल्ली में स्थापित किया था?

के. : हाँ, रजिस्टर्ड है। सन् १९७४ में इसे रजिस्टर्ड करवाया गया था। पहले तो मैं व्यक्तिगत/खानगी तौर पर काम करता रहा; फिर उत्तरोत्तर बढ़ता गया। अब मैं इस संस्था का प्रधान हूँ। इसके द्वारा शाकाहार से संबंधित साहित्य भी प्रकाशित होता है—हैंडबिल, पुस्तिकाओं के रूप में।

ने. : आपकी 'प्रदर्शनी परम्परिक अधिक और वैज्ञानिक कम' है—क्या यह ठीक है?

के. : आधुनिक भी है। जो भी वैज्ञानिक नवीनतम तथ्य, या जानकारी मिलती है, उसका समावेश इसमें किया जाता है। इसमें प्राचीनता और आधुनिकता का समन्वय है। आधुनिक तथ्यों को सिद्ध करने के लिए प्राचीन तथ्य और प्राचीन

तथ्यों के समर्थन में आधुनिक जानकारी प्रदर्शित की जाती है। प्रदर्शनी को सब तरह से ज्ञानवर्धक और आकर्षक बनाने की कोशिश रहती है।

ने. : ऐसे कौन-से खाद्यान्न हैं, जिनमें अण्डों से अधिक प्रोटीन है ?

के. : मूंग और उड़द में २४ प्र.श., तुवर, मटर, चना में २२ प्र.श., सोयाबीन में ४५.२ प्र.श., मूंगफली में ३१.५ प्र.श., दूध में ३८ प्र.श.। शाकाहारी खाद्य पदार्थ जितने भी हैं, उनमें प्रोटीन की मात्रा अधिक है। मांसाहारी खाद्य पदार्थ उनकी तुलना में बहुत पीछे हैं।

ने. : क्या शाकाहार सन्तुलित आहार है ?

के. : है ही; उसमें सब तत्व आ जाते हैं। इसमें कार्बोहाइड्रेट्स ६० प्र.श. है, कैल्शियम है, फास्फोरस है, लोहा है और कैलोरी भी काफी मात्रा में हैं। दूध और घी को मिला कर सन्तुलित आहार बनता है। भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा प्रकाशित हेल्थ बुलेटिन नं. २३, कोनर (टी. एन.) लेबोरेटरी रिसर्च में जो शाकाहारी खाद्य और मांसाहारी खाद्य के पौष्टिक तत्वों का तुलनात्मक अध्ययन है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि शाकाहार ही सन्तुलित आहार है।

ने. : आपकी भावी योजनाएँ क्या हैं ?

के. : मांसाहार का प्रचार सरकार अपने विभिन्न मंत्रालय (स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि, उद्योग, मत्स्य पालन आदि तो हैं ही) द्वारा व्यापक पैमाने पर कर रही है। हमारी योजना है कि ऐसा संयुक्त और सुदृढ़ प्रयत्न किया जाए, जिसमें सरकारी स्तर पर मांसाहार का प्रचार बन्द हो। हमें ऐसा प्रयत्न करना है, जिससे सरकार अपनी रीति-नीति में परिवर्तन करे। छोटे पैमाने पर तो हमने लिखा-पढ़ी की है, जिसका परिणाम उत्साहवर्धक है। हमारी बात की एकदम उपेक्षा नहीं की गयी है; लेकिन अब यह कार्य योजनाबद्ध/सुनियोजित होना चाहिये।

ने. : सरकारी स्तर ही क्यों; उससे हट कर गैरसरकारी स्तर पर काम क्यों नहीं ?

के. : सरकारी स्तर पर कार्य करते हुए, गैरसरकारी स्तर पर भी करना ही है। आम लोगों में जागृति के लिए काम करना आवश्यक है; क्योंकि समझाने से ही काम बनेगा। सरकार भी करे, और हम भी। सरकार का विरोधी रख होने से मुश्किलें काफी बढ़ जाती हैं; काम करना बड़ा कठिन हो जाता है। 'सरकार शाकाहार की महत्ता और उपयोगिता को समझे', नम्बर १; 'आम जनता भी समझे', नम्बर २। लोकमानस बनाने में तो हमें संगठित प्रयत्न/आन्दोलन करना होगा। देश में शाकाहार की प्रतिष्ठा लौटनी चाहिये। धर्म और विज्ञान — दोनों ही हमारे समर्थक और सहयोगी हैं।

ने. : शाकाहार हमारी अहिंसक जीवन-शैली का अभिन्न अंग है। शाकाहार के अभाव में अहिंसक समाज की तो कल्पना ही नहीं जा सकती। □□

श्रावक : मन्दिर-से-प्रेरित; सत्साहित्य-से-प्रोत्साहित



पं. फूलचन्द शास्त्री/डॉ. नेमीचन्द जैन, इन्दौर, ३१ जनवरी १९८५

डॉ. नेमीचन्द जैन : श्रावक की कल्पना क्या है आपकी ?

पं. फूलचन्द शास्त्री : श्रावकाचार एक विशेष बात है। जैनधर्म में श्रावक उसे ही कहना लाभकारी है, जो मूलधर्म को अंगीकार करने का विचार करता है कि कदाचित् ऐसा मौका आये कि मैं निर्विकार बनूँ। अकेले आत्मा मैं रह जाऊँ और यह जो मेरे ऊपर आवरण है, संयोग है, वह हट जाए। इसका तो मार्ग एक ही है।

ने. : कहाँ से चलना शुरू करे वह इस मार्ग पर ?

फू. : पहले तो वह देव (तीर्थंकर) को देखे, गुरु को देखे, साहित्य (शास्त्र) को देखे; इन तीनों को देखे। ये हमारे हैं; हमें इनके साथ रहना है; इनके उपदेशों के अनुसार चलना है।

ने. : श्रावक में ऐसी श्रद्धा होनी चाहिये ?

फू. : हाँ, फिर अहिंसा की जो बातें हैं, तीन प्रकार का त्याग और पाँच अणुव्रत यानी आठ मूल गुण हों, उनका पालन हो, यह बात आनी चाहिये। इसके बाद ही वह श्रावक कहलाने का अधिकारी है।

ने. : सामाजिक आचरण उसका कैसा होना चाहिये ?

फू. : अपने समाज तक मर्यादित होना चाहिये। जिन समाजों में अहिंसा की बात नहीं है, या धर्म की विशेष बात नहीं है, उन समाजों से तो सम्पर्क नहीं ही होना चाहिये। प्रत्येक जैन को मन्दिर तो आना ही चाहिये, चाहे वह हाथ जोड़ कर भले ही चला जाए।

ने. : स्वाध्याय की क्या स्थिति है ?

फू. : यह तो बाद की बात है।

ने. : पहले यह करे। इसे करने के बाद ?

फू. : उसके बाद स्वाध्याय, भक्ति, और सामाजिक कार्य ये सब हैं।

ने. : कौन-से ग्रन्थ से शुरू करे वह ?

फू. : हमारा पहला गौरव-ग्रन्थ तो है 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' ।

ने. : उसकी क्या विशेषताएँ हैं?

फू. : उसमें श्रावकाचार की सीधी-सच्ची बातें लिखी हैं, सामाजिक बात बिलकुल नहीं आयी है ।

ने. : सीधी बात यानी ?

फू. : सीधी बात का मतलब है, उसमें अहिंसादि पाँच अणुव्रतों का स्पष्ट और विशद विवेचन किया गया है । कहा गया है कि तीन मकार (मधु, मद्य, मांस) के सर्वथा त्याग के साथ पाँच अणुव्रतों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) अर्थात् आठ मूलगुणों का तो श्रावक को पालन करना ही चाहिये ।

ने. : इतना तो करना ही है ।

फू. : ऐसा करने का स्पष्ट निर्देश दिया गया है ।

ने. : आप क्या सोचते हैं, 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' को प्रचारित किया जाए ?

फू. : प्रचार करना चाहिये, वह हमारा मूल ग्रन्थ है ।

ने. : आचार्य समन्तभद्र की मुख्य दृष्टि क्या है इसमें ?

फू. : यह कि व्यक्ति (श्रावक) को 'पर' से हट कर स्वभाव में जाना चाहिये । उन्होंने अन्त में 'समाधि' पर विचार रखे हैं, उसका अर्थ ही यह है ।

ने. : 'पर' से हट कर 'स्व' में प्रवेश करे । श्रावकाचार का मूल आधार भी यही है ।

फू. : हाँ ।

ने. : इसकी ओर हमारा ध्यान जाना चाहिये ।

फू. : क्योंकि पर से हटना, स्वभाव में आना; यही आत्मा की प्राप्ति है ।

ने. : लेकिन ऐसा करते हुए सामाजिक तो रह नहीं पायेगा आदमी (श्रावक) ।

फू. : नहीं; यह तो अन्तिम ध्येय है न ? सामाजिक रह कर भी वह इसकी भावना तो रख सकता है । भावना कर सकता है । गृहस्थी में रहते हुए इस भावना का निषेध तो नहीं है । वह अपने बाल-बच्चों में रहे; उनकी साल-सँभाल करे; अपने दायित्व निभाये, कर्तव्यों का पालन करे, यह सब करे, लेकिन स्वयं को और अपने बाल-बच्चों को घर से यानी ऐसे समाजों के सम्पर्क से बचाये जो अहिंसादि का पालन नहीं करते हैं, यह मेरा विनम्र आग्रह है । अभी मैंने सुना, मेरे परिचय का एक आदमी है, उसका लड़का मांस खाने लगा है ।

ने. : क्या इलाज है इसका ?

फू. : जिन समाजों में हिंसादि का जोर हो, उनसे स्वयं को और अपने परिचार को बचाया जाए ।

ने. : अपने समाज में भी भ्रष्टता तो है, संस्कार कहीं रह गये हैं, कैसे लौटा सकेंगे इन्हें ?

फू. : संगठन करना होगा ।

ने. : कैसे ? कोई उपाय बताइये ।

फू. : संगठन ही एकमेव उपाय है । एक गोष्ठी बुलायें, जिसमें ऐसे लोगों को लें जो चिन्तक हों, विचारक हों । उन्हें भी स्थान दें, जिनका समाज में प्रभुत्व है, या जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं । उन्हें लेने से सब तरह के विचारों का आकलन हो सकेगा । यहाँ हमें पहला निर्णय मन्दिर जाने का करना चाहिये । गोष्ठी में मन्दिर जाने की महत्ता और उपयोगिता पर चर्चा कर ऐसा निर्णय लेना चाहिये, ताकि सब उसका पालन कर सकें ।

ने. : मन्दिरों को भी आकर्षक बनाये जाने की आवश्यकता है । मन्दिर जैसे अभी हमारे सामने हैं, वे ऐसे तो नहीं हैं कि हमें निमंत्रण देते हों कि 'आओ हमारे यहाँ' ।

फू. : बनाइये आकर्षक, कौन रोकता है ?

ने. : कैसे ? क्या करें ?

फू. : एक उपाय यह है कि उनमें ऐसी पुस्तकें रखी जाएँ, जिन्हें पढ़ने की उत्कण्ठा लोगों में बने । सत्साहित्य एक आकर्षण हो सकता है ।

ने. : ऐसा साहित्य है क्या ?

फू. : तैयार किया जाए । आधुनिक भाषा-शैली में कथाएँ लिखी जाएँ । कथाओं के द्वारा लोगों में आकर्षण पैदा होगा; यह मन्दिर में प्रवेश का निमित्त भी बन सकता है । तत्त्वज्ञान के द्वारा प्रवेश नहीं होगा; क्योंकि तत्त्वज्ञान तो व्यक्ति-का-जीवन है और समाज का जीवन तो कथाएँ हैं; मैं ऐसा मानता हूँ ।

ने. : कथाओं के माध्यम से वह तत्त्व की ओर जाएगा ।

फू. : हाँ, बच्चे हैं, युवा हैं, उनके लिए छोटी-छोटी किताबें तैयार हों; ऐसी बालोपयोगी पुस्तकें हों, जो उनमें आकर्षण पैदा करें, मन्दिरों में यदि ऐसी पुस्तकें उपलब्ध हों, तो वे उनकी ओर खिंचे बिना नहीं रहेंगे । मन्दिरों में ऐसी पुस्तकें अवश्य रखी जाएँ ।

ने. : यानी मन्दिर और साहित्य — इन दोनों पर हमारा ध्यान जाना चाहिये, तभी हमारी आने वाली पीढ़ी धर्म की ओर अग्रसर/आकर्षित हो सकती है ।

फू. : इसे संगठित हो कर योजनापूर्वक करना चाहिये ।

ने. : श्रावक को इस तरह मन्दिर-से-प्रेरणा और सत्साहित्य-से-प्रोत्साहन मिलना चाहिये ।

□

स्वानुभूति में गर्भित है सम्यक्त्व

बुद्ध ने उनकी नजरें पढ़ लीं; बोले - 'तुम्हें क्या पता कि इस आलिङ्गन/मिलन में क्या था? तुम्हारे बाद हजारों-हजार वर्षों तक इसे कौन समझायेगा, और किसी के समझने की जरूरत भी क्या है? सत्य को समझाया नहीं जा सकता; उसे देखने के लिए भीतर-की-आँखें चाहिये।

महावीर ने कहा—

एक व्यक्ति सम्यक् भावना से असम्यक् कार्य कर रहा है।

एक व्यक्ति असम्यक् भावना से सम्यक् कार्य कर जाता है।

एक सम्यक् भावना से किया गया असम्यक् कार्य भी सम्यक् है।

एक असम्यक् भावना से किया गया सम्यक् कार्य भी असम्यक् है।

प्रायः सारे जैन सम्प्रदायों ने सम्यक्त्व को अपनी-अपनी विचारधाराओं तथा गुरुजनों से जोड़ कर अपने अनुयायियों को सैकड़ों वर्षों से अपने-अपने संकीर्ण स्वार्थों के पोषण के लिए पथभ्रष्ट किया है। यह आरोप किसी एक परम्परा पर नहीं, सभी परम्पराओं पर चरितार्थ होता है। स्थापित परम्पराओं से विद्रोह कर जिन्होंने अपनी अलग परम्पराएँ कायम कीं उन्होंने, या उसकी घेरेबन्दी करने के लिए इसी प्रपंच का सहारा लिया है। किसी दूसरे सम्प्रदाय के व्यक्ति की कोई सही बात भी मान लेना, या अपने सम्प्रदाय की किसी प्रत्यक्षतः गलत बात को भी गलत कहने का दुस्साहस मात्र ही हमारे सम्यक्त्व को नष्ट करने के लिए काफी है तथा एक बार सम्यक्त्व के नष्ट हो जाने पर फिर अनगिनत जन्मों तक मानव-देह तथा सम्यक्त्व मिलना कठिन है; अतः 'हम जो कहते हैं, उसे आँख मूंद कर मानते रहो और हमारे अलावा कोई कुछ भी कहता हो उसकी एक मत सुनो' मानना तो बात ही अलग है, सम्यक्त्व को बचाये रखने का एकमात्र यही उपाय, ये सम्प्रदाय और उनकी परम्पराएँ अपने अनुयायियों को बताती हैं।

और महावीर कहते हैं—सम्यक् भावना से किया असम्यक् भी सम्यक् है। उनके नाम पर चलने वाली परम्पराएँ कहती हैं कि उनके काल-जर्जर विश्वास, सड़ी-गली धारणाएँ, अविवेकपूर्ण गुरुडम तथा तथ्यहीन कर्मकाण्ड ही सम्यक्त्व हैं जो शीशे की तरह नाजुक तथा पल में टूट कर बिखर जाने वाली चीजें हैं और एक बार बिखर जाने पर जन्म-जन्मान्तरों तक जिनका जुड़ना संभव नहीं है। सम्यक्त्व के नाम पर भय के मनोविज्ञान के सहारे जैसे-तैसे अनुयायियों को जोड़-तोड़ कर रखना ही इनका एकमात्र धर्म-कार्य है।

आश्चर्य होता है यह देख कर कि कितनी ऊँचाई से गिर कर कितने नीचे पहुँच गये हैं ये लोग, इसके दंभ और झूठ पर टिके ढाँचे, इनका खोखला अहम्।

सुना है मैंने कि एक बार हज़रत मुहम्मद किसी चरागाह से गुजर रहे थे । वे इस्लाम के पैगम्बर थे, निराकार, अनन्त परमात्मा के संदेश-वाहक । रास्ते में एक तरफ एक गड़रिया पेड़ के नीचे नाच रहा था और परमेश्वर को याद कर खुशी से झूमता हुआ जो मन में आये, कहे जा रहा था । वह कह रहा था—‘हे परमेश्वर तू एक बार मेरे पास आ तो जा । मैं तुझे मल-मल कर स्नान कराऊँगा, तेरे बालों से जुए निकालूँगा, उनमें कंधी करूँगा, तुझे भेड़ का ताज़ा दूध पिलाऊँगा, ऊन के नये कपड़े पहनाऊँगा’ । हज़रत ने यह सब सुना । निरे अज्ञान की बात थी । असीम और अन्तहीन जगत् के नियामक को वह यों संबोधित कर रहा था जैसे किसी सामान्य आदमी को वह कह रहा हो । उन्होंने उसे डाँटा—‘क्या बक रहा है ? जानता नहीं, यह कितना बड़ा पाप है ?’

वह बेचारा अकबक रह गया । क्षमा माँगी—‘ग़लती हो गयी । क्या ग़लती हुई, यह तो पता नहीं, लेकिन कोई ग़लती ज़रूर हुई है मेरे कहने में । ग़लती न होती तो आप-जैसे महात्मा मुझे क्यों डाँटते ।’ उसका उत्साह चला गया । मुस्त होंकर बैठ गया । अपनी ग़लती पर पछताने लगा, रोने लगा, और परमात्मा से क्षमा माँगने लगा ।

पैगम्बर घर पहुँचे । पहुँचते ही आयत (कुरान-का-कोई वाक्य) उतरी उनके आगे—‘तूने अच्छा नहीं किया । वह बेचारा, अपनी समझ के मुताबिक, अपने दिल का प्यार प्रकट कर रहा था । तूने उसे डाँट दिया । अब वह गुमसुम बैठा है । उसे अब पता नहीं कि क्या कहना चाहिये, क्या नहीं ? उसके प्यार को बढ़ाने की जगह तूने उसे रोक दिया । वह मुझे साकारता में बाँध रहा था, तो तुम्हें नापवार गुज़रा । तुम निराकारता में भी तो बाँध ही रहे हो मुझे । उसे पता नहीं कि मैं क्या हूँ; तो तुम्हें ही कौन-सा पता है ? किसे पता है कि मैं क्या हूँ सिवाय मेरे खुद के ? जो-जैसा माने उसके लिए क्या मैं वैसा नहीं हो सकता ? तो फिर मेरी असीम शक्ति कहाँ ? फिर मेरी अनन्तता क्या है ? जाओ, उससे क्षमा माँगो ।’

हज़रत जब उसके पास वापिस पहुँचे तो, देखा, वह खुद-ब-खुद ज्ञान प्राप्त कर चुका था । उसने जाते ही कहा—‘समझ गया, वह क्या है । अब कुछ कहने की ज़रूरत नहीं । मैं देख चुका हूँ उसे, जिसकी बात आप कर रहे हैं । आपकी बात भी ठीक ही है । मेरी और आपकी बात में कोई खास अन्तर नहीं है । हर बात ठीक ही है । वह खुद तो कोई बात है नहीं । वह तो जो है, वह है ।’

महावीर कहते हैं : ‘सम्यक् भावना से कोई असम्यक् कार्य भी करता है तो वह सम्यक् ही है’ । और जैनों में इस विवाद का हज़ारों वर्ष बाद भी अन्त नहीं हुआ है कि कपड़ा पहिनना ठीक है, या छोड़ देना; मूर्ति-पूजन ठीक है, या उसके आगे सिर भी न झुकाना; मुँह बन्द रखना ठीक है, या मुँह खुला रखना; मुक्ति

के लिए पुरुष होना जरूरी है, या स्त्री होने से भी काम चल सकता है। परिग्रह क्या है; क्या नहीं है? अहिंसा क्या है; क्या नहीं है? सभी सत्य के ठेकेदार होने का दावा करते हैं, अपने अलावा शेष सब को झूठे और मक्कार घोषित करते हैं।

गांधीजी के आश्रम में एक बछड़ा असाध्य रोग से पीड़ित हो कर तड़पने लगा। उसके स्वस्थ होने का कोई उपाय न था। मौत सामने खड़ी थी। वेदना असह्य थी। आदमी होता तो इतनी असह्य वेदना से हार मान कर आत्महत्या कर लेता। बछड़ा बेचारा क्या करे? वेदना में रँभाता रहा दिन-रात। गांधीजी के हृदय को उसकी वेदना प्रतिपल विदीर्ण कर रही थी। उसकी वेदना उन्हें मोह रही थी और वे सहन नहीं कर पा रहे थे। एक दिन उन्होंने चिकित्सक से कहा—'इसे कोई ऐसी दवा दे दो कि बेचारा शान्ति से सदा के लिए सो जाए'। जैसे माँ थपकियाँ दे कर अपने रोते हुए बालक को सुलाती है, उसी तरह करुणा से उन्होंने उस बछड़े को सुला दिया।

यह घटना क्या हुई, गांधीजी पर जैसे कहर टूट पड़ा। लोगों ने पत्र लिखे, वक्तव्य दिये, सभाएँ कीं, दुनिया-भर में शोर-शराबा मचा कि गांधीजी ने हत्या की है। वह भी गौ-के-जाये बछड़े की, और अहिंसा के अवतार बने फिरते हैं। यह घटना सब से अधिक नागवार जैनों पर गुजरी। उनकी अहिंसा में उस फकीर के पागलपन-भरे हिंसक कृत्य से आघात पहुँचा; लेकिन गांधीजी अन्त तक यही कहते रहे—'यह मेरी अनुकम्पा थी'। उसकी वेदना मैं सहन नहीं कर पाया, बचाना किसी के वश की बात नहीं थी। मरना निश्चित था। सुख से मरने की सुविधा-दान कर उन्होंने करुणा का ही परिचय दिया। उन्होंने अपने-से गलत नहीं पाया, यद्यपि एक स्वर से सारे देश के 'अहिंसकों' ने उन्हें 'हिंसक' घोषित कर दिया था, निर्दय कसाई का खिताब दे डाला था।

इसी प्रकार नौआखाली में उन्होंने अपने ब्रह्मचर्य की यथार्थता के परीक्षण के लिए आश्रम की कुछ युवती बहिनों, अपने भतीजे की पुत्री मनु गांधी के साथ भी प्रयोग किये, जिसके लिए उन्हें प्रचण्ड विरोध तथा अखूट लोकनिन्दा का सामना करना पड़ा। उनके स्टेनो निर्मलचन्द्र बोस, निकटतम सहयोगी किशोरीलाल मशरूवाला तथा नरहरि पाटख उन्हें छोड़ कर चले गये। ठक्कर बापा-जैसे मनीषी सन्त ने उन्हें निर्दोष मानते हुए भी इन प्रयोगों को बन्द करने के लिए कहा। आश्रम की बहिनें भी बदनामी तथा मानसिक कुण्ठा की शिकार हुईं; लेकिन बापू हिमालय-की-तरह अडिग बने रहे। प्रयोग उनके जीवन के अन्तिम दिनों तक चले। उन के समर्थन तथा विरोध में बहुत कुछ उनकी मृत्यु के बाद अब तक भी लिखा जाता रहा।

और महावीर कहते हैं : सम्यक् भावना से किया कार्य असम्यक् होने पर भी सम्यक् ही है। उनके अनुयायियों की दृष्टि में गांधी, 'हिंसक' थे, निर्दयी, 'कसाई' थे, ब्रह्मचर्य से च्युत हो गये थे। संयम को तिलांजलि दे चुके थे। यह बात आज

की नहीं है । महावीर के युग में भी ऐसी स्थूल धारणाएँ अधिकांश लोगों के मन में रही होंगी । बुद्ध के भिक्षु तक भी इनसे मुक्त नहीं थे । स्वयं बुद्ध पर संशय करते, यहाँ तक कि आरोप लगाने से भी वे बाज नहीं आये । सम्यक्त्व को केवल भीतर की आँखों से ही देखा जा सकता है । भीतर की आँखें सबकी खुली हाँती हैं क्या ? किस युग में रही हैं ?

बुद्ध सम्यक् संबोधि प्राप्त कर कपिलवस्तु लौटे । राजद्वार पर उनके पिता शुद्धोदन ने प्रजा-सहित उनका स्वागत किया । उनकी धर्मपत्नी यशोधरा वहाँ नहीं आयीं । महल से बाहर ही नहीं निकलीं । वर्षों-पूर्व एक रात उसे नवाजत राहुल को वक्ष से लगाये सोती छोड़ कर चुपचाप वे, उसके प्रियतम, राजकुमार सिद्धार्थ राजमहल तथा नगर से निकल कर कहीं चले गये थे । तबसे उसे महल से बाहर कभी देखा ही नहीं गया । आज जब कि उसका वही प्रियतम सम्यक् संबोधि के प्रकाश से मण्डित हो कर, भगवान् बुद्ध के रूप में आ रहा था, तो लोगों को आशा थी कि राजद्वार पर वह आकुल अन्तर से प्रतीक्षा करती मिलेगी; लेकिन मानिनी यशोधरा नहीं आयी । उसे मतलब नहीं था किसी बुद्ध के आने से । उसका प्रियतम उसे धोखा दे कर गया था । अब उसे ही वापिस आना होगा । उसके पास क्षमा माँगने के लिए, मानिनी प्रियतमा के खण्डित हृदय को अपने स्नेह के बज्रलेप से जोड़ने के लिए । उसे आना हो तो आये, न आना हो, न आये । वह उसकी याद में आज तक जीती रही है, आगे भी जीती रहेगी ।

बुद्ध आये । यशोधरा के लिए पूछा । पिता की आँखों से गंगा उमड़ पड़ी । यह न पूछो कि वह क्यों नहीं आयी ? मुझे पता नहीं, किसी को भी पता नहीं । उसे पता है, या उसे भी नहीं है अब । जब से उसने सुना है कि तुमने अपने केश मूँडा लिए हैं, उसने एक रात अपने हाथों ही अपने लम्बे केश काट कर फैंक दिये । जब से उसने सुना कि तुम जमीन पर सोते हो, उसने शैया का परित्याग कर दिया; अपनी भुजा को ही तकिया बना लिया । जब से उसने सुना कि तुम एक समय भोजन करते हो, उसने एक समय भोजन करना शुरू कर दिया । हठी है, महा-मानिनी है वह, समझाये नहीं समझती, मनाये नहीं मानती । कोई जवाब भी नहीं देती । तुम्हें कुछ पूछना है तो उसी से जः कर पूछो । मुझे कुछ पता नहीं । मेरी समझ में तो न तुम आते हो, न वह ।

बुद्ध राजमहल पहुँचे । राज परिवार, भिक्षु-समुदाय, और अगणित प्रजाजनों के साथ वे उसके आवास पर पहुँचे । द्वार पर आवाज दी । कृशकाय, अश्रुपूरित, आँखों से युगों की वेदना प्रवाहित करती यशोधरा आ कर बुद्ध के गले लिपट गयी । रुठे शिशु की तरह । बाँहों में बाँध लिया वर्षों से बिछुड़े अपने जीवन-धन को ।

भिक्षुओं की आँखों में सन्देह तैर आया । अखण्ड ब्रह्मचारी भगवान् एक युवती नारी के आलिंगन में चपचाप बँधे खड़े रहे, यह उनकी समझ में आनेवाली

बात नहीं थी। उनके द्वारा समझे गये ब्रह्मचर्य में नारी की ओर आँखें उठा कर देखना, उसके साथ अकेले बातें करना; उसका चित्र, या दर्पण में उसकी परछाईं देखना, अविचार था, वह भी सामान्य भिक्षु तक के लिए। भगवान् के लिए तो मर्यादा की सीमाएँ ही नहीं हो सकती थीं। और ये बुद्ध एक युवती नारी के बाहु-पाश में प्रेमी युवक की तरह बँधे थे !

बुद्ध ने उनकी नज़रें पढ़ लीं; बोले—‘तुम्हें क्या पता कि इस आलिंगन में क्या था ? तुम्हारे बाद हज़ारों वर्षों तक इसे कौन समझायेगा और किसी के समझने की ज़रूरत भी क्या है ? सत्य को समझाया नहीं जा सकता। उसे देखने के लिए भीतर की आँखें चाहिये।

बुद्ध का चचेरा भाई देवदत्त बचपन ही से उनसे ईर्ष्या करता था। बुद्ध के आगे वह सदैव हारा। ज्यों-ज्यों हारता गया बुद्ध को हराने की उसकी कामना तीव्र होती गयी। बचपन में उसने एक हंस को तीर से घायल कर दिया था। बुद्ध ने उसे बचा लिया। उसने अपना शिकार माँगा। बुद्ध ने उसे नहीं दिया। उन्होंने उसे बचाया था। राज्यसभा में बुद्ध के पक्ष में निर्णय हुआ। उसने हंस को मारा था। बुद्ध ने उसे बचाया था। बचाने वाले का अधिकार है उस पर, मारने वाले से अधिक। देवदत्त कुढ़ कर रह गया। यशोधरा का स्वयंवर हुआ। उसमें भी बुद्ध विजयी रहे। बल-पराक्रम में भी वह उनसे हारा। तब वे बुद्ध तो हुए ही नहीं थे। राजकुमार सिद्धार्थ ने आगे चल कर बुद्ध की प्रव्रज्या ग्रहण की, श्रामण्य धारण किया, कठोर तपश्चर्याएँ कीं। अन्त में सम्यक् संबोधि प्राप्त कर वे लोक के आराध्य बने। धर्म-संघ का निर्माण हुआ। लाखों आत्माओं ने बौद्ध धर्म और संघ की शरण ली।

देवदत्त की ईर्ष्या ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। वह भी घर-बार छोड़ कर संन्यासी हो गया। स्वयं बुद्ध होने का दावा तक उसने किया। उसके अनेक अनुयायी भी बन गये। वह बुद्ध के पीछे लगा रहा। उन्हें संयम में दुर्बल प्रमाणित करने के लिए उसने कठोर नियम बनाये, उनका स्वयं पालन भी किया। उग्र तपस्याएँ भी कीं। बौद्ध ग्रन्थों में यह बात उदारतापूर्वक स्वीकार की गयी है कि वह कठोर संयमी और घोर तपस्वी था; लेकिन यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि यह सब उसने बुद्ध को असंयमी, दुर्बल, तथा विलासी, आराम-तलब सिद्ध करने के लिए किया। उस संयम और तप के पीछे आत्मा की निर्मलता, कषायों से मुक्ति, आस्रव के निरोध की प्रेरणा नहीं थी। वह तप और संयम भी देवदत्त को अनन्त संसारी बना गया। तप और संयम तो सम्यक् ही है, सदा सम्यक् ही थे, भविष्य में भी सम्यक् ही होंगे। सत्य तो त्रिकाल में सत्य ही रहता है; लेकिन उनके पीछे की भावना असम्यक् थी। बैर और ईर्ष्या; अतः उस तप और संयम से भी देवदत्त-जैसे व्यक्तियों ने बंधन का ही विस्तार किया।

गौशालक भी कोई कम तपस्वी नहीं था । महावीर की तरह दिगम्बर रहता था । कठोर संयम का पालन करता था । जैन और बौद्ध दोनों परम्पराओं के ग्रंथों ने एक मत से माना है कि वह 'उग्र तपस्वी', 'घोर तपस्वी', 'अति तपस्वी' था । तप से ही उसने लब्धियाँ प्राप्त की थीं; लेकिन उस तप से उसने अपने अन्तर-की-हीनता का ही पोषण किया था । बचपन में उसने एक अनाथ सारण संतान के रूप में जो सामाजिक घृणा अपने प्रति देखी होगी, उसीने उसे साधना द्वारा शक्ति प्राप्त कर स्वयं को अर्हतू घोषित करने के लिए उत्प्रेरित किया होगा । यही कारण था कि वह अपने भीतर के मानवीय गुणों को विकसित नहीं कर सका । इतने संघर्ष और इस साधना के बाद भी, महावीर के शब्दों में वह असम्यक् ही बना रहा । उसका दर्शन क्या था ? इसका सीधा स्रोत तो कोई है नहीं, जैन एवं बौद्ध ग्रंथों के उल्लेखों से ही कुछ धारणा बनती है । वह धारणा चूँकि विरोध पक्ष की थी, अतः उसके अपने पक्ष का सही प्रतिनिधित्व वह नहीं करती; लेकिन इस बात में कोई संदेह नहीं कि वह कठोर तपस्वी था, मनीषी चिन्तक भी था । वह विभिन्न विषयों और भाषाओं का ज्ञाता भी था । उसे परामानसिक सिद्धियाँ भी प्राप्त थीं । यह विरोधी परम्पराओं के ग्रंथों ने भी बताया है; लेकिन चूँकि भीतर से वह इन सबके द्वारा शक्ति की खोज कर रहा था, शान्ति की नहीं; अपने खिण्डित अहम् का पोषण कर रहा था, आत्मा की आराधना नहीं; अतः ये सब भी उसके लिए अनुकूल प्रमाणित नहीं हुए ।

और महावीर के कथ्य का अंतिमांश है : 'असम्यक् भावना से किया गया सम्यक् कार्य भी असम्यक् है' । सम्यक्त्व और असम्यक्त्व का संबंध हमारी अंतर भावना से है, किसी सम्प्रदाय की मान्यता, अथवा उसमें विश्वास, या अविश्वास से नहीं है । □ □

एशिया का सब-में-बड़ा कसाईखाना

देवनार (बम्बई, महाराष्ट्र) में एशिया का सब-में-बड़ा कसाईखाना है । इसमें एक लाख से अधिक पशु प्रतिवर्ष काटे जाते हैं और ८० हज़ार टन मांस का सालाना निर्यात यहाँ से होता है । सब प्रकार के और सब उम्र के पशु, जिनमें गाय, बैल, बछड़ा, बछड़ी, भेड़, बकरी सब शामिल हैं—मनुष्य की जठराग्नि में हवन के लिए कत्ल कर दिये जाते हैं । अगर भैंस, बैल आदि १४ वर्ष की उम्र से कम के होते हैं, तो उन्हें अनुपयोगी साबित कर डॉक्टरों प्रमाण-पत्र लेने के लिए उनकी टाँगें तोड़ दी जाती हैं, उन्हें जख्मी कर दिया जाता है ।

—ग्रामराज, जयपुर, १४-१२-५३

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/७७

जो वक्त की ज़िल्द में बँध न सके

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्ट-विरोधकम् ।

तत्त्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथ-घट्टनम् ॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ६

आईन^१ है वही जिसमें लिक्खी हो
बात सभी माबूद^२ कही ।

तनकीदे^३ कसौटी पर उतरे
सोने-जैसी ही बात खरी ।

आलम^४ को न जो गुमराह करे
पुरजोर सुकून^५ जो दिलवाये ।

जो वक्त की ज़िल्द^६ में धबँ न सके
और उक्बा^७ में भी काम आये ।

स्वभावतो शुचौ काये रत्नत्रय-पवित्रिते ।

निर्जुगुप्सा गुण-प्रीतिर्मत निर्विचिकित्सता ॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, १३

हर एक इन्सान को मालूम है
मिट्टी का जिस्म^८ यह फानी^९ है ।

बनते, मिटते पुतलों की तरह
इसकी भी अजब कहानी है ।

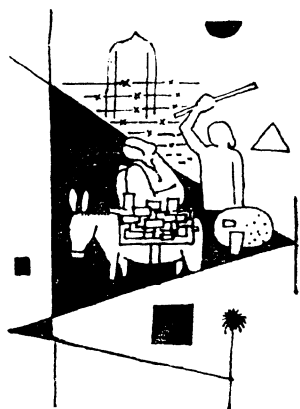
वाइल्म^{१०} अमल^{११} बीनाई^{१२} से
इसकी भी कीमत होती है ।

सीपी की तरह इसमें रक्खा
जब 'रत्नत्रय-का-मोती' है ।

मूल : आचार्य समन्तभद्र / उर्दू-अनुवाद : मिश्रीलाल जैन

१. आगम, सिद्धान्त २. पूज्य ३. जिस्म, शरीर ४. दुनिया, संसार ५. धीरज, विश्वास, संतोष
६. बन्धन ७. मृत्यूपरान्त, परलोक ८. शरीर ९. क्षणभंगुर १०. सम्यग्ज्ञान ११. सम्यक्चारित्र
१२. सम्यग्दर्शन ।

श्रावकाचार पढ़नेवाले हम



पहले उत्तम आचार-विचार वाले व्यक्ति 'श्रावक' कहलाते थे;
अब तो हर आदमी श्रावक कहलाने/कहलवाने पर आमदा है।

□ सुरेश सरल

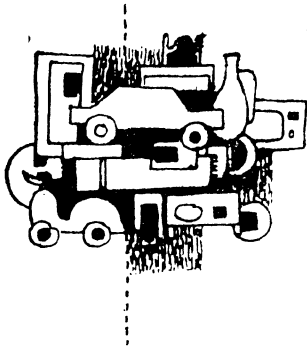
एक वाक्य सुना था : वे श्रावक धन्य हैं जो आचार का पालन करते हैं; किन्तु वर्तमान में वे हैं कहाँ ? जो दीख रहे हैं आसपास, वे या तो 'नागरिक' हैं, या 'ग्रामीण' हैं। पहले इन्हीं दो के मध्य कुछ 'श्रावक' हुआ करते थे; और श्रावकों के मध्य कुछ 'श्रावकरत्न' भी; परन्तु अब वे ढूँढ़े से नहीं मिलते। जो नाम सुनने में आते हैं वे 'श्रावक-रत्न' या 'समाजरत्न' अपनी चमक से स्वतः ही तुष्ट नहीं हैं, पैसठ करोड़ तक कैसे पहुँचायेंगे वह उजास ? हमारे देश का आदमी श्रावक था, अब केवल नागरिक या ग्रामीण बन कर रह गया है। कहीं-कहीं तो ग्राम में रहते हुए उसने इस क्रूर तरक्की (?) की है कि वह शहरी दीखने लगा है। एक बात और; लगता है जो पहले आर्य कहलाते थे, वे ही बाद में चर्या का विकास कर श्रावक बन गये; किन्तु कालान्तर में न आर्य रह गये, न श्रावक; बच रहे उनके मुँहोंटे जिन्हें पहिन कर हम, या हम-जैसे लोग सब कुछ बन लेते हैं, कभी आर्य, कभी श्रावक, और कभी श्रावक-रत्न। पूर्व में उत्तम आचार-विचार वाले व्यक्ति 'श्रावक' कहलाते थे; अब तो हर आदमी श्रावक कहलाने पर आमदा है। उसे आचार से मतलब है न विचार से, फिर भी वह अपने-आपको श्रावक कहलवाने पर तुला हुआ है। गलत-सलत, दोषपूर्ण दिनचर्या के बाद भी जब कोई मानुष श्रावक कहलाये तो समक्षिये आप कलियुग का आनन्द ले रहे हैं।

'श्रावक' नहीं, हम 'विचित्र श्रावक' हैं—नदी में स्नान कर पुन्य कमा लेते हैं; पूजन-उपासना करते हुए धन-लाभ, पुत्र-लाभ और रोगनिवृत्ति की कामना कर

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/७९

लेते हैं भगवान् से। भगवान् नहीं सुनते तो हम देव बदल देते हैं; फिर उनके प्रिय एजेंटों पाखण्डी साधुओं का आदर सत्कार और जय-जयकार करते हैं। अपने ज्ञान, प्रतिष्ठा, कुल, जाति, बल, धन, शरीरादि पर घमण्ड करने वाले हम; अन्य साधकों को अपमानित करने से भी नहीं चूकते, तब लगा हम 'विचित्र' हो गये हैं।

अपनी आँखों से राख में लिपटे अंगार के दर्शन हम आज तक नहीं कर सके, कैसे हैं वो जिनेन्द्र के उपासक जो चाण्डाल में भी सम्यक्त्व के दर्शन कर लेते थे। हमें तो सम्यक्दृष्टि भी भंगी दीखता है। यह है हमारी आचार-विचार-गत प्रगति।



घर-से-दुकान-तक का मार्ग कार से पार करने वाले हम - मोक्षमार्ग पार करने की बात सुनते हैं तो उस ब्राह्मण की तलाश करने लगते हैं जहाँ सम्यक् दर्शन मिलता हो। काश, आधुनिक फैक्टरियों में वह बनने लगा होता! हमारा श्वेताश्वेत धन उसे खरीदने अवश्य चल पड़ता। समय-रहते हम उसका नम्बर तो लगा ही देते।

धनिक हैं तो हमें स्वर्ग में रथ पर घूमने के बजाय इसी लोक में कार पर चलना अधिक पसन्द है। यौवन-सम्पन्न हैं तो स्वर्ग की अप्सराओं की सभा में आनन्द लेने के बदले यहीं कोई 'ए' सर्टिफिकेट-फिल्म देखने का चाव अधिक रखते हैं। कर्णधार हैं तो स्वर्ग में देवेन्द्र घरणेन्द्र और चक्रवर्ती से चक्कर लगवाने के बदले यहाँ ही सीमेण्ट, लोहा, वाहन, यंत्र, दवा, शक्कर, कपड़ा बनाने वाले कारखानों के मालिकों से आदर पाना उपयुक्त मानते हैं। एक मायने में मोक्ष-मार्ग प्राप्त कर अनन्त काल तक अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख का अनुभव लेने के बजाय, एयरकंडीशंड कोठी प्राप्त कर चन्द दिनों तक क्षणभंगुर ज्ञान और क्षणभंगुर सुख लेने की आदत हो गयी है। अपने-आपको जन्मजात श्रावक जो मानते हैं।

धनवानों की सेवा कर धनार्जन की भावना हम में गहरे तक बैठ गयी है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, और परिग्रह जैसे पाँच युगीन गुण धारण कर हम अन्धों को सम्यक्चारित्र का प्रमाण-पत्र लिख देने में निपुण हो गये हैं।

हमारी अर्हता कि जिस पाप को स्वतः नहीं कर पाते, उस हेतु दूसरे को उकसाते हैं, या जो उसे करने का विचार कर रहा होता है उसका समर्थन करते हैं।

आदमी-तो-आदमी, पशुओं के लिए भी हम विशिष्ट व्यवहार एवं आचरणों को दर्शाने लगे हैं, जिन जानवरों के कान-नाक छेदते थे अब तक; उनकी नस्ल भी छेदने लगे हैं, उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक चलने से रोकते हैं, चलाते हैं तो अपनी महानिच्छानुसार। उनका वध तो नहीं करते, पर हर शहर में नये-नये स्लॉटर-

हाउसों का खोला जाना प्रगति मानते हैं, डंडा और कोड़ा मारने का अवसर ही नहीं आ पाता। जहाँ तक अधिक भार लादने और कम भोजन देने की बात है, वह हम जानवरों के साथ व्यवहारित करते-करते बोर हो गये हैं, सो आदमियों के साथ करने लगे हैं; नौकर-चाकर या आश्रित के रूप में वे सहज उपलब्ध हैं।

हम सत्याणुव्रत में निपुण हैं। झूठ बोल कर, या बुलवा कर चाहे जिस कचहरी में चाहे जो कैस जीत लेते हैं, सत्य बोल कर अपने या आश्रितों के प्राण संकट में नहीं जाने देते। पर-स्त्री के प्रति भी हम निहायत ईमानदार हो गये हैं; जिसे खुद नहीं भोग पाते उसके लिए दूसरे मित्रों को मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

एक से क्या होता है, हम दो-दो विवाह करा लेने में सफल हैं; दो-एक विवाह गुप्त रूप से भी कर लेते हैं। वासना के दौरान आदमी से नीचे, दरिन्दे बन जाने तक में नहीं हिचकते, जिस मार्ग / कुलिया/ कॉलोनी में कोई बद (नाम) औरत रहती हो, उस रास्ते से आने-जाने की कुछ अधिक ही इच्छा रहती है मन में। हमें इस पर भी कोई उत्तम श्रावक न कहेगा ?



क्षेत्र, मकान, हिरण्य, धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्र, बर्तन आदि दस परिग्रहों को प्राप्त कर ग्यारहवें के लिए हम प्रयासरत हैं। मद्य, मांस, मधु, हिंसा, असत्य, चौर्य, कुशील और परिग्रह का त्याग आज तक न कर सके; सिर्फ घोषणा करते रहे —उन्हें त्यागने की और अपने-आपको आठ मूलगुणों से सुसज्जित मानते रहे।

हिंसा के कारणभूत शस्त्रास्त्र फरसा, तलवार, छुरी, विष आदि वस्तुएँ दूसरों को देने के बाद भी मन नहीं भरता था तो अब हम टैंक, मिसाइल्स, बम आदि का दान-प्रतिदान करने लगे हैं। हिंसादान अनर्थदंड की याद हमें ही तो है।

अन्यों की धनहानि, स्त्रीहानि आदि की कामना से सुख होने लगा है। दुस्साहस, द्वेष, राग, मद और विषय-भोग से चित्त को मलिन करने वाली पुस्तकों को सुनते-सुनते स्वतः पढ़ने लगे हैं। अब तो लिखने का भी जी करने लगा है।

निष्प्रयोजन भूमि खोदने का कार्य हमें अच्छा लगता है सो भूमि तो भूमि हम पड़ोसी का घर तक खोदने को तैयार हो जाते हैं; घर में नलकूप पर मोटर

लगी हो या कॉरपोरेशन का नल, हम निष्प्रयोजन जल बहाते रहते हैं। निष्प्रयोजन ही अग्नि जलाते हैं—कभी बीड़ी-सिगरेट के लिए, कभी किसी के खेत-खलिहान चौपट करने के लिए। कभी-कभार हड़ताल और 'बन्द' के नाम पर बसों, रेलों, भवन, कारखाने भी जला डालते हैं। निष्प्रयोजन ही हवा करते हैं कभी पंखों से, कभी कूलर से। वनस्पतियाँ तो तोड़ते ही रहते हैं, तोड़ कर उन्हें जलाना भी जानते हैं। यहाँ-वहाँ घूमने में सिद्धहस्त हम, दूसरों को भी घुमाते रहते हैं। यह प्रमादचर्या नामक अनर्थदंड का लक्षण हम जानते हैं, परन्तु हमारे इन्हीं गुणों से प्रभावित हो कर जमाना हमें 'श्रावकरत्न' कह रहा है।

हँसी करते हुए अशिष्ट वचन कहना हमारी संस्कृति बन गयी है; शरीर की कुचेष्टा दर्शाते हुए अश्लील वचन कहना हमारी आदत हो गयी है, वकवास करने को हम बुद्धिमानी कहने लगे हैं और केवल भोगोपभोग की सामग्री जोड़ने में व्यस्त रहते हैं, सारहीन कार्य करने में अधिक मन लगता है। ये पाँचों अनर्थदंड व्रत के अतिचार हैं, ऐसा इतना जान कर भी हम उनमें मस्त रहते हैं।

भोजन, सवारी, शैया का त्याग घड़ी-भर के लिए भी नहीं कर पाते; पान, वस्त्र, अलंकार, संगीत-मनोरंजन, और कामभोग के बिना एक शाम भी नहीं रहते। विषय-रूपी विष की उपेक्षा नहीं करते, भोगे हुए विषयों का बार-बार स्मरण करते हैं; अतिललित भोग भोगने के बाद भी उन्हें पुनःपुनः भोगने की इच्छा रखते हैं।

हमने मुनियों की वैयावृत्ति तो की नहीं, उल्टे वैयावृत्य के अतिचार उत पर ढाते रहे, कभी उनका अनादर कर, कभी नवधाभक्ति भूल कर, कभी उन पर ईर्ष्यालु हो कर और अपने नाम के आगे विशेषण जोड़-जुड़वा कर बने रहे 'समाज-रत्न'।

हम ज़िन्दगी-भर सुख से रहने के लिए प्रयासरत रहे, बूढ़ापे में असाध्य रोग से ग्रस्त हो जाने के बाद भी हम दवा और चिकित्सकों के फेर में रहे। हमने स्वप्रेरणा से कषाय कृश कर शरीर त्यागने का कार्य, सल्लेखना व्रत, श्रावकों की जन्म-कुण्डली से उठा कर मुनियों के मत्थे मढ़ दिया और उत्कृष्ट श्रावक बन कर जीने को लालायित रहे।

हाँ, एक जगह हम आज भी ईमानदार हैं, पहले-से-अधिक ईमानदार; वह यह कि मोक्ष की कल्पना तक छोड़ चुके हैं: मोक्ष की आवश्यकता नहीं रही, डिपार्टमेंटल प्रमोशनो से ही वह आनन्द जीते-जी मिल गया है।

मुनो, धर्म; रोज़-रोज़ करने की वस्तु नहीं रहा, उसके लिए वर्ष में कुछ दिन मुनिश्चित कर दिये गये हैं, इन्हें पर्युषण या अष्टाह्निका-पर्वों के नाम से जाना जाता है। इन्हीं दिनों हमें शास्त्र पढ़ने की सूझती है, तब हम रोज़-रोज़ एक श्लोक या एक पन्ना अवश्य पढ़ लेते हैं; और कामना करते हैं—'जिस प्रकार कोई उत्तम नायिका अपने नायक को सुख देती है उसी प्रकार सम्यक्दर्शन रूपी लक्ष्मी मुझे सुख देवे'।

इतना सब पढ़ने के बाद प्रश्न उठना जायज है—'हम कैसे श्रावक हैं?' □

बातचीत के अलावा हमने इस अंक में दो विशिष्ट परिचर्चाओं का संयोजन भी किया है। जहाँ तक बातचीत/इंटरव्यू का सम्बन्ध है उसमें एक व्यक्ति होता है/ हो सकता है; किन्तु परिचर्चा में कम-से-कम तीन-चार लोग/विषय के जानकार लोग होने चाहिये।

हमारी इन परिचर्चाओं का लक्ष्य वही है जो बातचीतों का है; किन्तु इनमें रोशनी कुछ दूर तक डालने का प्रयत्न हुआ है। 'श्रावक कैसा था, कैसा है, कैसा हो' आदि पर वर्तमान मूल्यमानों/संदर्भों में विचार-विमर्श का प्रयत्न इन परिचर्चाओं में हुआ है। पहली परिचर्चा में 'लिखित शब्द' और दूसरी में 'कथित शब्द' माध्यम बने हैं। एक में सुविचारित कथ्य है, दूसरी में तत्काल सोचा हुआ; तथापि दोनों के लक्ष्यबिन्दु एक हैं।

परिचर्चा-१ में आठ महत्त्व के लोगों ने हिस्सा लिया है; जिनमें से दो पत्रकार, दो प्राचार्य, एक अध्यापक, एक साध्वी, एक प्रशासक, और एक लेखक/विचारक है। श्री अक्षयकुमार जैन (दिल्ली) देश के एक वरिष्ठ/वयोवृद्ध पत्रकार हैं, जिन्होंने बदलते मूल्यमानों की समीक्षा की है तथा विवेक को जागृत रखने/प्रखर करने का प्रस्ताव किया है। उनके वक्तव्य की पीठ पर उनका अपना सुदीर्घानुभव और उनके अपने पेशे की दूरदृष्टि विद्यमान है।

डॉ. जय कुमार जलज रतलाम (मध्यप्रदेश) के राजकीय महाविद्यालय के प्राचार्य, कुशल प्रशासक, और भाषाशास्त्री हैं। सरल हृदय हैं। स्थितियों को

नज़दीक से/फासले से देखने में पारंगत हैं, अतः उनके ऑब्ज़र्वेशंस ध्यान देने योग्य हैं।

नेमीचन्दजी जैन (दिल्ली) एक अनुभवी प्रशासक/कलाप्रेमी श्रावक हैं। उनकी अपनी विशिष्टताएँ हैं, अतः उन्होंने गागर में जिस तरह सागर समेटा है, वह दृष्टव्य है।

आचार्य नरेन्द्र प्रकाश जैन फिरोज़ाबाद (उत्तरप्रदेश)-स्थित इंटर कॉलेज के प्रधानाचार्य हैं। वे जैन तत्त्वदर्शन के मर्मज्ञ विद्वान् हैं और जैन समाज के रंग-ढंग को निकट से जानते हैं। उन्होंने जो लिख भेजा है, वह अनुभूत है; अतः सहज ही असरकारक है।

आर्यिका ज्ञानमती माताजी का समाज को महत्त्व का योगदान है। उनके विचार गौर करने जैसे हैं। उन्होंने जैन नारी के सांस्कृतिक/धार्मिक/सामाजिक पक्ष पर अच्छा प्रकाश डाला है।

डॉ. प्रेमसुमन ने 'भीतर-के-आदमी' को झकझोरने/प्रकट करने की बात कही है। यह भीतर का आदमी क्या है? कौन है? कहाँ छुपा बैठा है? है भी, या नहीं? कहीं मर तो नहीं गया है? ऐसे सारे प्रश्नों की जरूरत को यह परिचर्चाश जगाता है।

भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली के सलाहकार/पत्र-संपादक/वरिष्ठ चिन्तक/लेखक श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन ने श्रावक की स्थिति/विभिन्न स्थित्यन्तरों पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से विचार किया है। यह पहली बार, और परिपूर्ण प्रखरता के साथ संपन्न हुआ है। उन्होंने इतिहास/नीतिशास्त्र/समाजशास्त्र/धर्मशास्त्र को एक साथ/एक मंच पर रख कर जैन समाज को एक स्वस्थ/विकासोन्मुख दृष्टि देने की महत्त्वपूर्ण पहल की है। उनके इस संक्षिप्त चर्चाश में-से एक रचनात्मक/कल्याणकारी नज़रिये को तो लिया ही जाना चाहिये साथ ही समूचे जैनाचार को समाजशास्त्रीय दृष्टि से पुनरीक्षित करने की संभावनाओं की जाँच-पड़ताल भी करनी चाहिये। काम गहतर है; किन्तु श्रीजैन-जैसे व्यक्ति के मार्गदर्शन में इसे सहज ही संपन्न किया जा सकता है। श्री यशपाल जैन पत्र-संपादक/विचारक/लेखक हैं। वे अनुभवी हैं। उनके विचार स्पष्ट हैं। क्या हम इन सारे विचारों के शुभाकलन द्वारा किसी मंगलकारी कल की शुरुआत कर सकेंगे?

परिचर्चा-२ में हिस्सा लिया है 'नईदुनिया' (दैनिक, इन्दौर) के संपादक श्री अभय छजलानी, भारत रेडिएटर्स (बम्बई) की मैनेजिंग डायरेक्टर श्रीमती शरयू दपतरी, तथा प्रसिद्ध समाजसेवी श्री बाबूलाल पाटोदी (इन्दौर) ने।

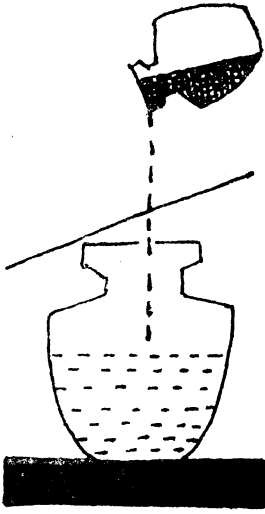
प्रस्तुत परिचर्चा में वैविध्य और स्वातन्त्र्य है; सब कुछ पूरी उन्मुक्तता और शुभ-संकल्पपूर्वक हुआ है। चाहा गया है कि समाज के आचरण-पक्ष पर, विकसित संदर्भों में व्यापक/सापेक्ष विचार-विमर्श हो और अहिंसक जीवन-शैली को ले कर कुछ सम-सामयिक प्रयोग किये जाएँ। जो निष्कर्ष सामने हुए हैं वे हैं-बेहतर मानव ही बेहतर श्रावक है; आधुनिक संदर्भों का ध्यान रख कर जैनधर्म-को-भौलिकताओं-को-बिना-छोड़े शाकाहार का युक्तियुक्त प्रचार-प्रसार किया जाए; वैज्ञानिक धरातल पर जैन सिद्धान्तों को जन-जीवन तक पहुँचाया जाए; श्रावकीय जीवन अहिंसक जीवन-शैली को सफल प्रयोगशाला बने।

□

क्या हमें आशा करनी चाहिये कि अहिंसा/सत्य/अस्तेय/अपरिग्रह/ब्रह्मचर्य-जैसे उदात्त जीवन-मूल्यों को नींव पर खड़ा

श्रावकीय/श्रामण्य जैन जीवन (चतुःसंघ) भविष्य में कोई स्पष्ट नैतिक/सामाजिक/सांस्कृतिक/धार्मिक/आचारणिक भूमिका निबाह सकेगा?

-संपादक।



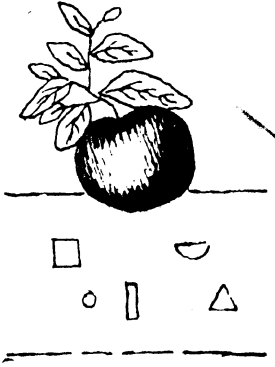
१. रूढ़ि नहीं, विवेक चाहिये

देश और काल के साथ बहुत-सी मान्यताएँ बदलती हैं और मूल्यमान भी बदलते हैं। एक समय था जब शत्रु को पीठ दिखाना मरण से भी अधिक अपमानजनक माना जाता था। शक्तावत और चूड़ावत सरदारों की कथा जगत्-प्रसिद्ध है; किन्तु दूसरे महायुद्ध के समय चतुर सैनिक वह माना गया जो येन-केन-प्रकारेण शत्रु को पीठ दिखा कर भी लौट कर बच आया। इसी प्रकार कानून और न्याय की अवहेलना भयंकर बात मानी जाती थी। आज व्यापार और उद्योग के नियमन के कुछ अप्रतिहारक कानूनों से किस प्रकार बचा जाए, उसके लिए ऊँची फीस और ऊँचा दामाग चाहिये और उसकी प्रशंसा भी होती है। अन्य समाजों की भाँति जैन समाज में भी मूल्यमान बदले हैं। आज के सफल श्रावक यदि प्राचीन परम्पराओं की कसौटी पर कसे जाएँ तो संभवतः पूरे नहीं उतरेंगे; किन्तु उन्हें यह कह कर 'श्रेष्ठ श्रावक' होने से अस्वीकारा नहीं जा सकता। निश्चय ही परिस्थितियाँ व्यक्ति को और समाज को परिवर्तित होने के लिए मजबूर कर देती हैं।

मैं जब छोटा था तब अपने स्कूल में बड़ी कक्षा के विद्यार्थियों में ही झगड़ा होने पर अध्यापक मेरी बात को यह कह कर सत्य मानते थे कि यह जैनी बच्चा है। मैंने आज से ५०-६० वर्ष पहले यह देखा था कि बड़े-बड़े मुकुदमों में किसी जैन श्रावक की गवाही सबसे बड़ा प्रमाण मान ली जाती थी। यह कहा जाता था कि कोई जैन चोर-डाकू नहीं होता और न हत्यारा ही होता है। इसी प्रकार किसी जैन महिला को किसी ऐसे स्थान पर बैठा हुआ नहीं देखा जा सकता था जो प्रवाद का कारण बन जाए। सुबह ही उठ कर देव-दर्शन और उसके बाद गुरुजनों की वन्दना, तब स्कूल और अपने काम पर जाना होता था। जीवन में भागम-भाग नहीं थी, पर आज ऐसा लगता है उसमें परिवर्तन आ गया है। मैं यह नहीं कहता कि सभी पुरानी परम्पराएँ अच्छी थीं और नयी बुरी हैं; किन्तु कुछ शाश्वत मूल्यमान ऐसे हैं जो पहले भी वन्दनीय थे और आज भी हैं। खाली यह कह कर कि परिस्थिति-वश श्रावक का आचार बदल गया है, पूर्ण सत्य नहीं होगा।

बचपन में हमने सुना था कि किसी भी श्रावक को 'छेदन-भेदन, भूख और प्यास' को पाप मानना है। यही कारण है कि जैन समाज में चिकित्सक तो बहुत बड़े-बड़े हुए; किन्तु शल्य-क्रिया में निष्णात न हो पाये। मैं जानता हूँ कि बहुत से जैन महाविद्यालयों में चिकित्सा-विभाग इसी कारण नहीं खोला गया कि उसमें हिंसा से से बचा नहीं जा सकता; किन्तु आज समाज, राष्ट्र, और मानवता को अच्छे शल्य-चिकित्सकों की आवश्यकता है। हृदय की शल्य-क्रिया करने वाले कई बड़े जैन डॉक्टर हैं और इसमें कोई बुराई तो है ही नहीं, समाज के लिए गौरव की बात है। प्राचीन मान्यता का यद्यपि पालन नहीं हुआ; किन्तु नयी परिस्थितियों में इसे बुराई नहीं माना जा सकता।

२.... तो वह श्रावक नहीं है



परिग्रह-परिमाण के कठोरतम उदाहरण मैंने देखे हैं। एक वृद्ध जैन पण्डित ५० रुपये मासिक से अधिक अर्जन नहीं करना चाहते थे। यद्यपि उनकी क्षमता और शक्ति कहीं अधिक की थी। ऐसे जैन वकील मैंने देखे जो मुकदमे के दौरान यह पता लग जाने पर कि उनके मुक्किल ने झूठ बोला है, मुकदमा छोड़ देते थे। मैंने ऐसे वैद्य भी देखे जो असाध्य रोगी से औषधियों का मूल्य भी लेना पाप मानते थे। आज इस प्रकार के आचरण वाले व्यक्ति ढूँढने से भी मिलना कठिन है।

मेरी निश्चित धारणा है कि संसार इतना निकट आ गया है कि हम अपने सहयोगी समाजों से तो अलग-थलग रह ही नहीं सकते, संसार की अन्य समाजों से भी कट कर रहना संभव नहीं रह गया; इसलिए अब रूढ़ि से अधिक विवेक की आवश्यकता है। शाश्वत मूल्यमानों को छोड़ने से समाज अवनत होता चला जाएगा; किन्तु नयी पड़ती जा रही आवश्यक परम्पराओं से भी हम विमूख नहीं रह सकेंगे। एक सन्तुलन का भाव बनाना होगा, जिसका सबसे बड़ा निर्णायक होगा विवेक।

—अक्षयकुमार जैन
सी-४७, गूलमोहर पार्क
नई दिल्ली ११००४६

‘छान कर पानी पीना, प्रतिदिन देव-दर्शन और सूर्यास्त-के-पूर्व भोजन’ श्रावक के इन तीन लक्षणों का जगह-जगह लिखा देखा है। श्रावकत्व का लक्षणकार इससे ज्यादा मोटे ढँग से शायद अपनी बात कह भी नहीं सकता था। बार-बार दुहराने से ये लक्षण श्रावकत्व के पर्याय बन गये हैं। इन्हें आसानी से अपनाया जा सकता है; बस, मन में यह बात जम जानी चाहिये, कि यही श्रावकत्व है और इसी से उद्धार हो जाएगा।

जिसने ये लक्षण दिये उसकी नीयत खराब नहीं थी; लेकिन इनमें ही सिमिट जाने वालों ने इन्हें स्याद्वाद के अनुसार नहीं लिया। जब इनका उल्लेख किया जा रहा है तब दीगर लक्षण भी विद्यमान हैं। वे युगपत् अस्तित्व में हैं। उक्त लक्षणकार केवल एक पहलू को रोशन कर रहा है, दूसरे और ज्यादा बुनियादी पहलू का उल्लेख वह नहीं कर रहा है। अनुल्लेख से दूसरा पहलू खत्म नहीं हो जाता। यह पहलू है अनेकान्त दृष्टि-सम्पन्नता। जो व्यक्ति इस दृष्टि से सम्पन्न है, वही श्रावक है; अगर व्यक्ति दूसरे-के-लिए हाशिया नहीं छोड़ सकता, दूसरे-के लिए उपादान बनने के चक्कर में रहता है, दूसरे की अच्छाई के लिए निमित्त बनने से कतराता है तो वह श्रावक नहीं है।

स्थूल लक्षणों के प्रचार से एक बड़ा नुकसान यह हुआ है कि इनके पालक अपने-आपको ऊँची किस्म का श्रावक समझ बैठे हैं। दरअसल अगर कोई मनुष्य लोभ और लालच के कारण मानवीय सरोकारों को खत्म कर लेता है, अपने ही घर में अन्य मनुष्यों को पशुवत् जीवन जीने के लिए विवश करता है, शिक्षक, डॉक्टर, व्यापारी, उत्पादक आदि जिस किसी भूमिका में भी वह है उसका ठीक निर्वाह नहीं करता और इस तरह लोगों की उन्नति का निमित्त

नहीं बनता तो वह श्रावक नहीं है। मन्दिर में अपनी कषायपूर्ण दैनिक उपस्थिति, शाम को हापड़-धूपड़ भोजन करने और एक मैले कपड़े से पानी छान लेने मात्र से कोई मनुष्य श्रावक नहीं बन जाता।

—डॉ. जयकुमार जलज सहयोग भवन, पाँवर हाउस रोड, रतलाम, मध्यप्रदेश

३. श्रावक : आचार-विचार के प्रति प्रतिपग सजग

मेरी दृष्टि में, आदर्श मानवता की पर्यायवाची संज्ञा ही 'श्रावक' है। आदर्श मानव का निर्माण सही विचार एवं सही आचार पर आधारित है। आधार निम्न प्रकार हैं :

(१) सही विचारों के लिए आवश्यक है: (अ) ऐसा श्रद्धास्पद, पूर्णोत्कर्ष-प्राप्त परमार्थ व्यक्ति जिसके आदर्श ही हमारे परम उद्देश्य हैं; (ब) ऐसे शास्त्र जो उक्त आदर्शों की प्राप्ति का ज्ञान देते हैं; (स) ऐसे गुरु जो उक्त आदर्शों की प्राप्ति के लिए मूर्त रूप में मार्गदर्शन देते हैं।

अतएव पहला आधार है सही देव, शास्त्र, और गुरु की पहचान, उनमें अनन्य श्रद्धाभक्ति और उनके प्रति प्रतिदिन कुछ समय का सुनिश्चित आवंटन।

(२) सही आचार के लिए दैनिक जीवन में आवश्यक है: (अ) अप्रिय, क्रुटु एवं कठोर व्यवहार से यथासंभव विरति (अहिंसागुणव्रत); (ब) मिथ्या एवं अनावश्यक वचनों से विरति एवं हित-हित वचनों का प्रयोग (सत्यागुणव्रत); (स) अनधिकार चेष्टा से विरति (अचौर्यागुणव्रत); (द) सन्तुलित एवं शालीन व्यवहार (शीलागुणव्रत); (इ) संचय की सीमा का निर्धारण और सीमा से अधिक संचय से विरति अथवा अधिक संचय को दूसरों की आवश्यकताओं की पूर्ति में लगाना (अपरिग्रह-अणुव्रत)।

(३) सही विचार और सही आचार में दृढ़ता के लिए आवश्यक है: (अ) प्रतिदिन सोने से पहले इष्टदेव का स्मरण एवं दिन-भर के क्रिया-कलापों का भावनात्मक अंतरावलोकन (प्रतिक्रमण-परक); (ब) प्रतिदिन सो कर उठते ही इष्टदेव का स्मरण एवं भविष्य में भटकन से बचने के लिए भावनात्मक चिन्तन (प्रत्याख्यान-परक)।

उक्त विचार एवं आचार के प्रति सजग व्यक्ति को आज के सामान्य 'श्रावक' की संज्ञा दी जानी चाहिये।

—नेमीचन्द जैन
बी-४१०, न्यू फ्रेड्स कालोनी
नई दिल्ली

४. वह पैसे के पीछे बावला न हो

लोक-भाषा में श्रावक या गृहस्थ समानार्थक शब्द हैं। तत्त्ववेत्ताओं ने भी सद्गृहस्थ को ही श्रावक कहा है। सद्गृहस्थ वह है, जो अपने कर्तव्य का पालन करता है। कर्तव्य-पालन ही धर्म है। अपने धर्म का पालन करने वाले गृहस्थ को पूतात्मा सा ऋषेरपि कह कर सन्तों ने भी पूरा-पूरा सम्मान दिया है। आचार्य पद्मनन्दि ने पूज्यं तद् गार्हस्थ्यं तथा तेषां सद्गृहमेधिनां गुणवतां धर्मो न कस्य प्रियः कह कर गृहस्थ-धर्म की महत्ता का जोरदार प्रतिपादन किया है वे कहते हैं कि धन्य है वह गृहस्थ-धर्म, जिसमें जिनेन्द्र और जिनवाणी की पूजा, मुनियों की विनय, धर्मात्माओं की सेवा तथा व्रतों का पालन किया जाता है। ऐसे पवित्र गृहस्थ-धर्म का सम्यक् निर्वाह करते हुए हम अपनी श्रावक संज्ञा को सार्थक करें, इसी में हमारे जीवन की सफलता है।

आज का श्रावक चाह-की-बाहू से बहुत परेशान है। चाह भी उसे पैसे की सबसे ज्यादा है। अधिक-से-अधिक पैसे

आना/मिलना चाहिये, दिन-रात उसके सिर पर यही एक धुन सवार रहती है। पैसे के पीछे वह इतना बावला बना हुआ है कि स्व-पर के हिताहित का विचार करना ही वह भूल गया है। पैसे के लिए वह कभी धी-साबुन में चर्बी मिलाता है तो कभी मसालों में बुरादा। कैप्सूलों में खड़िया-मिट्टी भरने में भी उसे लज्जा नहीं आती। थोड़े-से सीमेण्ट के घोल में अधिक-से-अधिक बालू मिला कर इमारतें खड़ी करने का काम हमारे यहाँ के ठेकेदार कर ही रहे हैं। देवी-देवताओं की मूर्तियाँ चुराकर तिजोरी भरने की कोशिशों के किस्से रोज़ अखबारों में छपते रहते हैं। ऐसा कौन-सा अनाचार या अत्याचार, अथवा शोषण या उत्पीड़न है, जिसे आज का मनुष्य बेखटक नहीं कर रहा है। इस सबके पीछे पैसा बटोरने का लालच ही तो है। यह पैसा का मोह ही आज का सब-से-बड़ा परिग्रह है और परिग्रह सब-से-बड़ा पाप है। आचार्य अकलंकदेव के शब्दों में **सर्वदोषप्रसवयोनिः** अर्थात् सब दोषों का उत्पत्ति-स्थान यह परिग्रह (पैसे-का-मोह) ही है, इसीलिए किसी आचार्य ने ठीक ही कहा है— **अर्थमनर्थं भावय नित्यं** अर्थात् अर्थ (धन) की अनर्थता का नित्य चिन्तन करो।

गृहस्थ के लिए पैसा कमाना जरूरी है अवश्य; किन्तु आवश्यकता-से-अधिक पैसा मनुष्य की चित्तवृत्ति को बिगाड़ता है। धनी हमेशा ऐसी सुविधाएँ इकट्ठी करता है, जिससे वह खूब भोग भोग सके, ऐशो-आराम की जिन्दगी जी सके और ऐन्द्रिक विषय-वासनाओं का मजा ले सके। इस मौज-मजे की सजा उसे यह मिलती है कि वह हमेशा खोया-खोया-सा आकुल-व्याकुल बना रहता है। पैसे के बल पर विषय-कषायों के चक्कर में फँस कर वह दुःखी हो जाता है। इसके विपरीत जो सन्तोषी है, वह सुखी रहता है। धन की ओर से निःस्पृह ऐसे कुछ आदर्श श्रावकों के नाम याद आ रहे हैं :-

□ सन्तोष और सेवा-भाव से भरे ऐसे ही एक श्रावक थे पण्डित सदासुख-दासजी। अपना अधिकांश समय स्वाध्याय, सामायिक, तत्त्वचिन्तन और ग्रन्थ-लेखन में बिताते थे। आप एक राजकीय व्यक्तिगत संस्था (कापड़द्वारे) में सविस करते थे। जो भी वेतन मिलता था, उसी में अपना निर्वाह करते थे। उससे अधिक की चाह-दाह में जलना पाप समझते थे। वेतन भी मात्र दस रुपये मासिक मिलता था। उस सस्ते के जमाने में वह काफी था। चालीस वर्षों तक वह इसी वेतन पर काम करते रहे। एक बार अधिकारी ने उनके सामने वेतन-वृद्धि का प्रस्ताव प्रस्तुत किया तो वे बोले— 'जो मुझे मिलता है, वह मेरे और मेरे परिवार के लिए पर्याप्त है। अब यदि आप मेरी सेवाओं से प्रसन्न ही हैं तो वेतन बढ़ाने की अपेक्षा मेरे कार्य करने की अवधि में एक घण्टे की छूट दे दीजिये, ताकि मैं अधिक समय तक आत्मचिन्तन कर सकूँ।'

□ एक श्रावक थे पण्डित छत्रपति। वे अलीगढ़ के खिरनी सराय मोहल्ले में रहते थे। आज भी वह मकान वहाँ मौजूद है। वे भी बड़े सन्तोषी थे; धन-संचय की ओर से एकदम बेफिक्र। वे परचूनी की दूकान करते थे। उनका नियम था कि एक रुपया प्रतिदिन से अधिक नहीं कमायेंगे। एक रुपये में-से दस आने वे धर्मार्थ दान में देते, पाँच आने अपने निर्वाह के लिए खर्च करते, और एक आना बचाते थे। प्रायः एक घण्टे में एक रुपये की आमदनी हो जाती थी; अतः उस एक घण्टे को छोड़ कर वे अपना शेष समय धार्मिक कृत्य तथा साहित्य-सेवा में लगाते थे।

□ श्रावक-शिरोमणि पण्डित गोपाल-दासजी वरैया के नाम से कौन परिचित नहीं है? उनका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल था। व्यापार और व्यवहार में वे हमेशा सत्य और अचौर्य व्रत का पालन करते थे। रेल्वे और चूंगी की चोरी उन्होंने कभी नहीं की। एक बार वे अपने बच्चे के

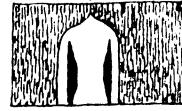
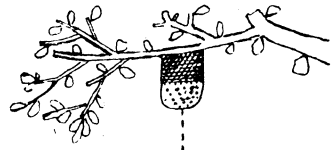
साथ रेल-यात्रा कर रहे थे। तीन साल तक के बच्चों का टिकट नहीं लगता। उन्होंने भी बच्चे का टिकट नहीं लिया। नियत स्थान पर पहुँच कर उन्हें ज्ञात हुआ कि बालक तीन साल से छह दिन ज्यादा का हो गया है। तुरन्त आधे टिकट का पैसा ट्रेफिक मैनेजर को भिजवा दिया और गलती के लिए क्षमा माँगते हुए पत्र लिखा। एक बार मण्डी में आग लग गयी। अनेक दुकानों के साथ उनकी भी आदत की दुकान जल गयी। कुछ दुकानों का बीमा था। उनकी दुकान का भी था। औरों ने ज्यादा माल बता कर बीमा कम्पनी से अधिक पैसा वसूल किया; किन्तु बरैयाजी ने उतना ही माँगा, जितने का माल था। उस समय रेल-यात्रा में थर्ड क्लास की एक टिकट पर पन्द्रह सेर वजन का सामान साथ में ले जाया जा सकता था। एक-दो सेर भी अधिक होने पर वे उसका 'लगेज' चुकाते थे। ऐसे थे नियमों के पाबन्द, निर्लौभी और ईमानदार हमारे पण्डितजी।

जिनकी वृत्ति में ऐसा सन्तोष होगा, या जो सन्तोष को ही अपना सब-से-बड़ा कर्तव्य मानेंगे, वे कभी अन्याय से धन नहीं कमायेंगे, पाप से डरें और सदैव सदाचार का पालन करेंगे। —नरेन्द्रप्रकाश जैन
१०४ नई आबादी,
फिरोज़ाबाद (आगरा, उ.प्र.)

५. श्राविका : समृद्धि-की-द्वार

संसार की सृष्टि में स्त्री और पुरुष दो अंग हैं। जैसे कुम्भकार के बिना चाक से बर्तन नहीं बन सकते अथवा किसान के बिना पृथ्वी से धान्य की फसल नहीं हो सकती, उसी प्रकार स्त्री-पुरुष दोनों के संयोग के बिना सृष्टि की परम्परा नहीं चल सकती।

आज जब कन्या का जन्म होता है तब घर वाले ही क्या अड़ोस-पड़ोस के लोग भी यही सोचने लगते हैं कि यह क्या बला आ गयी? इसका मूल कारण है दहेज।



दहेज-प्रथा ने कितने अनर्थों को जन्म दिया है, यह सब प्रत्यक्ष दृष्टि-गोचर हो रहा है। एक समय था : जब कन्या को सब-से-श्रेष्ठ रत्न और उनके माता-पिता को रत्नाकर माना जाता था।

पूर्वाचार्यों ने लिखा है : 'कन्यारत्ना-त्परं नान्यद्' — कन्यारत्न से बढ़ कर अन्य कोई रत्न नहीं है; तथा — 'रत्नकरत्व-दुर्गवमम्बुधिः श्रयते वृथा'—यह समुद्र अपने 'रत्नकरत्व' नाम के छोटे अभिमान को व्यर्थ ही धारण कर रहा है; क्योंकि जहाँ इस कन्यारत्न ने जन्म लिया है ऐसे उसके माता-पिता ही सच्चे रत्नों की खान रत्नाकर हैं।

उक्त बात सुलोचना के स्वयंवर के प्रसंग पर श्री गुणभद्राचार्य ने कही है। वास्तव में जहाँ एक कन्या के स्वयंवर के समय करोड़ों राजे-महाराजे उपस्थित होते थे और सबके मन में यही आशा रहती थी कि यह कन्या मेरे गले में वरमाला डाले (इस विषय में सुलोचना, सीता, द्रोपदी आदि के प्रत्यक्ष उदाहरण आबाल-गोपाल प्रसिद्ध ही हैं); वहाँ आज सर्वथा इसके विपरीत स्थिति देखने को मिलती है।

प्रश्न है : कन्याओं के जन्म को हीन-दृष्टि से देखने का मूल कारण जो दहेज है, उसका निर्मूलन कैसे किया जाए? इस दृष्टि में महिलाओं को सक्रिय क्रम

उठाना चाहिये। महिलाएँ ही महापुरुषों की जननी है। तीर्थंकर जैसे नर-रत्नों को जन्म देने का सौभाग्य महिलाओं ने ही प्राप्त किया है। यही कारण है कि महामुनियों ने उनकी प्रशंसा में बहुत कुछ कहा है। श्रीमानतुंगाचार्य के शब्द हैं—

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान् ।
नान्या सुतं त्वद्रुपमं जननी प्रसूता ॥
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्रराशम् ।
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥

(सैकड़ों स्त्रियाँ सैकड़ों ही पुत्रों को जन्म देती हैं; किन्तु हे भगवन्! आप-जैसे पुत्र को जन्म देने वाली माता विरल ही होती है। सो ठीक ही है; क्योंकि दिशाएँ नक्षत्रों को तो जन्म दे सकती हैं; किन्तु हजारों किरणों से देदीप्यमान ऐसे सूर्य को एक पूर्व दिशा ही जन्म देती है)।

पातिव्रत्य धर्म में सीता और मैना सुंदरी के उदाहरण प्रसिद्ध हैं। साथ ही पति को उन्मार्ग से हटा कर सन्मार्ग में लगाने के लिए रानी चेलना का पुरुषार्थ एक प्रेरक उदाहरण है।

आजकल प्रायः महिलाएँ पति को प्रसन्न रखने के लिए उनके साथ क्लबों में घूमना और स्वच्छन्द प्रवृत्ति करना ही अपना कर्त्तव्य समझ लेती हैं। कोई-कोई महिलाएँ तो पति के साथ रात्रि-भोजन ही क्या; मदिरापान आदि भी करने लगती हैं। भोगों में ही सुख मानने वाली कुछ महिलाएँ तो पति को दुर्व्यसनो से नहीं रोक पाती हैं; किन्तु धर्म-कार्य से गुरुओं के पास जाने से उन्हें अवश्य रोक देती हैं। आज ऐसे कितने ही उदाहरण देखने में आते हैं।

सचमुच ऐसी महिलाओं को ही आचार्यों ने दुर्गति का द्वार बतलाया है; यथा—

शरणमशरणं वो बंधवो बंधमूलं ।
चिरपरिचितदार द्वारमापद्गृहाणाम् ॥

जिस घर को शरण समझते हैं वह अशरण है, बंधुवर्ग बन्धन का मूल करण है और चिरकाल से परिचित स्त्रियाँ भी आपत्ति के घर की द्वार हैं। ये वाक्य श्री गुणभद्रसूरि के हैं; किंतु शीलवती महिलाएँ इससे विपरीत सन्मार्गदर्शिका भी देखी जाती हैं।

जो महिलाएँ गृहस्थाश्रम में रहते हुए सम्यग्दर्शन को धारण कर श्रद्धावती, सम्यग्ज्ञान-से-सहित हो विवेकवती और सम्यक् चारित्र्य को अणुव्रत-रूप एकदेश ग्रहण कर क्रियावती हो जाती हैं वे ही 'श्राविका' कहलाती हैं। ये श्राविकाएँ पति के साथ धर्मानुगामिनी हो कर जिनेन्द्र देव की पूजा, गुरुओं को आहार-दान; शील, उपवास, आदि श्रावक-धर्म की क्रियाओं में तत्पर रहती हैं। ऐसी श्राविकाओं से ही गृहस्थाश्रम मोक्षमार्ग बन जाता है।

श्राविकाओं का अपनी संतान के प्रति क्या कर्त्तव्य है? वास्तव में जो श्राविकाएँ सुशिक्षित हैं, वे अपनी संतान को सुयोग्य साँचे में ढाल सकती हैं; क्योंकि माताओं की गोद ही बच्चों के लिए प्रारम्भिक पाठशाला है। माताएँ बच्चों को प्रारम्भ से ही लाड़-प्यार के साथ धर्म की घुटी पिला-पिला कर उन्हें संस्कारों से हृष्ट-पुष्ट बना सकती हैं। जब बच्चे कुछ समझने और बोलने लग जाँएँ तो उन्हें महामन्त्र सिखाना, अच्छे-अच्छे धार्मिक भजनों की पंक्तियाँ रटाना, जैसे-जैसे वे ३-४ वर्ष के हो जाँएँ उन्हें छोटी-छोटी शिक्षास्पद कथाएँ सुनाना प्रत्येक श्राविका का कर्त्तव्य है। धार्मिक पाठ-शालाओं में कुछ-न-कुछ धर्म-शिक्षा दिलाते रहना ही बच्चों को सुसंस्कारित करना है। किशोरावस्था में उन्हें कुसंगति से बचाना मन्दिरों में जाने की प्रेरणा देते रहना गुरुओं के पास ले जाना, तीर्थ-यात्राओं की वन्दना कराते रहना उनके जीवन में सद्-विचारों के बीजोरोपण करना है। खास कर, ग्रीष्मावकाश में बालक-बालिकाओं को गुरुओं के पास धर्म-शिक्षा दिलाना, धार्मिक

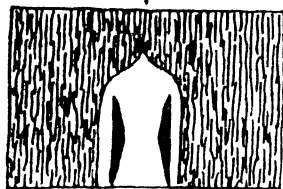
पढ़ाई में, शिक्षण में भाग दिलाना उसका बहुत बड़ा सदुपयोग है।

युवकों को धर्म-कथाओं के माध्यम से चरित्रवान बनाना चाहिये। मर्यादा-पुरुषोत्तम रामचन्द्र, जबूकुमार, अकलंक, निकलंक आदि महापुरुषों के आदर्श बालकों के समक्ष पुनः पुनः कहते रहने से उनमें वैसा बनने के संस्कार सहज ही उत्पन्न हो सकते हैं।

कन्याओं के शील की सुरक्षा कैसे हो? इस दृष्टि से भी माता का सावधान रहना चाहिये। छोटी-छोटी बालिकाओं को कुसंगति से बचाना, युवा नौकरों को घर में न रखना, अश्लील उपन्यास पढ़ने से, अश्लील सिनेमा आदि देखने से दूर रखना आदि। प्राचीन काल में भी राज-घरानों तथा सभ्य घरानों में वृद्ध कंचुकी नौकर रहते थे, जिससे कन्याओं की ही नहीं बल्कि युवती महिलाओं के शील की सुरक्षा भी बनी रहती थी। अश्लील कहानियों और चलचित्रों का कुप्रभाव कोमल और सरल मस्तिष्क को विकृत बनाये बगैर नहीं रहता है; अतः इस दृष्टि से भी हमें सावधानी बरतनी चाहिये।

कन्या विवाह के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर माता बनती है। जिस प्रकार कोयले की खान से कोयला और हीरे की खान से हीरा निकलता है, उसी प्रकार अच्छे संस्कारों से संस्कारित शीलवती माता से अच्छे-अच्छे नर-रत्न और कन्या-रत्नों का जन्म होता है। दुर्गचारिणी माता की संतान कभी भी अच्छी नहीं मानी जाती।

शीलवती महिलाएँ मनुष्यों से ही नहीं देवों से भी पूज्यता प्राप्त कर लेती हैं। शील के प्रभाव से अग्नि का जल हो जाना, सर्प का हार हो जाना, बज्र के फाँक खुल जाना आदि उदाहरण कल्पनाएँ नहीं हैं। आज भी यदि कोई महिला अपने शील को सुरक्षित रख कर अग्नि को जल बनाना चाहे तो सहज सफल हो सकती है। आत्मविश्वास बहुत बड़ी चीज है। यह



नियम है कि पंचम काल के अन्त में भी शीलवती महिलाएँ रहेंगी और आगे के छठे काल में भी उनकी परम्परा चल सकेगी; पुनरपि आने वाले चतुर्थकाल में उन्हीं शीलवती श्राविकाओं के वंश में तीर्थंकर आदि महापुरुष जन्म लेंगे। यह तो सब एकदेश ब्रह्मचर्य अणुव्रत की महिमा है। ब्रह्मचर्याणुव्रत, पालन करने वाली ऐसी श्राविकाएँ गृहस्थाश्रम में रह कर भी देवपूजा, गुरुपासना, स्वाध्याय आदि करते हुए धर्म की परंपरा को अक्षुण्ण रखती हैं।

—आयिका ज्ञानमती माताजी
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान,
हस्तिनापुर (मेरठ, उ. प्र.)

६. पहिये और गाड़ी को जोड़ने की जरूरत

श्रावक केवल जैनधर्म एवं परम्परा का प्रतिनिधित्व नहीं करता, अपितु वह सम्पूर्ण भारतीय जीवन का संवाहक है।

श्रावक के १२ व्रत, उनके ३५ मार्गानुसारी गुण, उसकी सादगी और धर्मपरायणता आदि के विवेचन की पृष्ठभूमि में यदि श्रावक का चित्रांकन कोई करे तो भारत का क्या, विश्व का उससे अच्छा कोई नागरिक नहीं हो सकता; किन्तु इन सभी गुणों-से-युक्त कोई श्रावक कभी समाज के सामने खड़ा हुआ हो, इतिहास इसका साक्षी नहीं है। आदर्श के इस विशाल मापदण्ड को सामने रख कर परम्परा में अनेक ऐसे श्रावक अवश्य हुए हैं, जिन्होंने व्यसन-मुक्त जीवन एवं आध्यात्मिक-अनुभवों की अधिकांश सीढ़ियाँ पार की हैं। इसे मूल्यों के ध्वंस होने का प्रवाह ही कहा जाएगा कि श्रावक का स्वरूप आदर्श की सीढ़ियों पर चढ़ने की बजाय, नीचे उतरा है; और आज उस धरातल पर वह पहुँच गया है कि जहाँ 'श्रावक' शब्द, की पहिचान मिटने लगी है। 'भीतर का आदमी' भी धूमिल हो गया है। पशुता की श्रेणी में खड़ा हुआ श्रावक का खंडहर कैसे अपनी पुरानी प्रतिष्ठा को रेखांकित करे; चिन्तन, क्रियान्विति प्रासंगिकता की ये ही दिशाएँ होनी चाहिये।

ज्ञान-विज्ञान और भौतिकता के इस युग में भी श्रावक का सूर्य उग सकता है। इसके लिए श्रावक को सभी ओर से प्रतिष्ठा और मान्यता देनी होगी। श्रावक भौतिक रूप से आज भले ही उन विधि-विधानों और अनुष्ठानों का स्वयं कर्ता न बन पाये, जो कभी उसके लिए अनिवार्य थे, किन्तु उनके प्रति आस्था तो उसे रखनी ही होगी। देव, शास्त्र, गुरु की उपासना-पद्धति में आधुनिकता को स्वीकार किया जा सकता है; किन्तु उन्हें नकारा नहीं जा सकता। श्रावक का वेश बदला हुआ हो सकता है, किन्तु राग-द्वेष की सीमा-रेखा तो उसे खींचनी ही होगी। अष्टमूल गुणों का नाम उसे देर से याद हो, कोई बात नहीं, किन्तु धन्धे और धर्म की समानता का पाठ उसे पढ़ना ही होगा। अनुप्रेक्षाओं, प्रतिमाओं

की सीढ़ियाँ चढ़ने में पीढ़ियाँ लगें तो कोई बात नहीं, किन्तु व्यसनो-से-मुक्त होने की शपथ तो उसे हर क्षण निभानी ही है। आधुनिकता की किसी भी कालीन में उसके पाँव कितने ही धँसे हों, किन्तु उसे आत्मा के निर्मल स्वरूप को मलिन करने का अधिकार श्रावक नहीं दे सकता। व्यस्तताओं अधिकारों/सुविधाओं से उसका आकाश कितना ही भरा हुआ क्यों न हो, प्रार्थना/उपासना के कुछ क्षण उसके अपने होने ही चाहिये और अपनों के लिए होना चाहिये तो 'श्रावक' फिर जीवित हो उठेगा। श्रावक के जीवित होने का अर्थ है—श्रमण-धर्म का खिल उठना और श्रमणधर्म के खिलने से देश/विश्व बिना महके हुए नहीं रहेगा। आज श्रावक-रूपी धर्मचक्र खूब गतिशील है, किन्तु दुर्भाग्य यह है कि वह श्रमण-धर्म/जैनधर्म रूपी गाड़ी में लगा हुआ नहीं है और कोई भी चक्र/पहिया अकेला घूमता है तो वह कहीं पहुँचता नहीं है। केवल अपनी तह में स्याह खड्डा करता है; अतः प्रासंगिकता आज पहिये और गाड़ी को जोड़ने की है। नियन्त्रण और गति दोनों मंगलकारी होंगे—विश्व-कल्याण के लिए।

—डॉ. प्रेमसुमन जैन

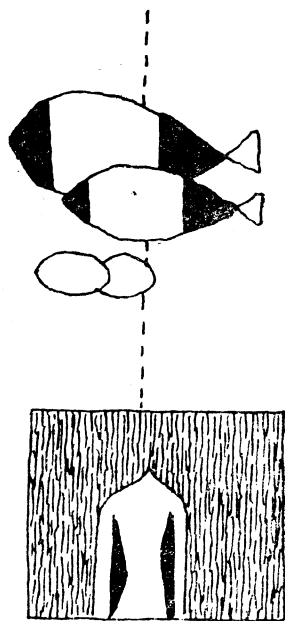
२६, सुन्दरवास,
उदयपुर (राजस्थान)

७. मूलगुण : एक समाज-शास्त्रीय दृष्टि

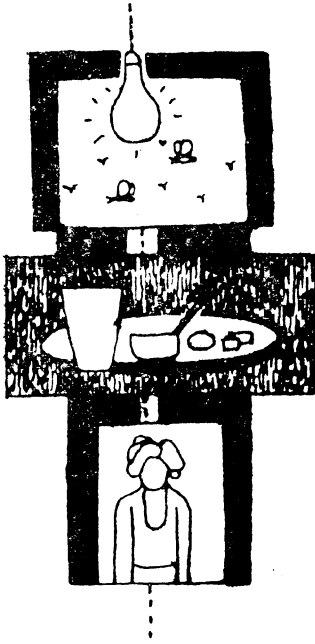
'श्रावक' शब्द के गहरे, शास्त्रीय और आध्यात्मिक अर्थ भी हैं, किन्तु जिस दृष्टिकोण से मैं इस प्रश्न पर विचार करना चाहता हूँ, उसके लिए बहुत सीधे-सादे अर्थ से काम चल जाएगा। सब-से-पहले तो यह कि श्रावक वह जो सुने—'श्रणोति'। दूसरी बात यह कि जो भी कुछ सुने, श्रद्धाभाव से सुने—उसमें श्रद्धालुता का उदय हो—'श्रद्धालुताम् श्राति'। तीसरी बात यह कि उसका श्रवण और उसकी श्रद्धा फलवती हो, उससे पापों का नाश हो, पाप बह जाएँ—

‘श्रवन्ति यस्य पापानि’ । यह व्यक्ति के मन को श्रावकत्व की ओर उन्मुख करने की पूर्व-पीठिका है । सुनने के लिए तो कौतूहल के कारण भी साधु के पास व्यक्ति पहुँच जाता है । उसके उपरान्त साधु (उपदेष्टा) का निर्मल व्यक्तित्व और उसके वचन आकर्षित करते हैं । साधु की तपस्या और साधु की आर-पार दिखने वाली लोक-कल्याण की भावना मुखरित हो जाती है । आचार्य या साधु या उपदेष्टा के सामने एक ही लक्ष्य होता है कि वह अहिंसा के महत्त्व को श्रोता के हृदय में उतारे; और कुछ इस प्रकार उतारे कि व्यवहार में उसकी उपयोगिता सिद्ध की जा सके । यह बताया जा सके कि क्या बात, व्यवहार या स्थिति हिंसामूलक है और क्यों है — यह प्रत्यक्ष होना चाहिये ।

हिंसा-अहिंसा का यह प्रत्यक्षीकरण बुनियादी और मूलभूत प्रयत्न है । हिंसा-अहिंसा के मूलभाव की प्रतीति और उसके आधार पर व्यवहार में, अत्यन्त स्थूल रूप ही सही, व्यक्ति अहिंसा के प्रति प्रतिबद्ध हो जाए, उपदेष्टा का मूल मुद्दा यही होता है । इसे ही यदि ‘मूलगुण’ कहा जाए तो बात कितनी सहजता से समझ में आ जाती है । श्रावक कहने से आज जिस ज्ञानी-ध्यानी गृहस्थ की छवि हमारे मन में उदित होती है और हम अपने में और उसमें एक दूरी अनुभव कर लेते हैं, ऐसी बात मूलगुण की कल्पना करने वाले आचार्यों के मन में नहीं थी । वे जानते थे कि भगवान् आदिनाथ से ले कर महावीर-पर्यन्त जिन लाखों व्यक्तियों में अहिंसा के संस्कार जाग्रत हो गये हैं वे मूलगुणों की परिधि से ऊपर उठ चुके हैं । मूलगुण को परिभाषित करने वाले आचार्य या साधु के मन में वह व्यक्ति था जो शायद निपट अज्ञानी था, जो दूर के वन-प्रान्तरों में रहता था, मांसाहार को जो अपना दैनिक जीवन-व्यापार मानता था, कबीले के लोगों के साथ बैठ कर अपनी बनायी हुई शराब पीता था । आखेट करता



था । मधुमक्खियों के छतों को जला कर शहद निकालता था । अनेक प्रकार के कन्द-मूल-फल खाता था, जिनमें ऐसे अनेक फल होते थे (बड़, पीपल, गुलर आदि), जिनमें दाँत मारते ही सँकड़ों छोटे जन्तु भनभनाकर मर जाते थे । ऐसे कबीले जिनका जीवन-धर्म शरीर के शक्ति-संचय को प्रमुखता देता था, जो प्रेतों और पितरों के तर्पण में तीनों मकारों और उदंबर फलों का प्रयोग करते थे, ऐसी वन्य जातियों के बीच जा कर जो साधु अहिंसा-धर्म का प्रचार करना चाहता था उसे अपने संयम की रक्षा के लिए कितने-कितने उपवास करने पड़ते होंगे, कितनी गहन अटवियों, गुफाओं और पर्वतों तक पहुँचना पड़ता होगा, ऐसी जातियों को अहिंसक बनाने के लिए मांस, मद्य और मधु तथा उदम्बर फलों के हिंसा-जन्म रूप के प्रति अरुचि उत्पन्न करने के लिए उपदेश देने होते थे और उनकी भाषा में कथाएँ निर्मित करनी पड़ती थीं । जब ये व्यक्ति धीरे-धीरे इन वस्तुओं के



खान-पान का त्याग कर साधु के सामने प्रतिज्ञाबद्ध होते थे तब वह श्रावक की संज्ञा प्राप्त करते थे। व्रत और विरति, संकल्प और संयम ही मूलगुण हैं। मद्य, मांस, मधु और पाँच उदम्बर फल (बड़, पीपल, प कर, गूलर, ऊमर-कठुमर) इन आठ का त्याग अष्ट मूलगुण का ग्रहण है।

जिन अष्टमूल-गुणों का विधान विशेषकर मद्य, मांस, मधु का निषेध जिन असंस्कृत जंगली जातियों के लिए उद्दिष्ट था, उनकी श्रेणी में पहुँचने के लिए आज के सभ्य नगर-निवासी को, आज के जैन को, प्रयत्न करना पड़ता है, यह कितना बड़ा व्यंग्य है हमारे अहिंसा-धर्म की वकालत पर।

मानना होगा कि जंगली जातियों के मन में अष्ट मूलगुणों की प्रतिष्ठापना का काम बहुत मुश्किल रहा है; किन्तु मुनियों ने प्रयत्न किया है और सफल हुए हैं। जिस दिन किसी भयंकर दुर्दम्य भील के मन में श्रद्धा उत्पन्न करके एक साधु ने उससे

प्रतिज्ञा करवा ली कि वह चतुर्दशी के दिन कौए का माँस नहीं खायेगा, उस दिन मुनि महागज ने भिल्लगज को श्रावक धर्म में दीक्षित कर लिया; क्या यह निष्पत्ति ठीक है? सप्त व्यसनों का त्याग अगली मंजिल होती थी, किन्तु एक तिहाई मंजिल तो अष्ट मूलगुणधारी पहले ही पार कर चुका होता था। ग्यारह प्रतिमाओं तक श्रावक को पहुँचाना, श्रावक का पहुँचाना, अध्यात्म-यात्रा के पड़ाव बनते चले गये।

अष्ट मूलगुणों के पालन में, सप्त व्यसनों के त्याग में, सामने तो व्यक्ति की साधना ही दिखायी देती है; किन्तु फल मिलता है, अन्ततोगत्वा समाज को भी। जिन आचार्यों, साधुओं, मुनियों और उपदेष्टाओं के संदर्भ से यह वक्तव्य प्रारंभ हुआ, वह व्यक्ति से अधिक समाज का संदर्भ है, समाज में धार्मिक क्रान्ति का उद्घोष करने की प्रक्रिया है। जन-जन का कल्याण हो, इसी प्रयत्न के लिए तीर्थंकर का समवसरण है, इसी साध्य के प्रतिफलन के लिए गुणस्थानों की प्रक्रिया में अध्यात्म की ऊँचाई से उतर सकने का सहज प्रावधान है।

आज श्रावकाचार के संदर्भ में मोक्ष-की-भूमिका को बहुत ऊँचा प्रतिष्ठित रख कर अन्तिम लक्ष्य के रूप में वन्दना कर लेना पर्याप्त है। समन्तभद्र स्वामी ने जब यह देखा कि सभ्य समाज के लिए मद्य-मांस-मधु का त्याग तो आवश्यक है, किन्तु पंच उदम्बर फलों के त्याग का न अवसर है, न आवश्यकता, क्योंकि कौन खाता है इन्हें अब; तो उन्होंने एक ऊँची भूमिका दे दी, पंच अणुव्रत की; अर्थात् तीन मकारों से विरति और पंच अणुव्रतों का पालन। जिनसेन ने तो मद्य-मांस-मधु में से मधु के स्थान पर सूत-विरति को स्थापित किया। उस पर जोर देना अधिक आवश्यक समझा; जुए में परिवार ध्वस्त होते हुए उन्होंने देखे होंगे। आज हम थोड़ा और विस्तार दें।

मैत्री, प्रमोद, काश्यप, और माध्यस्थ भाव को श्रावकाचार में विशेष रूप से सम्मिलित करें और जलगालन तथा अरात्रिभोजन न भी सध सके तो अष्ट मूलगुण के आधार-भूत श्रावकाचार का पालन तो अवश्य करें। व्रतों के सम्बन्ध में जैनाचार्यों की दृष्टि इतनी व्यावहारिक रही है कि उन्होंने शक्ति के अनुसार व्रत-पालन पर बल दिया। शर्त एक ही रखी कि शक्ति को छिपाया न जाए। जितनी अधिक संयम-साधना कर सकें, करें—आत्मप्रवृत्तियों से वचें।

—लक्ष्मीचन्द्र जैन

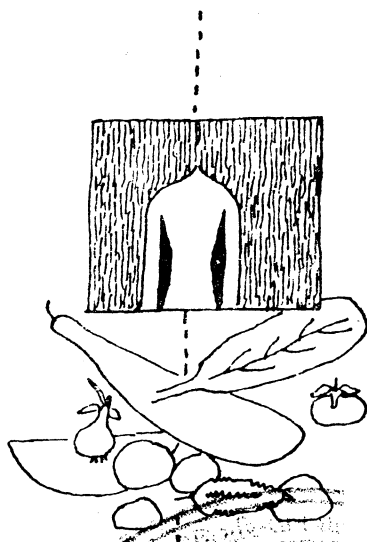
भारतीय ज्ञान पीठ, १८ इंस्टीट्यूशनल एरिया,
लाधी रोड, नई दिल्ली-३

८. दो अनिवार्य भूमिकाएँ

‘श्रावक : आज कैसा हो’ परिचर्चा के लिए यह विषय, वर्तमान संदर्भ में, जितना समीचीन तथा उपयोगी है, उसके संबंध में कुछ कहना उतना ही कठिन है। जिस श्रावक की कल्पना करके ‘रत्नकरण्ड श्रावकाचार’, ‘चरित्रसार’, ‘अमित-गति श्रावकाचार’ इत्यादि ग्रंथों में उसके पालन के लिए नियमादिका विवेचन किया गया था, उससे आज वह बहुत भिन्न है। युग बदल गया, धर्म का स्वरूप परिवर्तित हो गया, मूल्यों, आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन में बदलाव आ गया। सारा परिप्रेक्ष्य ही बदल गया। सबसे बड़ी बात यह है कि श्रावक की मानसिकता की भूमिका ही कुछ और हो गयी। आज उसकी दृष्टि बहिर्मुखी हो गयी। उसके लिए पदार्थ मूल्यवान हो गया है, मानव गौण हो गया है। वह भौतिक उपलब्धियों को अपने जीवन की सफलता की कसौटी मानता है।

यह है आज का यथार्थ, जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

श्रावक का कर्मक्षेत्र गृहस्थ की परिधि है। अपने पारिवारिकों का पालन-पोषण करना उसका कर्तव्य है; किन्तु उसका



धर्म आत्म-कल्याण है, परमात्म-तत्त्व की ओर उत्तरोत्तर अग्रसर होना है।

मैत्री दृष्टि में वर्तमान युग में श्रावक की दो भूमिकाएँ अनिवार्य हैं। पहली भूमिका यह है कि गृहस्थ के नाते उसे प्रमाद-रहित हो कर सच्चाई तथा कर्तव्य-निष्ठा से पूर्ण पुरुषार्थ करना चाहिये। नीति की तराजू हर घड़ी उसके हाथ में रहे और वह अपने प्रत्येक कर्म को उसमें ताल कर करे। घर का वातावरण निर्मल रखे। स्वयं उसके लिए अपने जीवन का आदर्श प्रस्तुत करे। उसकी करनी और कथनी में तनिक भी अंतर न हो।

दूसरी भूमिका है श्रावक का अपने प्रति धर्म/अंग्रेजी के विख्यात कवि बर्ड्सवर्थ ने ठीक ही कहा है कि हम दुनियादारी में बेहद लिप्त हैं और दुनियादारी के लेन-देन में अपने जीवन को चुका देते हैं। सच यह है कि आदमी रोटी के लिए जीवित नहीं रहता। रोटी उसके जीवन के लिए आवश्यक है; पर जीवन का चरम लक्ष्य भगवान् महावीर के शब्दों में ‘आत्मा को

परमात्मा' बनाना है। श्रावक की आत्म-परक भूमिका यही है। नित्य प्रति अपनी कषायों को खोजना और उन्हें दूर करना, अपनी आत्मा पर पड़े आवरण को देखना और उसे हटाना श्रावक का सर्वोपरि दायित्व है।

जिस समय मनुष्य का अधिष्ठान श्रद्धा थी; धर्म ने उसकी बड़ी सहायता की, पर आज तो सारी मान्यताएँ और सारा परिवेश ही बदल गया है। धर्म की परिधि अब बहुत व्यापक हो गयी है। विज्ञान ने ज्यों-त्यों यातायात के साधन सुलभ करके दुनिया को छोटा बनाया है। भौतिकता ने अपना जाल चारों ओर बिछा दिया है। धर्म को उसने साम्प्रदायिकता का रूप दे दिया है; उसे कर्मकाण्ड के पाश में जकड़ दिया है।

श्रावक को आज इस सच्चाई को खूली आँखों से देख कर अपने वास्तविक धर्म को स्वीकार करना होगा। आज जो

सत्य, प्रेम, करुणा का लोप हो गया है, उन्हें उसे पुनः प्रतिष्ठापित करना होगा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि कषायों को जीतने के लिए कमर कसनी होगी।

जैनधर्म में सम्यक् दर्शन, सम्यक्-ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य को मोक्ष को रत्नत्रयी माना गया है। इस पर आज के श्रावक को अपनी डगमगाती आस्था को सुदृढ़ करना होगा।

आज श्रावक अपने कर्तव्य को और अपने धर्म को भूल गया है। उसने असार को पकड़ लिया है और सार को त्याग दिया है। इसीसे सारी विकृतियाँ उत्पन्न हुई हैं। श्रावक जैसे ही अपने दायित्व को गहराई से समझेगा और जीवन के मर्म को सामने रख कर अपने कर्तव्य का पालन करेगा उसका अपना लाभ तो होगा ही, उसका जीवन भी धन्य बनेगा। —यशपाल जैन,

सस्ता साहित्य मण्डल,
एन-७७, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली-१

हिरन भी, सिंह भी

अपने मन को शान्त रखो — विश्व के सौंदर्य को, विश्व के खजाने में भरी हुई अपार और असीम संपदा को पहचानो।

जो कुछ तुम्हारे भीतर है, जो कुछ तुम्हारे हृदय का अभिलषित है, और जिसके लिए तुम्हारी प्रकृति ने तुम्हें सन्नद्ध किया है, वह सबकुछ और उसका उलटा भी तुम्हारे लिए सुरक्षित है, उस महान् सत्ता में और निश्चय ही वह सब तुम्हें मिलेगा; किन्तु मिलेगा अपने निर्धारित समय पर ही — उससे एक भी क्षण पहले या बाद में नहीं। तुम्हारा सारा चीखना-चिल्लाना, उद्विग्न होना और हाथ फँलाना व्यर्थ है; इसलिए यह खेल शुरू ही मत करो।

अपने मन-के-जल-को अविचारपूर्वक इधर-उधर मत छलकाओ, ताकि तुम्हारी दशा मरुभूमि में जा कर विलुप्त हो जाने वाले झरने की-सी न हो जाए।

बल्कि सारे जल को छोटे-से दायरे में समेट लो और उसे सर्वथा स्थिर बना लो, सर्वथा शान्त। और उसे स्वच्छ हो जाने दो — एकदम विमल, एकदम दर्पण-सा स्वच्छ!

अन्त में, पर्वत और आकाश अपने निभृत सौन्दर्य के साथ उसमें प्रति-बिम्बित होने लगेंगे।

और हिरन उसमें पानी पीने को झुकेगा और अपनी परछाई देखेगा और देखता ही रह जाएगा; और सिंह अपनी प्यास बुझाने वहाँ आयेगा और साक्षात् प्रेम वहाँ पधारेगा, झुकेगा, और तुम्हारे भीतर अपना प्रतिबिम्ब पा लेगा।

—एडवर्ड कार्पेन्टर

बेहतर मानव यानी बेहतर श्रावक

चर्चाकार : श्री अभय छजलानी, श्रीमती सी. शरयू दफतरी, श्री बाबूलाल पाटोदी, पं. फूलचन्द शास्त्री; **प्रवर्तक :** डॉ. नेमीचन्द जैन; इन्दौर, २५ मार्च १९८५

डॉ. नेमीचन्द जैन : प्रवर्तन में मैं दो-तीन बातें रख देना चाहता हूँ। 'श्रावक' एक परम्परित शब्द है; श्रावकाचार बहुत सारे लिखे गये हैं, करीब ३९ या ४० ये हैं; इनकी इतनी बड़ी संख्या क्यों है? इतने श्रावकाचार लिखने की आवश्यकता आखिर क्यों हुई? यदि कोई 'श्रावकाचार' किसी एक युग में पूरी तरह स्थापित हो लेता तो फिर किसी नये श्रावकाचार की आवश्यकता शायद नहीं होती; किन्तु सामाजिक/सांस्कृतिक संदर्भ/मूल्य-मान बदलते गये, इसलिए ऐसा हुआ। यह सहज था। हमें सोचना है कि आधुनिक संदर्भों में एक श्रावक की परिकल्पना क्या एक अच्छे नागरिक, या सद्गृहस्थ के रूप में हो सकती है?

आज चूँकि विज्ञान के, समाज के नये संदर्भ हमारे सामने हैं; अतः इन सबके बीच अहिंसा का परिपालन करते हुए, आहार के नियमों का ध्यान रखते हुए, सादगी और मितव्ययता के साथ संचय-वृत्ति को (कहाँ तक/कैसे) नियंत्रण में लिये हुए क्या हम श्रावकों के लिए कोई आचार-संहिता बना सकते हैं? क्या श्रावक को हम कोई गाइड-लाइन (मार्गदर्शन) दे सकते हैं? अगर ऐसा संभव है, तो वह क्या है; क्या हो सकती है?

सबसे पहले मैं 'नई दुनिया' (दैनिक, इन्दौर) के संपादक श्री अभय छजलानी से निवेदन करूँगा कि वे इन संदर्भों में प्रकाश डालें।

अभय छजलानी : जब हम 'श्रावक' या 'धर्म' की चर्चा करते हैं, तब दो बातें बहुत गड़मड़ कर देते हैं। धर्म की दो बिलकुल स्पष्ट विधाएँ हैं: एक आराधना की, दूसरी आचरण की। श्रावक का संबन्ध आचरण की विधा से आता है। आराधना व्यक्ति का निजी आत्मबल है, निजी ज्ञान है, निजी संपत्ति है। आचरण के निजी होने के बावजूद वह सार्वजनिक भी है। जब तक व्यक्ति आचरण को अपना नहीं लेता, तब तक वह आराधना की विधा में कितना ही पारंगत हो जाए, भेरी राय में, वह सही श्रावक नहीं है (सही धर्मावलम्बी भी नहीं है)। आचरण बिना सुधारे आराधना-में-तन्मय व्यक्ति कभी-कभी स्वयं इस भ्रम में रहता है कि वह बहुत पुण्य कर रहा है, बहुत धर्म कर रहा है और आचरण में अपने-आपको सुधारता रहा है; इसलिए किसी भी दृष्टि से धार्मिक होने के लिए

आवश्यक यह है कि वह आचरण की विधा सुधारे। आचरण के-संदर्भ (आवश्यकताओं के भी) परिवर्तित होते रहते हैं।

होता अक्सर यह है (जो केवल धर्म के साथ ही सच नहीं है, बल्कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के साथ भी सच है) कि जो लोग किसी वस्तु, या स्थिति की शास्त्रीय विधि में पारंगत हो जाते हैं, वे प्रायः उसके व्यावहारिक पहलू का अनादर करने लगते हैं; इसीलिए दोनों विधाओं में समन्वय कभी-कभी मुश्किल हो जाता है। वे जान-बूझ कर अनादर करने लगते हैं इसलिए कि वे जानते हैं, वे जो कुछ कर रहे हैं, वह उचित नहीं है, फिर भी वे स्वयं को नियंत्रित नहीं कर पाते, इस गुमान में कि वे एक विधा-में-पारंगत हो गये हैं और लोग उन्हें सम्मान देने लगे हैं।

इसका समाधान व्यक्ति के संतुलित होने, और स्वयं के बौद्धिक विकास पर निर्भर करता है। कहा तो यह जाता है कि व्यक्ति जितना बड़ा होता जाए, उसके बड़प्पन को भी उतना ही लचीला और विनम्र होते जाना चाहिये। हमने धर्म के मंच पर इसे आराधना और आचरण नाम दे दिया है, व्यक्ति ने व्यवहार के मंच पर इसे बड़प्पन कह दिया है; नम्रता होना कह दिया है, लचीलापन कह दिया है; इसीलिए हम कई बार कई कथाओं में भी यह पाते हैं (वर्तमान संदर्भ आप छोड़ भी दें) कि ऋषि-मुनियों को बहुत गुस्सा आ गया और उन्होंने किसी को विनाश का शाप दे दिया। मैं कोई विद्वान् नहीं हूँ पर मुझे लगता है कि ऋषि होना, साधना में अपने-आपको पारंगत कर लेना, और फिर किसी को विनाश का शाप देना—ये दोनों बातें साथ-साथ नहीं जातीं।

जो बेहतर श्रावक बनने में मददगार हो सकता है वह आचरण यह है कि आदमी अपने संदर्भों में जिस वातावरण में वह रहता है उसके बीच अपने-आपको बेहतर बनाने की कोशिश करे। मेरा मानना है कि एक बेहतर मानव होना ही एक बेहतर श्रावक होना है। मानव-मूल्य इतने जटिल नहीं हैं कि व्यक्ति उन्हें जान भी न पाये। जैसे अहिंसा, धर्म की कट्टरता नहीं है; वह चरित्र है। वह एक महत्त्वपूर्ण चारित्रिक मूल्य है, जिसे व्यवहार में अपनाना आवश्यक है। कुछ लोग हैं, जो मानते हैं कि जैनी अपने धर्म को इतनी कट्टरता तक ले गये हैं कि ज़मीन पर चल रहे हैं, तो चींटी भी नहीं मरनी चाहिये। तकलीफ में सो रहे हों; तो भी मच्छर मारने की दवा नहीं छिड़कनी/लगानी चाहिये। ठीक है यह, कि हमारी मंशा मारने की नहीं है; लेकिन जिस ज़मीन पर से आप चल रहे हैं, उस पर अगर कोई रास्ता ही नहीं है, तो सावधानी रखते हुए जाना होगा; आप इतना कर सकते हैं कि आपकी वजह से कम-से-कम जीवों की हानि हो। अगर आप अहिंसा को मानते हैं, तो यह आचरण हुआ। जहाँ तक वर्तमान संदर्भों का सवाल है, अब इलेक्ट्रॉनिक्स के इस युग के बाद तो किसी भी किस्म का गुस्सैल आचरण विज्ञान सहन नहीं कर सकेगा। अभी यह व्यंग्य लग सकता है,

किन्तु अगर आप अपने कम्प्यूटर (संगणक) के साथ गुस्से की या ताकत की आजमाइश करने लगे, तो वह काम करने से इनकार कर देगा ।

विज्ञान गुस्सा नहीं करता । मनुष्य ही अपने गुस्से को विज्ञान के माध्यम से दुनिया पर बरसाने की कोशिश करता है, और सिर्फ इसलिए आचरण की शुद्धता की आवश्यकता है। विज्ञान को हमने आज इस सीमा तक पहुँचा दिया है कि अगर हमने अपना गुस्सा विज्ञान के माध्यम से प्रकट करने की कोशिश की, तो हम अपना ही विनाश कर बैठेंगे ।

जैसा कि मैंने कहा था कि विज्ञान में भी आचरण का कौशल है और श्रावक में भी; किन्तु विचारणीय मुद्दा यह है कि बेहतर श्रावक, बेहतर मानव बनने के लिए मनुष्य क्या करे ? हर आदमी जानता है कि अच्छाई किसमें है, और बुराई किसमें; किन्तु मुश्किल यह है कि वह अपने स्वयं के मिजाज पर नियंत्रण पाने में असमर्थ है, इसलिए जिसे वह बुरा मान रहा है उसे भी कर बैठता है और बाद में या तो पछताता है कि उसने ऐसा क्यों किया, या फिर अपनी अकड़ में उस बात के निर्वाह में और अधिक बुरा करता जाता है; यहीं उसकी परिपक्वता की परीक्षा होती है ।

शरयू बहिन का अनुभव मेरी तुलना में (धर्म और दुनिया दोनों दृष्टियों से) अधिक व्यापक है, मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि क्या दुनिया में आचरण को सहज और सरल रखना सचमुच कठिन है ?

श्रीमती सौ. शरयू दफ्तरी : कठिन तो है । मैं सहमत हूँ । मेरा जो थोड़ा-सा अनुभव है उस पर से यह लगता है कि एक फिलाँसफी ऑफ लाइफ (जीवन-दर्शन) होती है कि हम कहाँ से आये हैं, कहाँ जाएँगे आदि । हर धर्म में ऐसा जीवन-दर्शन होता है, उसके साथ एक आचार, या आचार-संहिता भी होती है । वैसे श्रावक तो जैन ही होते हैं; हर आदमी चाहे वह किसी भी धर्म का हो, उसका अपना जीवन-दर्शन होता है, भले ही फिर वह उसमें गहरा जाए, लेकिन वे ऑफ लाइफ (जीने-का-तरीका) होता है, उस पर बचपन से संस्कार किये जाते हैं और प्रायः वे सारे धर्म से जुड़े होते हैं ; जैसे, जब किसी जैन परिवार में बच्चा पैदा होता है, तो फौरन अहिंसा के संस्कार उस पर हो जाते हैं ।

आपने आचरण की बात कही, उसे मानवतावादी होना चाहिये । फर्क इतना ही पड़ता है कि कोई 'मानव' तक ही रुक जाता है और कोई उसके आगे भी बढ़ जाता है; जैसे, पशु-पक्षियों को ही लें, उनमें भी जीव है; उनकी हत्या नहीं करनी चाहिये । मैं अभयजी के साथ सहमत हूँ । जब हम गाड़ी (मोटर) से चलते हैं, तो हम चींटियों को कैसे बचा सकते हैं ? हमारा इरादा तो नहीं है चींटियों आदि के मारने का इसके बावजूद हम गाड़ी में बैठना नहीं छोड़ सकते । मन में

यह भाव होते हैं कि हमने बहुत हिंसा की। जब हम पैदल चलते हैं, तो इसका ध्यान जरूर रखते हैं; लेकिन मोटर गाड़ी में बैठने में उस वक्त जो परोक्ष हिंसा होती है, उससे बचना असंभव है; हाँ, सावधानी जरूर बरती जा सकती है। मैं तो कहती हूँ, जैसे, मुनियों को ईर्यापथ व्रत है; वैसे ही हम भी अपने आचरण में उसे प्रकट कर सकते हैं।

दूसरी बात : मैं तो स्त्री हूँ। घर में/रसोईघर में काक्रोचेज (तिलचट्टे) होते हैं। मन में तो यह भाव रहता ही है कि उन्हें नहीं मारना है। मैं अपने नौकरों को भी सिखाती हूँ कि मारो मत; यानी हिंसा कम-से-कम हो इसका ध्यान रखती हूँ।

हमारी जो संस्कृति है, वह प्रिवेन्टिव्ह (रक्षात्मक) है, क्यूरेटिव्ह (उपचारात्मक) नहीं है। कुछ होने के बाद इलाज करो, यह नहीं है; 'होने-ही-नहीं देना' है। टेलीविजन पर दिखाया जाता है कि अमुक कीट, या कीटाणु हो गये हैं, तो 'स्प्रे' (छिड़काव) करके मारो। हमारा लक्ष्य यह है कि वे पैदा ही न हों। इसके लिए श्रावकाचार में जो 'शुद्धि' का निर्देश है कि खान-पान में हाथ यदि चिकने, या सने हों तो फौरन धो लो; वह महत्त्वपूर्ण है। एक छोटा-सा उदाहरण है खुद का; बताती हूँ; क्योंकि मैं उसे आचरण में लायी हूँ, सब ला सकते हैं। पहले मैं रसोई खुद करती थी, लेकिन अब सार्वजनिक कार्य का व्याप (विस्तार) होने से रसोईया रखा है। मैंने हर एक चीज के बाद हाथ धोने की उसकी आदत डाल दी है। आटा लिया, तो डिब्बे को साफ कर दो, फिर हाथ धो कर दूसरे काम में लगे। क्यों? लेते समय जो आटा डिब्बे को लग जाता है, उसे खाने के लिए जो कीट या कीटाणु पैदा हो सकते हैं, उन्हें खाने के लिए छोड़ो ही क्यों? इतनी सारी चीजें हैं, या न भी हों, उन्हें हम इस्तेमाल करते हैं। हर दिन उपयोग में लाते हैं, तो उनका सफाई से उपयोग जरूरी होता है। भले ही हम अपने घरों में स्प्रे (छिड़काव) करें, लेकिन कीट, या कीटाणु मरते नहीं हैं। जो 'स्प्रे' हम करते हैं, वह क्यूरेटिव्ह तरीके से करते हैं कि वे मर जाएँ; हमारा लक्ष्य, होना चाहिये कि वे पैदा ही न हों।

मैं इसे अप्लाइड रिसर्च (प्रायोगिक शोध) कहती हूँ। आपने जिस विज्ञान की बात कही, वह प्योर रिसर्च (शुद्ध शोध) है, जो शास्त्रों में है और अपने घरों में हम जिसका प्रयोग कर रहे हैं, वह अप्लाइड साइन्स (प्रायोगिक विज्ञान) है। प्रयोग द्वारा अपेक्षित विकास कर पाने से वह शास्त्रों तक ही सीमित रह गया, या फिर हम अन्धश्रद्धा से जो भी करते हैं, वैज्ञानिक तरीकों के बिना करते हैं, तो बच्चे उसे मानने को तैयार नहीं हैं। जब दो-तीन साल पहले मैंने कन्द-मूल खाना छोड़ दिया, तो मेरे बच्चों ने पूछा कि आपने ऐसा क्यों किया? इन्हें खाने में क्या बुराई है? शाकाहार तो वह है, फिर आपने क्यों छोड़ दिया? मैं एकदम

जवाब नहीं दे पायी, इतना ही कहा कि देखो, वह शास्त्र आज प्राप्त नहीं है; लेकिन जैनधर्म के जो और शास्त्र प्राप्त हैं, उन पर से यह कहा जा सकता है कि जैनधर्म अत्यन्त वैज्ञानिक धर्म है। मैंने श्रद्धा-के-कारण छोड़ा है। मेरी बेटी कविता जब इंग्लैंड में पढ़ती थी, तब वहाँ उसने अपने केमिस्ट्री (रसायन-शास्त्र) के प्रोफेसर से कन्द-मूल के बारे में चर्चा की; उन्होंने उसे बताया कि कन्द-मूल तामसिक होते हैं। अगर हमें अपना रहन-सहन और खान-पान शुद्ध रखना है, तो हमें सात्त्विक पदार्थ ही खाने हैं, तामसिक नहीं खा सकते। शास्त्रों में तो इस तरह कुछ उपलब्ध नहीं है, अतः यह विज्ञान की बात हुई; तथापि उसके लिए हमारे मन में श्रद्धा होनी चाहिये; तभी हम अपने जीवन को ऊँचा उठा सकते हैं।

श्रावक का सात्त्विक होना जरूरी है ऐसा मैं सोचती हूँ; लेकिन शाकाहार सबमें जरूरी है। इसमें हम जघन्य, मध्यम, उत्तम ऐसे भेद कर सकते हैं। एक छोटा-सा उदाहरण देती हूँ; कहा है—दाल और दही को साथ-साथ मत खाओ। मेरा अपना अनुभव है कि भोजन के बाद जब भी मैं दही या छाछ लेती हूँ और ऊपर से पापड़ खाती हूँ, तो नींद आती-ही-आती है (हँसी)। जिस दिन ऐसा नहीं करती, नींद नहीं आती। इस पर मैंने बहुत सोचा, तो देखा कि उदर में उसका फरमेंटेशन (सड़ाव) हो जाता है। फरमेंटेशन होने की वजह से फिर उसकी तामसिकता शुरू हो जाती है और सघन नींद आती है। दो-चार दिन लगातार खाने के बाद उसकी बराबर खूब इच्छा होती है कि यह खाना है; खाना ही है। जैसे दो-चार बार मद्य-सेवन करो तो वैसी प्रबल इच्छा (तलब) हो जाती है। द्विदल के साथ दही खाने को मना किया है, तो नहीं खाना चाहिये, इसमें श्रद्धा पहले आ गयी; फिर सवाल आया। गुड़ और दही की बात है। गुड़ में तो भारी फरमेंटेशन हो जाता है। वे तो कहते हैं कि चीनी के बदले में गुड़ खाओ, वह बड़ा अच्छा है, पौष्टिक है; लेकिन दही में मिला कर खाने से फरमेंटेशन हो जाता है, ऐसे जैसे दारू ही पी है। यह सब वैज्ञानिक है और इस पर अमल करना चाहिये। मैं तो यही कहूँगी कि लड़कियों के लिए होम-साइन्स (गृह-विज्ञान) का जो कोर्स है, उसमें फूड टेक्नॉलॉजी पर हमें ज्यादा ध्यान देना चाहिये। मैं बार-बार कहती हूँ कि प्यार रिसर्च को अप्लाइड रिसर्च (फोल्ड) में लाना है। जो शास्त्रों में लिखा है, उसे हमें घर-घर में बताना है, आचरण में लाना है, इस पर अमल करना है। बिना खोज किये हमें कोई जवाब नहीं मिलेगा, इसलिए इस ओर ध्यान देना बहुत जरूरी है।

पाटोदीजी बड़े हैं, आगे यदि वे प्रकाश डालेंगे तो अच्छा होगा; मैं तो इस क्षेत्र में अभी नयी हूँ।

अभय छजलानी : शरयू बहिन ने जहाँ से छोड़ा उसे आगे बढ़ाते हुए कहना चाहूँगा कि जैसा अभी उन्होंने कहा कि जो थियरी (सिद्धान्त) है, उसे जब तक

हम आचरण में नहीं बदलेंगे तब तक उसके प्रति लोगों में श्रद्धा नहीं बनेगी । इस संदर्भ में मैं यह भी जानना चाहूँगा कि क्या ऐसे समय जबकि जैनधर्म के फैलाव और विकास की इतनी चर्चा हम कर रहे हैं, समाज में कार्यरत संगठन और संस्थाएँ इस चुनौती को स्वीकार करेंगी कि जो हमारे शास्त्रीय सिद्धान्त हैं आचार-विचार और खान-पान के बारे में उनके विषय में कोई अनुसंधान संस्थान खड़ा किया जाए, जो विज्ञान के तल पर यह सिद्ध करे कि हमारी धार्मिक मान्यताएँ युक्ति-युक्त/सकारण हैं ?

बाबूलाल पाटोदी : मैं पूर्णतया सहमत हूँ। यह करना ही होगा। इसके बिना चल नहीं सकता। शास्त्रों में लिखा है कि 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'। मोक्षमार्ग तो उन्होंने बता दिया कि सही श्रद्धा, सही ज्ञान और सही चरित्र ये तीनों मिल कर मोक्ष-मार्ग हैं, पर उस मार्ग पर चलें तो ? बिना चले, बिना चरित्र में पालन किये, बिना अनुभव किये, पढ़ लेने मात्र से, कुछ हो नहीं सकता। हमारी हालत आज यही है।

१२ वीं शताब्दी तक श्रावक उसे कहते थे, जो पाँच अणुव्रतों का पालन करता था और मद्य-मांस-मधु को छोड़ता था। अब जमाने ने करवट ली है अष्टमूल-गुण बदल कर हो गये : तीन मकार (मद्य-मांस-मधु) और पंच उदम्बरफलों (बड़, पीपल, गुलर, पाकर, कठूमर) का त्याग। एक जमाना तो यह था कि जब श्रावक के संबन्ध में यह निश्चित रूप से कहा जाता था कि 'लोकातिपात भोजन'—जब तक सूर्य रहे, तब तक भोजन करना चाहिये। आज हम देखते हैं कि श्रावकों में ८० टका (प्रतिशत) ऐसे हैं (अधिक ही होंगे) जो रात को भोजन करते हैं।

हमें इस परिप्रेक्ष्य में भी सोचना होगा कि क्या हम पुरानी बातों को ही दोते रहें और अन्त में एक भी श्रावक न बचे या नये परिप्रेक्ष्य में सोचें; लेकिन इन सबके पीछे भुझे एक ही रहस्य छुपा लगता है कि जहाँ चौके की शुद्धि होगी, जिस घर में चौका पवित्र होगा, उसका जीवन और उसका आचरण सहज ही पवित्र होगा। चौके में यदि एक बार अण्डा आ गया, एक बार मछली आ गयी, एक बार शराब की बोतल आ गयी, तो समझिये वह परिवार, वह घर बर्बाद होने वाला है। मेरे मन में इस बारे में कोई शंका नहीं है। कुछ दिनों के लिए उस घर/परिवार के लोग भोज-शौक कर सकते हैं, किन्तु यह स्पष्ट है कि सम्पत्ति न सदा किसी के पास रही है, न कभी रहेगी। जब वह रहने वाली नहीं है, तब फिर इसे ले कर विकृत और चिन्तित क्यों हों हम ? जिन्हें हम व्यसन कहते हैं, वे कब लगते हैं, जब चौका शुद्ध नहीं होता। चौका अशुद्ध हुआ, तो फिर उसके बाद जुआँ खेलना, मांस खाना, वेश्यागमन करना, चोरी करना, परस्त्री सेवन करना—ये सारी बुराइयाँ आपो-आप चली आती हैं; इसलिए मुख्यतः चरित्र हमें लाना है; बच्चों में तो सुसंस्कार डालना ही है।

आपने सवाल किया कि हमारे जो सामाजिक संगठन हैं, उन्होंने इस विषय में क्या किया; या उन्हें क्या करना चाहिये? बहुत मोटी बातें हैं कि हमें छान कर पानी पीना चाहिये, शाकाहारी भोजन करना चाहिये, इतना गरिष्ठ भोजन नहीं करना चाहिये कि जिससे व्यसन की तरफ प्रवृत्ति हो। चारित्रिक दृष्टि से कहा गया है कि घर-गृहस्थी का काम भी देख/शोध कर करें। चलें, बैठें, या जो भी काम करें, सावधानी से करें; लेकिन आज इसमें स्पष्ट विरोध दिखायी पड़ रहा है, मन्दिर में हमारा धर्म अलग है, और जब हम दुकान पर हैं, तो हमारा धर्म अलग है। वहाँ हमारे तौलने के बाँट अलग हैं; बेशी हैं लेने के और कम हैं बेचने के। इस तरह जब तक हम कम-ज्यादा बाँट करेंगे, तब तक स्वाभाविक रूप से बच्चों पर/युवकों पर अच्छा असर नहीं होगा। एक भोटा उदाहरण है, यदि बाप सिगरेट पीता है और बेटे को पीने से मना करता है, तो बेटा बाप की बात कभी मानने वाला नहीं है; इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि यदि हमें सारे संसार को अहिंसानिष्ठ बनाना है, जिसकी हम रोज-रोज जय बोल रहे हैं, तो उसके लिए हमें अपने घर में-से ही क्रान्ति शुरू करनी होगी। घर से क्रान्ति कैसे शुरू होगी? आज मूसीबत यह है कि भगवान् महावीर के हम जितने अनुयायी हैं, वे सब भी एक झण्डे-के-नीचे नहीं हैं, हम विभिन्न विचार के हैं, हमारी पूजन-पद्धतियाँ अलग-अलग हो सकती हैं, मान्यताएँ भी अलग-अलग हो सकती हैं, कर्मकाण्ड की पद्धतियाँ अलग-अलग हो सकती हैं; लेकिन धर्म तो मूल में एक ही है न? हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह का त्याग करना—इसमें तो कोई पन्थ-भेद नहीं है? इन बातों को ले कर दरअसल यदि हम अनुसंधान नहीं करेंगे, विचार नहीं करेंगे, बच्चों को यह शिक्षा नहीं देंगे कि जो वे कहें, वैसा जीवन में चरितार्थ करें, तो घर, परिवार और समाज में अनुकूल वातावरण नहीं बन सकेगा। यदि हम सदाचारपूर्वक व्यवहार नहीं करेंगे, यदि हम खुद कालाबाजारी करेंगे, यदि हम खुद मिलावट करेंगे, और कहेंगे कि यह व्यापार है, तो मैं साफ-साफ कहता हूँ कि आगे/अब यह चलने वाला नहीं है।

मोटे तौर पर धर्म को जीवन से जोड़ना होगा। हमारा धर्म और आचरण दोनों एक होने चाहिये। मैं ऐसा मानता हूँ कि यदि हमने चौंके की शुद्धि की तरफ ध्यान नहीं दिया, तो मान कर चलिये कि बड़ी तेजी से जैन घर बिगड़ते जाएँगे। आज जितनी होटलें खुल रही हैं, उनमें शाकाहारी कम और सामिष अधिक हैं। वे खुलती जा रही हैं, और हमारे बच्चे बहुत प्रेम और उत्साह के साथ वहाँ जा रहे हैं। आजकल तो लड़के यहाँ तक कहने लगे हैं, आप लॉग तो घासफूस खाते हैं; यानी घासफूस खाने वाले (शाकाहारी) व्यक्ति को आज समाज में उपेक्षित दृष्टि से देखा जाता है।

इसके विपरीत विदेशों से लोग हमारे यहाँ आ रहे हैं, और कह रहे हैं कि हम भारत आये हैं, एक सुसांस्कृतिक देश में; कम-से-कम यहाँ तो हम मांस नहीं खायेंगे, शराब नहीं पीयेंगे। इसकी ताजा मिसाल हमारे सामने है, पश्चिमी जर्मनी से भारत-दर्शन के लिए आये उन १३ युवा अतिथियों की, जिन्होंने ग्वालियर में दिये गये भोज में थोड़ा भी मांसाहार लेने से साफ इनकार कर दिया। जब उनकी नज़र शराब की खुली बॉतलों की ओर गयी, तो वे इधर-उधर होने लगे। उनमें-से एक भाई ने कहा कि हम लोगों ने जर्मनी छोड़ने से पहले ही तय कर लिया था कि भारत-यात्रा में कहीं शराब नहीं पीयेंगे। इससे हमें बहुत लाभ हुआ है। हममें से कुछ ने तो हमेशा के लिए शराब छोड़ दी है। मांसाहार और शराब छोड़ कर विदेशी मानते हैं कि वे भारतीय संस्कृति का सम्मान कर रहे हैं। चीनी यात्री फाह्यान ने भी लिखा है कि सिर्फ हिन्दुस्तान ही एक ऐसा देश है, विशेष रूप से मालवा, जहाँ कोई न मांस खाता है, न शराब पीता है, और न शहद का सेवन करता है।

हमारी यह शस्य-श्यामला भूमि सदैव से पवित्र/पावन रही है; यदि हमें इसे पुनः उस स्थिति में लाना है, तो शाकाहार की दिशा में ठोस कदम उठाने होंगे। हम चाहे 'समयसार' पर अनुसंधान कर लें, या आत्मा पर; लेकिन जब तक हम अपने जीवन का अहिंसा-मूलक नहीं बनायेंगे; यानी जब तक हमारे जीवन में अहिंसा चरितार्थ नहीं होगी, तब तक धर्म की ऊँची-ऊँची बातें करना निरर्थक होगा। धर्म के बलबूते पर ही हमारी संस्कृति आज जिन्दा है। भगवान् महावीर के युग से आज तक हम जिन्दा हैं, मिटे नहीं हैं, कारण कि हमारी संस्कृति के बीज हममें मौजूद हैं। हमारे घर में जब बच्चा डेढ़ महीने का होता था, तब उसे मन्दिर ले जाते थे, उसे 'णमोकार मन्त्र' सुनाते थे और कहते थे कि देख, तू आज से जैन हो गया है। तुझे मद्य-मांस-मधु और पाँच उदम्बर फल का त्याग है। जन्मघुटी में उसे अहिंसक संस्कृति का रस हम पिलाते थे। आज मुसीबत यह है, पैदा होने के साथ/बाद उसे ब्रांडी पिलाते हैं।

श्रीमती शरयू दफतरी : एक बात मैं कहूँ। हमारी बेटी को बेटा हुआ, तो ४० वें दिन हमने भी वैसा ही किया था, जैसा अभी पाटोदीजी ने बताया है। मुझे लगता है कि हमें अपनी संस्कृति का अभिमान होना चाहिये; दंभ नहीं। अभिमान इस बात का कि हम अहिंसा के जिस तत्त्व को मानते हैं, वह बहुत ऊँचा है। इसके लिए हमारे मन में यदि अभिमान है, तो दूसरे चाहे जो कहें, हमें नीचा देखने की ज़रूरत नहीं है। वास्तव में हमें अपनी अहिंसक संस्कृति और स्वस्थ परम्पराओं पर गर्व होना चाहिये।

एक उदाहरण मैं देती हूँ। जब मैं इण्डियन चेम्बर्स ऑफ कॉमर्स की प्रेसिडेंट थी, तब मुझे बहुत बार सुबह का, शाम का खाना देना पड़ता था। मैं

ताजमहल होटल, बम्बई में ज्यादातर खाना देती थी। मांसाहार बिल्कुल नहीं देती थी : इतना ही नहीं, प्याज-लहसुन और कन्द-मूल भी नहीं देती थी। चेम्बर्स के सदस्यों ने कहा कि इसे आप घर समझती हैं क्या? आपको तो अपना फर्ज निभाना है। मैंने कहा : मैं खाना नहीं दूंगी, जिनको देना हो, वे दें। मैं अपने पैसे मांसाहार पर नहीं खर्चूंगी। मैंने अमेरिका के राजदूत श्री हेरी ब्रान्स को खाने पर बुलाया, तो मैंने उन्हें पहले ही कहा कि मैं तो शुद्ध शाकाहार दूंगी, प्याज-लहसुन और कन्द-मूल भी नहीं दूंगी; लेकिन मैंने आग्रहपूर्वक कहा कि आपको मेरे यहाँ खाने पर तो आना ही है। उन्होंने स्वीकार किया; साथ-साथ यह भी कहा कि मेरी पत्नी तो शाकाहारी ही है; उसे परेशानी होती है, जब हम और कहीं खाने पर जाते हैं। वहाँ उसे खाने को नहीं मिलता। वे दोनों बहुत आनन्दपूर्वक आये। इसी तरह मैंने २५० लोगों को, जिनमें ज्यादातर उद्योगपति थे, खाने पर बुलाया, उन्हें भी शाकाहार दिया। ताजमहल होटल (बम्बई) का जो मुख्य रसोइया है, उसे दस हजार रुपये पगार मिलती है। शाकाहारी भोजन बनाना उसे नहीं आता था। मैंने उसे शाकाहारी भोजन बनाना और परोसना सिखाया। अब वहाँ 'जैन खाना' कहने पर शाकाहार सुलभ है। नीदरलैण्ड के राजपुत्र आये थे, उनके साथ खाना था; उन्हें भी ऐसा ही खाना दिया। दिल्ली से फोन आया कि चौदह एम्बेसेडर (राजदूत) बम्बई पहुँच रहे हैं, उन्हें खाना देना है। मैंने कहा : वेजिटेरियन (शाकाहारी) दूंगी। उत्तर था : ठीक है, जो देना हो, दें। उनमें अफ्रीकी थे, जर्मनी थे। होटल में आइसक्रीम में हनी (शहद) डाल कर देते थे; मैंने कहा : हनी वाला (शहद) आइसक्रीम हमें नहीं चाहिये। शुद्ध आइसक्रीम चाहिये। मुझसे पूछा गया : आप हनी (शहद) क्यों नहीं खाती हैं, उसके खाने से क्या फर्क पड़ता है? मैंने कहा कि दूसरे का फल (रस) हम खायें, वह उचित नहीं लगता और दूसरी बात यह भी तो है कि हनी तो मधुमक्खी का जूठन है। हम जूठा कैसे खा सकते हैं? मेरी इस टिप्पणी पर चौदह-के-चौदह राजदूत हँस पड़े; लेकिन उनमें-से दो ने तो उसी वक्त तय कर लिया कि वे भविष्य में हनी (शहद) नहीं खायेंगे।

आशय यह है कि सबसे पहले हमें अपने मन में विश्वास होना चाहिये कि जो हम कर रहे हैं, वह उचित कर रहे हैं। हममें जब इनफीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स (हीनता की भाव-ग्रन्थि) आ जाता है, तब फिर हम कुछ नहीं कर पाते। मेरे घर खाने पर कितने ही लोग नहीं आते, क्योंकि मैं उन्हें ऐसा-वैसा खाने को नहीं दे सकती। मैं कहती हूँ : 'ठीक है, नुकसान आपका है, मेरा नहीं है'।

बाबूलाल पाटोदी : मैं ऐसा मानता हूँ, दरअसल इस वर्ष की उपलब्धि में हम शहरों में कुछ और नहीं करें, तो कम-से-कम वेजिटेरियन फाउण्डेशन अवश्य शुरू करें, जहाँ शाकाहार से होने वाले फायदों को प्रदर्शित किया जा सके, बताया जा सके। आजकल शाकाहार-संबन्धी साहित्य खूब प्रकाशित हो रहा है, जिसमें शाकाहार

से होने वाले फायदे, उसे बनाने की विधि, उससे मिलने वाले पोषण-तत्त्वों (विटामिन्स, प्रोटीन्स) के विषय में बताया जाता है ।

इस सिलसिले में एक बात बता रहा हूँ, वैष्णव विद्यालय, इन्दौर में हमें होम साइन्स (गृह-विज्ञान) की कक्षाएँ शुरू करनी थीं । उसमें आमलेट किस तरह बनाना, एगज (अंडे) का किस तरह उपयोग करना आदि सिखाया जाता है । मैं स्कूल चलाता हूँ, इसलिए मुझे मालूम है । हमने इसका विरोध किया कि हम गृह-विज्ञान की कक्षाओं में यह नहीं सिखायेंगे; तो शिक्षा-विभाग ने हमारी सम्बद्धता अमान्य कर दी ।

अभय छजलानी : हम, जो अघेड़ उम्र के हैं, पर यह दायित्व है कि हम जो युवक, या किशोर हैं, उन तक जैनधर्म के सिद्धान्तों, या जैन शास्त्रों-में जो बातें हैं, उन्हें वैज्ञानिक शैली में पहुँचायें । जैनधर्म यदि यह कहता है कि सूर्यास्त-से-पहले भोजन करें, तो वह धार्मिक कट्टरता हो जाती है और जब एक डॉक्टर इसी बात को कहता है कि सूर्यास्त-से-पहले भोजन करने से मेटाबॉलिज्म (उपापचय) अच्छा रहता है, हाजमा अच्छा रहता है, तो उसे मान लिया जाता है । हम आज अपने बच्चों को इतना भी नहीं बता सकते हैं कि पलथी मार कर बैठने के क्या फायदे हैं और पाँव पसार कर क्यों नहीं बैठना चाहिये? हम इसे संस्कार के साथ जोड़ते हैं कि बड़ों के सामने उन्हें लम्बे पाँव करके नहीं बैठना चाहिये । दूसरी ओर पद्मासन में बैठने की बात जब योग-का-शिक्षक बताता है कि ऐसा करने से जाँघें पतली होंगी, पाँव पतले होंगे, साँस ठीक से चलेगी, तब उसकी बात तुरन्त मान ली जाती है । जब आप पद्मासन में बैठते हैं, तब आपका अँगूठा और आपकी कनिष्ठा अँगुली (इंडेक्स फिंगर) जुड़ी रहती है । ऐसा क्यों है? हमें इसके फायदे मालूम नहीं हैं; किन्तु यह वैज्ञानिक है । फोटोग्राफी के माध्यम से यह सिद्ध हो चुका है कि व्यक्ति की दो अँगुलियों—अँगूठे से और कनिष्ठा से—और पाँव के अँगूठे से ऊर्जा शरीर से बाहर की ओर आती है; वह बाहर न जाए; और हमारे शरीर में ही घूम जाए, इसलिए हम दोनों अँगुलियों को जोड़ कर पद्मासन में बैठते हैं । जब हम आज के बच्चे को यह बतलाते हैं, तब उसे इस बात का विश्वास हो जाता है । केवल आपने कह दिया कि ऐसा करो तो वह इसे स्वीकार करने वाला नहीं है । वह तर्क करेगा, और यदि हम अच्छे श्रावक चाहते हैं, तो हमें अपने धर्म की तमाम अनिवार्यताओं को वैज्ञानिक तर्क के साथ स्थापित करना होगा, तभी कोई बालक या किशोर उसे स्वीकार करेगा ।

परिचर्चा का प्रवर्तन करते हुए कह गया था कि हमें कोई श्रावकाचार नये सिरे से लिख डालना चाहिये । मेरा अभिमत है कि श्रावक के आचरण के बारे में हमारा प्रासंगिक/समसामयिक होना आवश्यक है और विज्ञान-की-शोधों के बाद तो यह और भी जरूरी हो गया है ।

नेमीचन्द्र जैन : पण्डितजी, परिचर्चा के दौरान आपने इतना सब सुना है, अब आप अपने विचार दीजिये ।

पं. फूलचन्द्र शास्त्री : एक श्लोक द्वारा मैं अपनी बात स्पष्ट करता हूँ । इसमें बताया या है कि श्रावकाचार-धर्म का आचरण कौन करे; कैसे करे ?

न्यायोपात्तधनो यजन् गुणगुरून् सद्गोस्त्रिबर्ग भज-
न्नन्योन्यान् गुणं तदर्हंगृहिणी स्थानालयो ह्यमयः ।
युक्ताहार विहार आर्य समितिः प्रज्ञाः कृतज्ञो वशी
शृण्वन् धर्मविधिं दयालुरधर्मोः सागारधर्मं चरेत् ॥११॥

—सागर धर्मामृत

सागर धर्म का आचरण करने वाले गृहस्थ का लक्षण है कि वह न्यायपूर्वक धन कमाने वाला, गुणी, गुरुजनों और गुणों से महान् गुरुओं को पूजने वाला, आदर, सत्कार करने वाला, परनिन्दा, कठोरता, आदि-सै-रहित प्रशस्त वाणी बोलने वाला, परस्पर एक-दूसरे को हानि न पहुँचाते हुए धर्म, अर्थ और काम का सेवन करने वाला; धर्म, अर्थ और काम सेवन योग्य पत्नी, गाँव, नगर और मकान वाला, लज्जाशील, शास्त्रानुसार खान-पान और गमनागमन करने वाला, सदाचारी पुरुषों की संगति करने वाला, विचारशील पर के द्वारा किये गये उपकार को मानने वाला, जितेन्द्रिय, धर्म की विधि को प्रतिदिन सुनने वाला, दयालु और पापभीरु धर्म के परिपालन में समर्थ होता है ।

इस सन्दर्भ में मैं यह बात जोर दे कर कहना चाहता हूँ कि मैं 'मन्दिर' को 'क्लब' मानता हूँ । मन्दिर आज का क्लब है; वह सोसायटी का ऐसा स्थान है, जहाँ हम बहुत-सी चीजें सीख सकते हैं और दूसरों को सिखा सकते हैं । उसकी अपेक्षा ही आज हमें बर्बाद कर रही है । यदि उसकी अपेक्षा को हम पुनरुज्जीवित कर लें, तो हम सदाचारी बने रह सकते हैं; श्रावक-के-आचार को उससे पोषण और सम्बल प्राप्त हो सकता है ।

ऐसा नहीं समझना चाहिये कि शास्त्रों में कुछ नहीं है । शास्त्रों में हमारे अनुभवी पुरखों के विचार संकलित हैं । आप भले ही उनकी व्याख्या/मीमांसा आज के अनुरूप करें; यह दूसरी बात है ।

संक्षेप में, जो व्यक्ति अपने चलने, बोलने, उठने, बैठने, खाने-पीने, सोने आदि की सभी प्रवृत्तियों को सावधानी से करता है, वह सदाचारी श्रावक बन सकता है । उसीका जीवन सार्थक/सफल हो सकता है ।

नेमीचन्द्र जैन : परिचर्चा के समापन से पूर्व आप सबसे निवेदन है कि आप अपने विचार निष्कर्ष-रूप में दें ।

अभय छजलानी : पाटोदीजी ने बताया कि इस वर्ष हम ऐसी योजना कर सकते हैं कि किस तरह शाकाहारी आचरण और शाकाहारी भोजन यानी शाकाहारी जीवन-शैली स्थापित करें? इस विचार के प्रसार के लिए वैज्ञानिक आधार पर कोई केन्द्र या इकाई की स्थापना पर भी विचार किया जाना चाहिये ।

मैं तो इस मत का हूँ कि किशोर, या युवा उम्र के लोगों को सिखाने की अपेक्षा अघेड़ उम्र के लोगों को भी शिक्षित किया जाए; वे फिर बच्चों को धर्म के व्यवहार-पक्ष का ज्ञान दें । हमारे यहाँ जो साधु समाज की स्थापना की गयी थी, वह इन्हीं बातों को क्रियान्वित करने के लिए थी । कड़ियाँ (लिक्स) टूटती चली गयीं और सबकुछ बिखरता गया । अब यदि इस लिक को पुनः शुरू करना है, तो जहाँ जिस तरह के कार्यकर्ता उपलब्ध हों, वहाँ उस कड़ी को पुनः जोड़ा जा सकता है, उस काम को फिर से शुरू किया जा सकता है ।

श्रीमती शरयू दफ्तरी : मैं तो कहूँगी कि महिलाओं को वैज्ञानिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये; यह काम शाम को कोई वर्ग (क्लास) रख कर या बच्चों के साथ उनकी छुट्टियों में रह कर संभव है । बाहुबली (कुंभाज) में यह होता है । वहाँ पन्द्रह दिनों के सेमिनार-जैसे शिविर रखते हैं । वह सब शाकाहार के बारे में तो नहीं होता; धर्म की पढ़ाई उनमें जरूर होती है । महिलाएँ आज बहुत उत्सुक हैं - जानने, पढ़ने, सीखने के लिए उनमें प्रचुर जिज्ञासा है ।

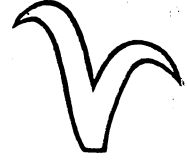
एलाचार्य मुनिश्री ने इस दिशा में प्रेरित किया है । उन्होंने धर्म की प्रभावना की है । मैं देख रही हूँ कि जो लोग धर्म के पास नहीं आते थे, अब 'हम जैन हैं' ऐसा कह कर गौरव के साथ आने लगे हैं । महाराजजी ने एक बार भी 'जैनधर्म की जय' नहीं कहा । वे तो हर-हमेश 'अहिंसा-धर्म, और विश्वधर्म की जय' कहते आये हैं । उन्होंने अहिंसा को विश्वधर्म निरूपित किया है । उसी का जय-घोष करते हुए वे सम्प्रदायातीत चित्त से धर्म की प्रभावना करते रहे हैं ।

मैं सोचती हूँ महिलाओं को वैज्ञानिक सूचनाएँ देना बहुत जरूरी है; क्योंकि स्कूलों में बच्चों को अंग्रेजी के माध्यम से सबकुछ सीखना होता है । इससे उनके जो संस्कार बन जाते हैं, तदनुसार कई बार वे ऐसे सवाल पूछ बैठते हैं, जो शाकाहारी समाज के बच्चों को नहीं पूछने चाहिये । ऐसी स्थिति में महिलाएँ ज्ञान-विज्ञान से लैस हो कर ही अपनी संस्कृति को कायम रख सकती हैं । उनके लिए अल्पकालीन (शार्ट टर्म) और दीर्घकालीन (लांग टर्म) पाठ्यक्रम (कोर्स) तैयार करने चाहिये । अल्पकालीन पाठ्यक्रम तो तुरन्त शुरू करना जरूरी है; दीर्घकालीन के लिए समय लग सकता है ।

मैं सहमत हूँ पूरी तरह से कि 'फूड टेक्नालॉजी डिपार्टमेंट' (खाद्य तकनीक विभाग) तो हर राज्य में हैं, लेकिन उसमें शाकाहार को जो महत्ता मिलनी चाहिये,

(शेष पृष्ठ ११२ पर)

शाकाहार : उत्तम क्यों ?



प्राचीनकाल के दृष्टाओं की सहज बुद्धि ने शाकाहार के सम्बन्ध में और मांस-भक्षण के खिलाफ जो तथ्य संसार के सामने पेश किये थे, विज्ञान आज उन्हींकी ताईव और तरफ़दारी कर रहा है।

—डॉ. रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर

जब शाकाहार के विषय में हम सोचते हैं, तब जल और हवा के बजाय खाद्य अर्थात् अन्न से ही हमारा मतलब होता है। इस विषय में आदमी क्या करता है? एक बात स्पष्ट है; तथाकथित सभ्य, अथवा अपने-आपको बुद्धिमान मानने वाला समाज प्राकृतिक मार्ग से काफी भटक गया है। प्रयोगों के दुश्चक्र में वह फँस गया है। इनसे उसे अपनी इन्द्रियों की क्षुधा-तृप्ति में भले ही मदद मिल जाती है, परन्तु मानसिक-बौद्धिक दृष्टि से वह कुछ खोता ही है।

तो अब हम सोचें कि खाद्यों-के-चुनाव-संबंधी इसी भटकाव में वह कहाँ तक बढ़ गया है?

प्राणियों में मनुष्य वानरों के वर्ग में आता है। 'रेसस' नामक वानर इसका निकटतम पूर्वज है। अब देखा जाए तो वानर एक शाकाहारी प्राणी है। फल-फूल, पत्ते उसकी खुराक हैं। शरीर-रचना की दृष्टि से देखते हैं तो मनुष्य के दाँतों की ओर आँतों की बनावट और रचना मांसाहारी प्राणियों-के-जैसी नहीं है, जो दूसरे प्राणियों/पशुओं को मार कर उनका मांस खाते हैं। मनुष्य के दाँत और उसकी आँतें शाकाहारी प्राणियों के-जैसी ही हैं।

शाकाहार के अपने प्रकृति-प्रदत्त स्वभाव से मनुष्य दो बातों में भटका है। आज मांस खाने वाले अधिकांश लोग शाकाहार के साथ मांस काफी अधिक मात्रा में ग्रहण करते हैं। यों शाकाहार पर जो लोग टिके हैं, वे भी दो गलतियों या कहिये दो पापों के भागीदार हैं। एक तो वे अपना अन्न आग पर पकाते हैं और दूसरे भोजन में अनेक प्रकार के मिर्च-मसालों का प्रयोग करते हैं। ये गलतियाँ तो मांसाहारी भी करते ही हैं।

मनुष्य प्रकृत्या शाकाहारी है। वह मांसाहारी कैसे बन गया, कैसे वह प्राणियों का शिकार करके उन्हें खाने लगा—यह एक लम्बा सवाल है। इस चर्चा को हम छोड़ दें। आज तो हम पोषण, किफायत, नीतिशास्त्र और मनोविकारों और विचारों

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/१०९

पर मनुष्य के आहार का क्या असर होता है; इस प्रश्न पर वैज्ञानिक पहलुओं से सोचना चाहते हैं।

आहार का युगों-पुराना एक धार्मिक पहलू भी अवश्य है—जैसे कि जैतों का। वे मानते हैं कि किसी भी प्रकार का कष्ट प्राणियों को पहुँचाना पाप है। उनका मत है—अहिंसा परमोधर्मः अर्थात् अहिंसा सबसे बड़ा धर्म, अतएव कर्तव्य भी है।

आज युग बदल गया है। पुराने जमाने में किसी बात की अगर पुष्टि करनी होती थी तो धर्म, या सन्तों के वचनों अथवा प्रतिष्ठित/आदृत पुरुषों के विचार का प्रमाण देना पड़ता था, परन्तु आज तो विज्ञान हर बात में हमारी मदद कर सकता है; उदाहरणार्थ, शराब या अन्य किसी नशे की बुराई समझानी हो तो नीति और धर्म शास्त्र की दुहाई देने की जब जरूरत नहीं रह गयी है। विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि ये चीजें मनुष्य के शरीर, मन और बुद्धि सबके लिए हानिकारक है; इसलिए मांसाहार के विषय में भी धर्म और नीतिशास्त्र की बात करना अब जरूरी नहीं रह गया है। मनुष्य और समाज के जीवन पर जो प्रत्यक्ष असर और अनुभव होता है वह प्रकट ही है।

भूत-दया की बात लीजिये। क्या यह उचित है कि मनुष्य अपना पेट भरने के लिए दूसरे प्राणियों का वध करे? धर्म और नीतिशास्त्र की बात छोड़िये, मनुष्य स्वयं एक प्राणी है। दया उसके अन्तःकरण में निवास करती है; अतः जब वह देखता है कि कोई किसी प्राणी की हत्या करता है, या उसे कष्ट पहुँचा रहा है तब उसके दिल में दया पैदा हो जाती है। वह दुःखी होता है। आज संसार के प्रायः सभी देशों में इस आशय के कानून बन गये हैं कि प्राणियों को दुःख नहीं पहुँचाया जाए—वध के समय बूचड़खानों में भी। मांस खाने वाले भी कहते हैं कि जानवर को मारते समय उसे दुःखी नहीं करें। यही नहीं, भीतर के इस दयाभाव के कारण कइयों ने मांस खाना भी छोड़ दिया है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की ही बात है। एक बार चिड़िया का एक बच्चा अपने घोंसले से नीचे गिर पड़ा और चोट के कारण तड़फड़ाने लगा। उसे देख कर ही गुरुदेव को मांसाहार छोड़ देने की प्रेरणा हुई।

शरीर के पोषण की दृष्टि से भी मनुष्य के लिए मांस खाना जरूरी नहीं है। सच तो यह है कि जो लोग मांस नहीं खाते—शाकाहारी हैं—वे कम नहीं, काफी स्वस्थ होते हैं। शारीरिक शक्ति, मन, बुद्धि आदि बातों में वे मांस खाने वालों से किसी प्रकार कम नहीं होते। मुख्यतः जैन, दक्षिण भारत के ब्राह्मण और वीर शैव संप्रदाय के लोग पूर्णतः शाकाहारी हैं। हाँ, इसके साथ वे गोरस, घी, दूध आदि अवश्य लेते हैं। और आमतौर पर जो लोग आदतन मांसभोगी हैं, उनके

समान ही वे स्वस्थ और शक्तिशाली हैं; उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है। बल्कि जहाँ लगातार अधिक समय तक काम करना होता है वहाँ वे दृढ़ता और सहन-शक्ति की दृष्टि से अधिक अच्छे सिद्ध हुए हैं।

फिर आर्थिक दृष्टि से भी शाकाहार पर अधिक बल और ध्यान देना जरूरी हो गया है। उदाहरण के लिए, यह कौन-सी बुद्धिमत्ता होगी कि मांस द्वारा प्राणिजन्म शक्ति-तत्त्व पाने की दृष्टि से पहले तो पशुओं को बरसों तक खिला-पिला कर मोटा बनायें फिर उन्हें ही मार कर खा जाएँ। और यह सब प्राणिजन्म शक्ति-तत्त्व के लिए; परन्तु ये तत्त्व तो मनुष्य को गोरस, दालों तथा सोयाबीन—जैसे बीनों से भी मिल सकते हैं। फिर यह मांस प्राप्त करने के लिए पशुओं को जिस ज़मीन पर चराया जाता है उतनी ज़मीन पर अच्छी खेती द्वारा यदि अनाज आदि पैदा किया जाए तो स्पष्ट ही उससे कहीं अधिक मनुष्यों का पोषण हो सकता है; और जब मन और अध्यात्म की दृष्टि से संचित हैं तब उसमें भी पाते हैं कि संसार के सभी देशों और सभी युगों के पुरुषों और स्त्रियों ने शाकाहार को ही सिद्धान्त और संयम की दृष्टि से पसंद किया है और उस पर अमल भी किया है। उपनिषद् स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मन और बुद्धि की शुद्धि में आहार का शुद्ध होना परम आवश्यक है। यह आहार शुद्ध, स्वच्छ, और हलका हो तथा उसकी प्राप्ति में किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचे।

पिछले दिनों डॉ. जान रोसमर भारत आये थे। वे इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ इंडीग्रल ह्यूमन साइंसेस, मॉन्ट्रील के अध्यक्ष हैं। बंगलौर में उन्होंने मुझे बताया कि वे स्वयं शाकाहारी हैं। मानसशास्त्र के वे विशेषज्ञ हैं और इस क्षेत्र के शोधकार्य में संलग्न हैं। उन्होंने कहा कि जब बूचड़खानों में पशुओं का वध किया जाता है तब जीवन और मृत्यु के संघर्ष के बीच वे अपने शरीर में कुछ हारमोन्स छोड़ जाते हैं, जो पूर्णतः दुःख-से-भरे होते हैं। इस मांस को जो भी खाता है, उसके शरीर पर इनका अवश्य ही असर पड़ता है, भले ही वह प्रत्यक्ष रूप में तत्काल न भी दिखायी दे; इसलिए समझदारी इसी में है कि ऐसा मांस हम नहीं खायें।

कौन बता सकता है कि विज्ञान ज्यों-ज्यों प्रगति करेगा, त्यों-त्यों अपनी यात्रा में मांस-भक्षण के खिलाफ और कितनी वैज्ञानिक सामग्री प्रस्तुत करने वाला है? प्राचीन काल के दृष्टांतों की सहज बुद्धि ने इस सम्बन्ध में जो तथ्य संसार के सामने पेश किये — विज्ञान आज उन्हीं की ताईद और तरफ़दारी कर रहा है। □□

(पृष्ठ १०८ का शेष)

वह प्राप्त नहीं है । शाकाहार के जघन्य, मध्यम और उत्तम जैसे प्रकार हो सकते हैं जिन पर हमारी संस्थाएँ अनुसंधान करें और तदनुसार प्राप्त निष्कर्षों का प्रचार-प्रसार करें ।

बाबूलाल पाटोदी : मुझे अन्त में तो यही कहना है कि इस वर्ष यदि हमें कुछ प्राप्त करना है, तो जैनधर्म की मोटी बातों के साथ-साथ हमें सबसे ज्यादा जोर शाकाहार पर देना चाहिये । चौका-शुद्धि और शाकाहार से संबंधित संस्थाएँ खुलनी चाहिये । ऐसी पुस्तकें सुलभ करवाना चाहिये, जिन्हें महिलाएँ, बच्चे, और प्रौढ़ आसानी से पढ़ सकें । अब हमें धर्म के साथ टेक्नॉलॉजी को जोड़ना चाहिये । मैं 'जैनधर्म' को सम्प्रदाय नहीं मानता; उसे एक स्वतंत्र जीवन-दर्शन मानता हूँ । जैनधर्म का मूल सिद्धान्त है अहिंसा, और अहिंसा का व्यावहारिक अर्थ है शाकाहार; अतः शाकाहार से होने वाले फायदों पर कुछ पुस्तकें लिखवानी चाहिये तथा लिखने वालों को पुरस्कार प्रदान करना चाहिये । कुछ ऐसी संस्थाएँ स्थापित की जानी चाहिये जो शाकाहार के प्रायोगिक/व्यावहारिक पक्ष का प्रदर्शन करें; शाकाहारी वस्तुओं/पदार्थों के निर्माण को प्रत्यक्ष बतायें । प्रत्यक्ष प्रदर्शन से स्पष्टता आ सकती है । यह तथ्य गौण है कि देश इतना बड़ा है, अतः शुरुआत कहाँ से करें? शुरुआत करनी चाहिये फिर जगह कोई भी हो । ऐसा होने पर ही ठोस परिणाम सामने आ सकते हैं ।

डॉ. नेमीचन्द्र जैन : निष्कर्ष हुए : बेहतर मानव ही बेहतर श्रावक है; आधुनिक संदर्भों और परिप्रेक्ष्य में अहिंसक जीवन-शैली के विकास के लिए शाकाहार का व्यापक प्रचार/प्रसार किया जाए; जैनधर्म की मान्यताओं और सिद्धान्तों को वैज्ञानिक आधार पर पुष्ट करें और उन्हें लोक-जीवन से जोड़ें; तथा श्रावकीय जीवन इस अहिंसक जीवन-शैली की प्रयोगशाला बने । □□

ग्रंथ : लेखकों से अधिक सयाने

मांटेने कहा करता था कि तीन समागमों को वह आवश्यक समझता है : प्रेम-समागम, मित्र-समागम, और ग्रंथ-समागम । तीनों में बड़ी समता है; लेकिन शायद इन तीनों में ग्रंथ सबसे बफादार है । मैंने यह भी पाया है कि ग्रंथ प्रायः अपने लेखकों से अधिक सयाने और वाक्पटु होते हैं ।

—आंद्रे मोरवा

अन्त में जीतते जानवर ही हैं

अफ्रीका की बहुत प्रचलित कहावतों में से एक है—'गोरा शिकारी चाहे कितना बली हो, लेकिन अंत में जीतते जानवर ही हैं' । और इसमें बहुत बड़ी सचाई है; क्योंकि अफ्रीका के बहुत कम पेशेवर शिकारी खटिया पर स्वाभाविक मौत मरते हैं ।

—पीटर गाब्रके



बेकसूर प्राणियों के खून-में-सने हमारे ये बर्बर शौक

जब भी मैं किसी कोंपल, या किसी पशु-शावक को छूता हूँ तो लगता है मैं सारे विश्व का स्पर्श कर रहा हूँ। मैं करुणा और कृपा में नहा उठता हूँ। मुझे लगता है यह जगत् कितना सुन्दर/कितना सुखद है, किन्तु जैसे ही मेरा ध्यान मनुष्य की बर्बरताओं की ओर जाता है मैं थर्रा उठता हूँ यह सोच कर कि यह इतनी हरी-भरी धरती और इसके कूदते-फुदकते/छलांगों-भरते शृंगार को उजाड़ने/तहस-नहस करने पर क्यों तुला है? क्या यह स्वयं इस सारे व्यापक सौंदर्य का भागीदार नहीं है। आज सारे जगत् की हरी खोल खतरे में है। खेत उजड़ रहे हैं। धरती सूख रही है। पृथ्वी पानी पर तैर रही है; किन्तु आज इसके गाँव-शहर एक-एक बूंद पानी के लिए तरसने लगे हैं?

क्यों हुआ जा रहा है यह सब? क्या हम इसे अपने हाथों अपने ही पाँव पर कुल्हाड़ी मारना नहीं कहेंगे? क्या मनुष्य स्वयं इस धरती-के-मित्र प्राणियों की, जो इसे स्वच्छ/साफ/सुथरी/और/सुन्दर बनाये रखने में अपनी विशद भूमिका निभाते हैं, रोज़-ब-रोज़ लाखों की संख्या में मौत के घाट नहीं उतार रहा है? जिस क्षण मनुष्य की ये बर्बरताएँ थमेंगी उस दिन फिर यह धरती सुखद/सह्य बनेगी; किन्तु अफसोस हिंसा का दौर बढ़ रहा

है और पृथ्वी पर से पशु-पक्षियों की कई नस्लें समाप्त हो रही हैं। कीटनाशक दवाओं और रासायनिक द्रवों ने हमारी इस सदी में जो गजब ढाया है, वह किसी महाप्रलय से कम नहीं है। यह दुनिया बहुत बड़ी है। खूबसूरत है। इसमें पहाड़ हैं। घने वन हैं। कल-कल बहती नदियाँ हैं। निरन्तर प्रवाहित झरने हैं। कुहुकती कोयलें हैं। फुदकते चंचल-चपल बंदर हैं। तेज-दौड़ते खरगोश हैं। भागती-कूदती गिलहरियाँ हैं। नामालूम कितने मासूम प्राणी हमारी इस धरती के निवासी हैं, किन्तु मजा यह है कि वे हमें निभा रहे हैं और हम उन्हें निभा नहीं पा रहे हैं। वे हमें दूध-दही का वरदान दे रहे हैं और हम उनकी जान लेने पर आमामादा हैं। हमारी इस धरती पर नामालूम कितने निरीह/भोले/खुशमिजाज प्राणी निवास करते हैं

ये प्राणी पृथ्वी के गर्भ में, समुद्र में, वृक्षों पर, गिरि-कन्दराओं में, बियावाँ/सघन जंगलों में अरबों-खरबों की संख्या में रहते हैं कभी सूरज देख पाते हैं और कभी नहीं देख पाते; क्योंकि इनमें से करोड़ों प्राणी मनुष्य की कृपा पर जीवित हैं। उनके सूर्योदय और सूर्यास्त उसके अनुग्रह पर निर्भर हैं।

इनमें से कुछ शाकाहारी हैं; कुछ आमिष-भोजी। मनुष्य प्रकृति से उसकी शरीर-रचना से आमिष-भोजी नहीं है; किन्तु उसमें जिह्वा-लोलुपता इतनी अधिक है कि वह अपने क्षणिक सुख के लिए इन प्राणियों को रोज़ ही मौत के घाट उतार रहा है। उसने बड़ी-बड़ी क़त्लगाहें खोल रखी हैं इनकी हत्या के लिए। कीड़े-मकोड़े, कीट-पतंगे भी लाखों किस्म के हमारी इस धरती के निवासी हैं और इसे सुन्दर/संतुलित/और/स्वच्छ बनाये हुए हैं; किन्तु हमें यह सब सह्य नहीं है और न हम अपने बर्बर/नृशंस शौकों और अधुनातन फैशनों के लिए करोड़ों की संख्या में उन की बलि चढ़ा रहे हैं।

हमारी हिंसा का जाल अब इतना घिनौना और खून-में-सना हो गया है कि हम अपने पालतू कृषि-पशुओं को भी काट कर खाने लगे हैं (श्रावकाचार के संदर्भ में हम इसलिए इस जीभ-लपलपाती हिंसा का जिक्र कर रहे हैं ताकि हम अपने-अपने स्तर पर इसका मुकाबला कर सकें और एक अहिंसक जीवन-शैली की स्थापना का भरपूर प्रयत्न कर सकें।)

गाय-बैल कृषि-पशु हैं। गाय भारत का एक पूज्य पशु है। करोड़ों

लोग आज भी इसकी पूजा करते हैं; इसके स्वास्थ्यप्रद मूत्र-का-आचमन करते हैं। इसके पवित्र/रुजहारी गोबर से अपना घर-आँगन लीपते हैं। कहा जाता है कि गाय के थनों में तैतीस कोटि देवता निवास करते हैं; किन्तु आज हमारे ही अपने मुल्क में, महावीर और बुद्ध के देश में, गाँधी और विनोबा, विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस के देश में रोज ही सूर्योदय के साथ हजारों गाय-भेड़ें काट दी जाती हैं।

मनुष्य को चाहिये स्वाद। वह है इन्द्रियों का दास; इसीलिए वह अपने वहशी/जंगली/क्रूर शौकों के लिए निरीह/निर्दोष प्राणियों का खून बहा रहा है/खून पी रहा है।



देवनार : जहाँ प्रतिदिन दो हजार भेड़ें मौत के घाट उतारी जाती हैं

अकेले देवनार (बम्बई) का कत्लखाना ही—जो एशिया का सबसे बड़ा कत्लघर माना जाता है—प्रतिवर्ष एक लाख से अधिक पशु मौत के घाट उतारता है। देवनार प्रतिमास अस्सी हजार टन मांस का निर्यात करता है। इसमें सब क्रिस्म के और हर उम्र के गाय-बैल, बछड़ा-बछड़ी, केड़ा-केड़ी, भेड़-बकरियाँ कत्ल की जाती हैं। सिर्फ इतना ही नहीं है बल्कि मनुष्य की क्रूर मंशा ने और भी घिनौनी शकल ले ली है। वह अपनी खुदगर्जी के लिए स्वस्थ पशुओं की टोंगे तोड़ कर नकली/फर्जी प्रमाणपत्र प्राप्त करता है और इन्हें देवनार के कत्लखाने को बेच दे रहा है।

जिन दवाइयों को हम खाते हैं हम नहीं जानते कि वे किस कदर खून-में-डूबी, या खून-में-सनी हैं। मधुमेह (डायबेटीज) के लिए जिस

इन्सुलिन नामक दवा का उपयोग हम करते हैं वह भेड़ या बैल या गाय के अग्न्याशय (पैंक्रियाज़) में से प्राप्त की जाती है। इस निमित्त नामालूम कितनी भेड़ें/गायें/बछड़े क़त्ल कर दिये जाते हैं। फ्रांस की साझेदारी में चल रही बम्बई की 'फ्रांको' कम्पनी 'डेक्सोरेंज' नाम की एक दवा का उत्पादन करती है, जिसके पेकिंग पर यद्यपि संतरों का चित्र है, तथापि इसमें हेमोग्लोबिन के नामान्तर से देवनार में क़त्ल पशुओं का ९५% खून रहता है, यह हमारी दवाई की दूकानों पर बिकती है। देवनार के क़त्लखाने में जिन पशुओं को मारा जाता है उनका ताज़ा खून अलुमुनियम के टिनों में ट्रकों द्वारा/टेम्पो में/टिक्सी में वलीं में लोटस सिनेमा के पास फ्रांको कम्पनी में ले जाया जाता है जहाँ 'डेक्सोरेंज' की खूबसूरत बोतलें तैयार की जाती हैं। क्या हम इन/ऐसी सारी दवाइयों को लेकर उनके भक्ष्याभक्ष्य पर कभी विचार कर सकेंगे?

याद रखें उक्त दवा में अल्कोहल-का-आधार देकर ९५ से ९८% खून मिलाया जाता है।

भारत एक अहिंसा-प्रधान/कृषि-प्रधान/अहिंसा-प्रेमी देश है, जहाँ आयुर्वेद का सीमातीत विकास हुआ था कभी।

ईसा की तीसरी शताब्दी में दक्षिण भारत में समन्तभद्र नाम के कोई मुनि हुए थे जिन्होंने १८००० पराग-रहित पुष्पों की क्रिस्मों पर आधारित पुष्पायुर्वेद का आविष्कार किया था। क्या हम ऐसे सुखद/अहिंसक प्रयोग आज नहीं कर सकते?

भारत जड़ी-बूटियों का देश है; आज भी यहाँ से हमारी बहुमूल्य जड़ी-बूटियाँ/वनस्पति विदेश जाती है और तैयारशुदा दवाइयों के रूप में अधिक महँगी बन कर लौटती है। खैर जो हो, हिंसा का जो दौर आज हमारे सामने है उसका मुकाबला हमें प्राणपण से/संपूर्ण शक्ति से करना चाहिये। ताज्जुब है जो पशुधन सदियों से हमारी सेवा कर रहा था आज हम उसके प्रति इतने कृतघ्न हुए हैं कि उसे बिना किसी संकोच के कसाईघरों को सौंप रहे हैं !!

जो मेंढक शताब्दियों से हमारे कुए-तालाब, खेत-खलिहान की प्रदूषण और कीड़े-मकोड़ों से मदद करता आ रहा है आज उसकी टाँगों की तिजारत हम कर रहे हैं !!

मनुष्य ने अपनी जीभ के लिए क्या नहीं किया है, उसने इस सुन्दर सृष्टि की उन साँसों को उजाड़ दिया है जो प्रकृति की अभूतपूर्व शृंगार थीं; जिन्हें प्रकृति ने अपने शृंगार के लिए बनाया था, धरती को एक

अपूर्व छटा प्रदान करने के लिए जिनकी रचना हुई थी, उनसे आज हमारे देश की आधुनिकाएँ

अपने अधरों का रंजन कर रही हैं, उनसे अपने केश/अपने रूमाल सुवासित कर रही हैं और बनवा रही हैं अपने पर्स, अपनी चप्पलें ।

जो हो मनुष्य जैसे-जैसे सभ्य होता गया है, वैसे-वैसे उसमें से उसकी करुणा का लोप होता गया है और उसकी क्रूरता बढ़ती गयी है ।

देखिये न, दवाइयों की निर्विघ्नता और अचूकता के लिए अमेरिका में हज़ारों बंदरों की जानें ले ली जाती हैं । खरगोश-जैसे भोले/ निरीह प्राणी की आँखें शेम्पू छीन लेता है ।

कहा जा रहा है कि दुनिया में चूँकि कृषि-उत्पादन कम है और मनुष्य की आबादी निरन्तर बढ़ रही है अतः अब मांस की खेती की जाना ज़रूरी है; इसीलिए शाका-हारी जनता में तरह-तरह के भ्रम फैला कर उसे पथभ्रष्ट किया जा रहा है । शाकाहारी अण्डे, मछली-की-खेती, अण्डों-की-खेती इसी तरह के धोखा देने वाले संस्कार-भंजक शब्द हैं ।

आँकड़ों का यदि तनिक नज़दीक से अध्ययन किया जाए तो पता चलेगा कि एक मांसाहारी १४ शाकाहारियों के बराबर पड़ता है । सूअर का एक किलो मांस १४ किलो शाकाहारी भोजन से बनता है । सूअर की खुराक १४ आदमियों के बराबर होती है । इस तरह यह आर्थिक दृष्टि से भी लाभप्रद नहीं है ।

वहाँ तक स्वास्थ्य की नज़र से देखने का प्रश्न है, बहुत स्पष्ट है कि जिन पशुओं का मांस खाया जाता है उनका स्वास्थ्य कैसा है इसकी चिन्ता कौन करता है अतः बीमार पशुओं की बीमारी भी मांसाहारियों के पेट में जाती है । एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन के अनुसार क्रतल करने की प्रक्रिया में पशु पर जो हिंसक/प्रतिशोधात्मक प्रतिक्रियाएँ होती हैं वे भी मांसाहारी की चेतना पर अंतरित होती हैं अतः वह अधिक तामसिक होता जाता है । सैकड़ों लोग रक्तचाप, गुर्दों की बीमारियों, और हृदय रोग से केवल मांसाहार के कारण ग्रसित हो जाते हैं ।

मनुष्य ने हमारी इस सुन्दर/रत्नगर्भा वसुन्धरा को इस क्रूरता और बेरहमी से उजाड़ा है कि ऐसा दिन अब बहुत करीब है कि जब प्रकृति स्वयं प्रतिशोध पर उतारू होगी । कहा जा सकता है, हम पुष्ट भी कर सकते हैं, कि प्रतिशोध की यह प्रक्रिया शुरू भी हो गयी है । जहाँ तक पश्चिमी देशों का सवाल है, उनका खानपान बबंर मांसाहार पर टिका हुआ है किन्तु अब वे भी शाकाहार के महत्त्व को जानने लगे हैं और सात्त्विकता की ओर अपना कदम तेजी से उठा रहे हैं ।

एक किताब है : इन्सेक्ट्स । लेखक हैं : एम. एस. मणि । श्री मणि ने इस किताब की भूमिका में लिखा है कि हमने भारत के मानव-जीवन और कीड़े-मकोड़ों की समानताओं पर इस पुस्तक में जोर दिया है और कहा है कि कीड़े इस देश के

आदिवासी हैं, प्रथम भारतीय हैं, जो आज भी हमारे राष्ट्रीय जीवन की विशेषताओं, हमारी महानताओं, और हमारी विपत्तियों में बराबर की हिस्सेदारी कर रहे हैं। इस किताब का उद्देश्य कीट-जीवन के प्रति प्रीति उत्पन्न करना है। इसी किताब में उन्होंने कहा है कि हकीकत में जिन कीड़ों को हम उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, वे हमारे प्राकृतिक दृश्यों, हमारी कृषि-संपदाओं, हमारे उद्योग-धन्धों के संरक्षक और शिल्पी हैं। श्री मणि के अनुसार अब तक साढ़े सात लाख कीड़ों की किस्मों का नामकरण किया जा चुका है। कितने कीड़े रहते हैं इस धरती पर इसकी जानकारी हमें नहीं है, पर इतना सही है कि उनकी आबादी मनुष्य की आबादी से कई अरब गुना है। यदि यह आबादी मनुष्य-जाति पर हमला कर दे तो कोई ऐसा कीटनाशक नहीं है जो उसकी एकबारगी रक्षा कर सके।

वस्तुतः हमें इन कीट-पतंगों का, इन पशु-पक्षियों का कुतन्त्र होना चाहिये जो हमारी इस धरती को स्वर्ग बनाते हैं/बनाये हुए हैं; किन्तु हम वैसा कर कहीं रहे हैं—कर रहे हैं उलटा, यानी उनका संहार कर रहे हैं।

इन कीड़ों को भी आदमी ने नहीं छोड़ा है। अपने स्वाद के लिए उसने इन पर हमला शुरू कर दिया है। अफ्रिका, सूडान, अरेबिया और अमेरिका में टिट्टों/भूंगों को चर्बी में तल कर चॉकलेट में पाग लिया जाता है और चटखारे ले-ले कर खाया जाता है। वहाँ इसे सबसे स्वादिष्ट तश्तरी माना जाता है। हमारी अपनी बहुत-सी जंगली जातियाँ दीमग को तल कर मसालों में बघार कर खाती हैं; किन्तु यह उनका अज्ञान है—मुश्किल वहाँ है वास्तव में जहाँ सभ्यता का चरमोत्कर्ष हुआ है और उसके साथ

मनुष्य बर्बर हुआ है।

यहाँ हम कुछ प्राणियों के बारे में, जो मासूम/बेकसूर/सुशोभन/मांसल/सुकुमार हैं, बता रहे हैं जिनके साथ दुनिया के सुसभ्य मुल्कों ने गज़ब के जुलम ढाये हैं और जिन्हें नेशतनाबूद करने में उसने कोई कोरकसर नहीं छोड़ी है।

सबसे पहले हम मेंढक को ले रहे हैं। यह एक ऐसा प्राणी है जो जल और ज़मीन दोनों पर रह लेता है। वर्षा में तो प्रायः इसकी टर्-टर् सुनी ही जा सकती है। भारतीय कवियों ने इसे 'दादुर' कहा है, और जगह-जगह पर इसका वर्णन किया है; किन्तु हमारे देश ने विदेशी मुद्रा के लोभ-लालच में इस पर बेहद जुलम ढाना शुरू किया है। विगत पन्द्रह वर्षों में हमारे मुल्क ने विदेशी मुद्रा कमाने के पागलपन में एक नया ही उद्योग शुरू किया है। विदेशों में भारतीय मेंढकों की टांगें बहुत स्वादिष्ट मानी जाती हैं। आज इनकी विदेशी माँग इतनी अधिक बढ़ गयी है कि मेंढकों की संख्या के लगातार घटते जाने से खेती को नुकसान लगने लगा है। कई सरकारों को, जिनमें आन्ध्र राज्य की सरकार प्रमुख है, इसके वध पर प्रतिबन्ध



मेंढक : क्या कमूर है उनका ?

लगाना पड़ा है। आन्ध्र में दिसम्बर १९८७ तक के लिए मेंढक तथा अन्य जन्तुओं के मारने पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया है।

आप आश्चर्य करेंगे कि हमारे इस देश में मेंढकों को मारने और उनकी टाँगों को धड़ से अलग करने के कारखाने लगाये गये हैं। कई जंगली जातियों और ग्रामीणों को मेंढक पकड़ने की तालीम दी गयी है, उन्हें प्रशिक्षित किया गया है।

१९६७ में मेंढक की ५० टन टाँगों का निर्यात हुआ था।

एक मेंढक की टाँगों का वजन औसतन १०० ग्राम होता है तदनुसार ५ लाख मेंढक मारे गये।

१९८० में यह आँकड़ा ३५०० टन हो गया और इस तरह ३ करोड़ मेंढक मौत के घाट उतारे गये। इसके अतिरिक्त चिकित्सा-के-संदर्भ में मेंढकों की जो जानें डिस्सेक्शन में जाती हैं उनका तो कोई हिसाब ही नहीं है।

मेंढक का कुसूर सिर्फ इतना है कि उसकी शरीर-रचना मनुष्य की शरीर-रचना-जैसी है।

विज्ञान के प्रयोगों में मेंढक तो काम में आता ही है और-और प्राणी भी उपयोग में आते हैं। अमेरिका की विभिन्न प्रयोगशालाओं में खोजबीन के लिए १९७१ में जिन निरीह/मूक/बिआवाज प्राणियों के प्राण लिये गये उनका एक मोटा-सा अहवाल इस प्रकार है—

बंदर ८५२८३०, सुअर ४६६२४०, बकरे २२,६९१, कछुए १,९०,०००, बिलाव २,००,०००; कुत्ते ५,००,०००; खरगोश ७,००,०००; मेंढक १५ से २० लाख :

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/११९

चूहे ४,००,००,०००। ध्यान रहे इन प्रयोगों के परिणाम-स्वरूप जो दवाइयाँ बनायी जाती हैं उनका प्रयोग रोज-ब-रोज कर रहे हैं।

जहाँ तक माँसाहार का प्रश्न है वह सीधे-टोढ़े कई तरह से हो रहा है। हम कैम्पुलों के रूप में लगातार माँसाहार ही कर रहे हैं। कैम्पुलों जिलेटिन नामक पदार्थ से बनती हैं। जिलेटिन हड्डियों, खुरों, पशुओं के ऊतकों (टिस्सूज) को उबाल कर प्राप्त होता है। इसे पशुओं की झिल्लियों आदि से भी प्राप्त किया जाता है।



बछड़ा

चीज बनाने के लिए रेनेट का इस्तेमाल होता है। रेनेट क्या है? यह एक जामन है जिससे दही जमाया जाता है और फिर उससे चीज बनाते हैं। रेनेट बछड़ों के चतुर्थ अग्न्याशय/आमाशय की झिल्ली में-से मिलता है। हज़ारों बछड़ों की जानें रेनेट के लिए ली जाती हैं। कहते हैं रेनेट का विकल्प होते हुए भी जायके के लिए मनुष्य इसे बेहतर मान रहा है।



बिज्जू

बिज्जू को सब जानते हैं। यह बिल्ली-जैसा छोटा जानवर होता है। इसे भी मनुष्य ने अपना शोक पूरा करने के लिए मारना शुरू कर दिया है। सौंदर्य-प्रसाधन में इसका उपयोग होता है। इसे बेंतों से सूंता जाता है ताकि इस ताड़ना से उद्विग्न हो कर उसकी यौन ग्रन्थि स्रवित हो; फिर इस स्राव को एक तेज धार वाले चाकू से बड़ी निर्ममता से खरोंच लिया जाता है। यह सुगंधित होता है, अतः कई तरह के सेंट बनाने के काम आता है। नया जब आप इत्र/सेंट लगाते, या सूँघते हैं तब

क्या आपकी पीठ पर उन बेंतों के दाग उभरते हैं जो बिज्जू की पीठ को झेलने होते हैं ?

इस तरह हर वर्ष हज़ारों बिज्जू सेंट-उत्पादन के लिए मार डाले जाते हैं ।



लोरिस

लोरिस को लें । यह लेमूर जाति का एक छोटा/नाटा, मंदगामी बंदर है । श्रीलंका और जावा में यह बहुतायत से पाया जाता है । यह क्वाड्रमेनस प्राणी है, जो अपने पैरों का हाथ की तरह भी इस्तेमाल कर सकता है । इस मासूम का सौकुमार्य भी आदमी को चुभ गया ।

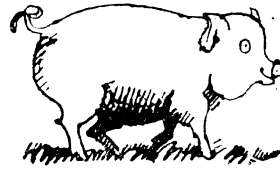
इसकी आँखें बहुत प्यारी बड़ी-बड़ी तश्तरियों-जैसी होती हैं । इसका जिगर और इसकी आँखें पीस कर सौंदर्य-प्रसाधन बनाये जाते हैं । इसे स्लेंडर लोरिस के नाम से पुकारा जाता है ।



गिनी पिग

गिनी पिग एक शाकाहारी प्राणी है । इसे गिनी पिग इसलिए कहते हैं चूँकि बर्तानिया

में इसकी कीमत एक गिन्नी थी। गिन्नी एक सोने का सिक्का था जो सन् १६६३ और १८१३ के बीच ब्रिटेन में प्रचलित था। गिनी पिग दुनिया-भरमें पाया जाता है। इसकी चमड़ी पर रोएँ होते हैं। यह चूहे के परिवार का जन्तु है। इसकी चमड़ी काफी स्निग्ध/कोमल होती है। हजामत बनाने के बाद जिस लोशन का उपयोग आदमी अपनी त्वचा पर करता है उसकी सहनशीलता/संवेदनशीलता की जाँच के लिए गिनी पिग की खाल पर प्रयोग किया जाता है ताकि मनुष्य की खाल को कोई हानि न पहुँचे। मनुष्य की खाल बची रहे, उसकी सुन्दरता बरकरार रहे अतः गिनी पिगों की जानें सैकड़ों/हजारों की संख्या में ले ली जाती हैं।



सुअर

सुअर यद्यपि बड़ा बदसूरत जानवर है; किन्तु वह एक सफाईदार जन्तु भी है। सफाई के प्रति हम भले ही इसके ऋणी न हों किन्तु इतना तो कम-से-कम करें कि इसके बाल, यहाँ तक कि भौंहों और पलकों के भी, न नोंचें और इसे जिन्दा न भूनें। बाल, चर्बी और माँस के लिए सुअर को जिन्दा जला डालते हैं। यह मनुष्य की क्रूरता का एक जीता-जागता उदाहरण।

भारत में सुअर मारने का सिलसिला यूनीसेफ की पहल पर गुजरात से चला। भारत में आज सुअर मारने की ७ बड़ी फैक्टरियाँ हैं; जिनमें से एक बोरीवली बम्बई-स्थित नेशनल पार्क में है। यहाँ माफको नामक संस्थान सुअर-के-माँस का उत्पादन करता है। यहीं जैनियों का त्रिमूर्ति तीर्थ भी है।

सिवेट बिल्ली-की-जाति का एक सघन रोओं वाला जानवर है। हिन्दी में इसे गंध-मार्जार के नाम से जाना जाता है। सबमें पहले से एक सँकरे पिंजरे में डाल दिया जाता है और फिर धीरे-धीरे सता-छेड़ कर इसकी जान ले ली जाती है। कस्तूरी भृगु को जिस तरह कस्तूरी के लिए मारा जाता है ठीक उसी तरह इसकी जान भी गंध/सैंट बनाने के लिए ले ली जाती है। माना जाता है कि सिवेट जितना अधिक गुस्सा करती है उतना ही अधिक अच्छी और अधिक कस्तूरी प्राप्त होती है; अतः उसे लकड़ी से घोंच-घोंच कर उत्तेजित किया जाता है ताकि उसकी ग्रन्थि पर कस्तूरी आये और उसे खींच-खरौंच लिया जाए। यह कस्तूरी सिवेट के चतुर्थ अग्न्याशय/पेट से प्राप्त की जाती है। १५-२० दिन बाद उसका पेट चीरा जाता है और कस्तूरी निकाल ली जाती है।



बीवर

बीवर मूषक-जैसा जन्तु होता है। इसके शरीर से प्राप्त होने वाला तैल सौंदर्य-प्रसाधन के लिए काम में आता है। चूँकि यह एक रोएंदार जन्तु है इसलिए इसके चमड़े के कोट भी बनाये जाते हैं। ध्यान दें, एक कोट यानी साठ बीवरों के प्राण। एक बीवर से मिलने वाली खाल बमुश्किल रूमाल-जितनी होती है। बीवर केस्टर वंश का पशु है। इसके छोटे-छोटे कान होते हैं, दाँत छैनी की तरह पंने होते हैं, आगे के पाँव छोटे होते हैं, पूँछ झब्बर/सघन होती है। इसमें से केस्टोरियम नामक गंध प्राप्त होता है, जिसे दवा और परफ्यूम दोनों के काम में लाया जाता है। इसे मादक द्रव्य के रूप में भी उपयोग में लाते हैं। बीवर को पकड़ना आसान नहीं है, अतः इसे पकड़ने के लिए लकड़ी के खूँटे गाड़ कर उस पर लोहे के तारों का जाल बिछाया जाता है। इस जाल में जकड़े बीवर को १५-२० दिनों तक भूख-प्यास से तड़पाया जाता है और फिर अन्ततः मनुष्य की गंधतृप्ति के लिए इसे उसकी बलि-वेदी पर चढ़ा दिया जाता है।



कस्तूरीमृग

लोमड़ी और हिरण भी लगातार बड़ी नृशंसतापूर्वक मारे जा रहे हैं। अभयारण्यों की स्थापनाओं के बावजूद हमारे देश में हिंसा का व्यापक सिलसिला जारी है।

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१२३

कस्तूरी मृग की हमारे काव्य/हमारी संस्कृति/हमारे पुराणों में बड़ी ख्याति है। इस मृग की नाभि में कस्तूरी होती है। यही कस्तूरी उसके प्राणों के लिए घातक सिद्ध हुई है। कश्मीर की घाटियों में हिरण प्रचुरता से पाये जाते हैं। इन्हें फाँसने के लिए घास के नीचे जाल बिछाये जाते हैं। फाँस जाने पर इसकी नाभि/टुँडी काट कर कस्तूरी निकाली जाती है तथा इसके चर्म से चप्पलें/पर्स/खिलौने आदि बनाये जाते हैं। क्या जो इत्र आप सूँघते हैं उसमें उसकी नाभि पर लगे नशत्र की प्रति-ध्वनि आपको नहीं सुनायी देती ?



कराकुल

कराकुल भेड़ों को भी बदकिस्मती के इस शिकंजे से गुज़रना पड़ता है। कराकुल के रोएँ बेहद महीन, घुंघराले, आकर्षक, और सघन होते हैं। इस स्निग्ध/मसृण रोएँदार चमड़ी के लिए ही इसके प्राणों का अपहरण किया जाता है। मनचलों/छैलों की टोपियों और उनकी वेशभूषा के लिए इनकी खाल काम में आती है। माना जाता है कि जन्मपूर्व यदि मेमने को मादा भेड़ के पेट से निकाल लिया जाए तो उसके फर/रोएँ बेहद नफीस/नरम होते हैं। अपने इस बर्बर शौक को पूरा करने के लिए कराकुल को प्रसव-से-पूर्व ही मार डाला जाता है।

१९७६ में रूस ने कराकुल भेड़ों की सर्वप्रथम खेप उपहार-स्वरूप भारत भेजी थी। विदेशियों के दबाव से, और विदेशी मुद्रा के लालच में कराकुल-का-संवर्द्धन शुरू हुआ। कभी-कभी तो कराकुल के साथ इतना बेरहम सलूक किया जाता है कि सुनने पर हमारा रोआँ-रोआँ थर्राँ उठता है।

४८ घंटे के सद्यःजात कराकुल-शिशु की खाल को व्यापारिक दृष्टि से सर्वोत्तम माना जाता है। इसे प्राप्त करने के लिए कराकुल भेड़ को बेंतों से सूँता जाता है; ताकि उसे गर्भपात हो जाए और कसाइयों को वक्त से पहले कराकुल-भ्रूण मिल जाए। यह बाज़ार में बहुत महँगे दामों पर बेची जाती है। कहाँ जाएगी मानव-सभ्यता प्रकृति और प्राकृतिक संपदा के साथ इस तरह का बदसलूक कर ?

कराकुल की निर्मम हत्या करने वालों से इतना अवश्य पूछा जाना चाहिये कि क्या वे एक भी कराकुल बना सकते हैं? मिटाना आसान है, बनाना किसी संस्था/प्रवृत्ति तक का मुश्किल होता है—फिर यह तो चेतना और धड़कन का अत्यन्त संवेदनशील क्षेत्र है—इसमें तो असंभवता के अलावा और कुछ हाथ लग ही नहीं सकता।

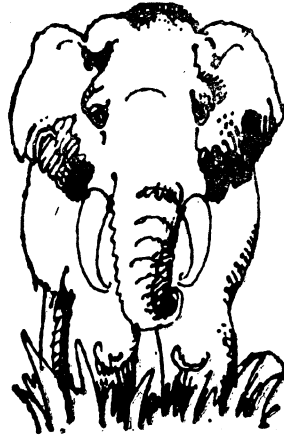


सील मछली के बच्चे

सील मछली के बच्चों के साथ मनुष्य ने जो जुल्म किये हैं उसे देखते बादलों को पानी बरसाना बंद कर देना चाहिये। सील कनाडा में प्रचुरता से पायी जाती है। जो लोग इसके उत्पादनों का व्यापार करते हैं वे इसे बेसबॉल की तरह-के-बल्ले से पीट-पीट कर मार डालते हैं। नाँवों में लोहे की एक तीखी सलाई इसके सिर में घोंप दी जाती है ताकि इसकी खाल बेदाग/अखण्ड निकल आये। सील-शिशु की खाल से कोट बनाये जाते हैं। जब सील-शिशु लहुलुहान होता है और मादा अपने खून-से-सने तड़पते बच्चे को देखती है, तब सूरज तक काँप उठता है और समुद्र तक दहाड़ पड़ता है किन्तु ताज्जुब मनुष्य के बर्बर शौक को कुछ भी नहीं होता !

सील-शिशु का कोट दुर्लभ वस्तु माना जाता है; वस्तुतः यह इतना चपल होता है कि इसे पकड़ पाना कठिन होता है। शिकारियों को सील के तुरन्त जन्मे बच्चे की तलाश रहती है। वे छिपकली की तरह इस पर आँख लगाये रहते हैं। नभं रोएँदार खाल को प्राप्त करने के लिए १३-१४ दिन के मासूम सील-शिशु को बड़ी बेरहमी से मार डाला जाता है - इतनी बेरहमी से कि एक बार आँसू के भी आँसू आ जाते हैं। औरतें जिन्हें करुणावान्/संवेदनशील माना जाता है, इसके बने कोट अधिक पहिनती हैं। एक कोट में कम-से-कम ९-१० सील-शिशु की मौतें अंकित रहती हैं।

हाथी

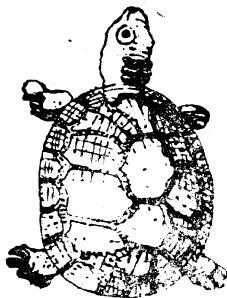


हाथी एक मांगलिक पशु है। यदि स्वप्न में वह आ जाए तो बड़ा शुभ माना जाता है। किन्तु आफ्रिका आदि मुल्कों में इसे जहरीले फल खिला कर मार डाला जाता है ताकि इसके दाँत प्राप्त किये जा सकें और उनसे खिलौने, बाले, और चूड़ियाँ बनायी जा सकें। क्या किसी हथिनी का मुहाग उजाड़ कर हाथी दाँत की चूड़ियाँ पहिनना उचित है ?



व्हेल मछली

व्हेल दुनिया की सबसे बड़ी मछली मानी गयी है। यह लगभग ६३ फुट लम्बी होती है। यह बड़ी चेतना-संपन्न मछली होती है। इसकी शरीर-रचना मनुष्य की शरीर-रचना की तरह ही जटिल और उत्तम होती है। इसे कई घंटों में मारना संभव होता है। मारने के लिए हार्पून ग्रीनेड का उपयोग किया जाता है। मांस-लोलुप यद्यपि इसका मांस खा जाते हैं; किन्तु मूलतः इसका उपयोग एंबरगीस नामक सुगंधित पदार्थ प्राप्त करने के निमित्त ही होता है। इसका जो तैल निकलता है उसे मिसाइलों के पुर्जों को चिकनाने और सुरक्षित रखने के काम में लाते हैं। सील/डाल्फिन के साथ भी ऐसा ही क्रूर व्यवहार मनुष्य कर रहा है।



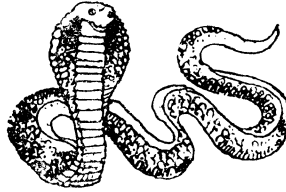
कछुआ

कछुआ जिसे संस्कृत/हिन्दी में कच्छप भी कहते हैं एक कथा-प्रसिद्ध जलचर है, जो पृथ्वी पर भी चल लेता है; किन्तु जो प्रायः नदी-तटों पर गड़हा खोद कर छुपा पड़ा रहता है।

जो लोग इसकी टोह में रहते हैं वे बड़े कौशल से इसे उलट देते हैं और फिर बड़ी क्रूरतापूर्वक इसके कोमलांगों को टुकड़े-टुकड़े कर सम्बन्धित कारखानों को बेच देते हैं। इसके अवयवों से प्राप्त चर्बी से एक तैल बनाया जाता है जो सौंदर्य-

प्रसाधन की तरह प्रयुक्त होता है। जिस कछुए का हमारे देश में ढाल के रूप में प्रयोग होता था विदेशों में आज उसे ही सौंदर्य-प्रसाधनों के रूप में काम में लिया जाता है। क्या हमारी माँ-बहिनें सौंदर्य-प्रसाधनों का इस्तेमाल करते समय अपने विवेक का उपयोग करेंगी ताकि कछुओं की तथा और-और निरीह/निर्दोष प्राणियों की जानें बच सकें ?

साँप



साँप चीन, बर्मा, और भारत में प्रचुरता से पाया जाता है। इससे लोग डरते भी हैं और इसका भोजन की तरह उपयोग भी करते हैं। भारत के उत्तरी-पूर्वी हिस्सों में साँप का भोजन की भाँति इस्तेमाल होता है। मध्यप्रदेश की आदिवासी जातियाँ भी इसे खाती हैं। हाँगकाँग में साँप के गॉल ब्लडर से शराब/दवाइयाँ बनायी जाती हैं। साँप की वसा का उपयोग कई औषधियों के निर्माण में होता है। साँप की झड़ी का वाणिज्यिक महत्त्व भी है; इसके पर्स/चप्पलें बनायी जाती हैं। साँप की झाल निकालने का काम बहुत क्रूर है। साँप को किसी वृक्ष के तने पर खीलों से ग्रेक देते हैं और फिर एक तेज धार वाले चाकू से उसे चीर डालते हैं नतीजतन उसे काटते वक्त माँस के लोथड़े और खून के फव्वारे चारों ओर छिटक/बिखर जाते हैं।

बाघ



बाघ/बघेरा एक आभिषभोजी शिकारी जन्तु है। इसे फन्दा फेला कर फाँसा जाता है। बंदूक से इसे इसलिए नहीं मारते चूँकि वैसा करने से खाल के दागीले/खण्डित

होने का डर रहता है। बाघ को प्रायः तनियों से कसा जाता है या फिर उसकी पूंछ उठा कर गुदा द्वार से गर्म शलाका भोक दी जाती है। इस तरह प्राप्त बाघ की खालें बहुत महँगी आती हैं।



कोसेट्टा (रेशम का कीड़ा)

कोसेट्टा रेशम के कीड़े को कहते हैं। यह अपने चारों ओर नरम रेशों की गुत्थी को जन्मता है और फिर स्वाभाविक रूप में बाहर निकल आता है; किन्तु जो लोग रेशम का कारोबार करते हैं वे इनकी जान लिये बिना नहीं मानते। वे कोसेट्टा को खोलते हुए पानी में उबाल-उबाल कर मार डालते हैं ताकि उन्हें अटूट रेशे और उत्तम दर्जे का रेशम मिल जाए। आप जानते हैं रेशम के एक कुर्ते या/साड़ी में कितने कोसेट्टाओं की जानें लिपटी होती हैं? हज़ारों की। क्या कभी वह किलबिलाहट/उनके उबाले जाने के वक्त की पीड़ा कभी आपको नहीं सताती? आश्चर्य की बात तो यह है कि

दक्षिण भारत में कर्नाटक के सैकड़ों जैन रेशम का धन्धा करते हैं। इस तरह रेशम आकर्षक भले ही हो अहिंसक जीवन-शैली का अंग वह स्वप्न में भी नहीं हो सकता।



बन्दर

मेंढक और खरगोश की तरह बन्दर भी मनुष्य की क्रूर बर्बरताओं का शिकार हुआ है। वैज्ञानिकों/चिकित्सकों ने उस पर सर्वाधिक जुल्म डाये हैं। ये सारे प्रयोग इतने वहशी हैं कि इन्हें पढ़-सुन कर किसी के भी प्राण थर्रा उठ सकते हैं। बन्दरों पर दवाइयों के लिए तो प्रयोग हुए ही हैं हेअर डाइ (बालों के खिज़ाब) के लिए कई प्रयोग हुए हैं। इसे लिप्स्टिक टेल्कम एक ट्यूब/नली के जरिये पिलाया जाता है, जिसके दौरान या तो वह खुद-ब-खुद प्रभु को प्यारा हो जाता है या कभी नहीं हुआ तो पोस्टमार्टम द्वारा उसकी विरोधिका शक्ति की जाँच के लिए उसके प्राण ले लिये जाते हैं।

(शेष पृष्ठ १८९ पर)



रत्नकरण्ड श्रावकाचार- श्रावक के आचार की विकास-कथा

जैनधर्म और समाज की धुरी है चतुःसध-

श्रमण/श्रमणा, श्रावक/श्राविका। इस तरह बुनियाद में दो वर्ग हैं—अनगार/सागार। वे जिन्होंने घर छोड़ दिया है और वे जो गृही हैं; किन्तु अपना कामकाज सदाचार की छाया में कर रहे हैं — सदियों से करते आ रहे हैं।

‘रत्नकरण्ड श्रावकाचार’ श्रावक के आचार पर विस्तृत, किन्तु बिन्दु-में-सिन्धु की भाँति विचार करने वाला सर्वप्रथम निष्पक्ष/तर्कसंगत ग्रन्थ है। यह लगभग १८०० साल पहले विक्रम की द्वितीय शताब्दी में स्वामी समन्तभद्र द्वारा लिखा गया। इसमें एक सौ पचास श्लोक हैं, जो सात अध्ययनों/परिच्छेदों के अन्तर्गत व्यवस्थापित हैं। इसमें श्रावक के मूलभूत व्यक्तित्व से ले कर उसके क्रमबद्ध विकास को संयोजित किया गया है।

स्वामी समन्तभद्र कावेरी-तटवर्ती उरगपुर के निवासी थे। वे राजकुमार थे।

उनका गृहस्थ/लौकिक नाम शान्तिवर्मा था।

सारा देश उन्होंने घूमा, और इस तरह घूमा कि उनके सामने इस विशाल देश का वैविध्य, इसकी विषमताएँ और इसके आचार-विचार का एक स्पष्ट मानचित्र आ गया।

वे नगनाटक/दिगम्बर साधु बने। उन्होंने काफी संघर्ष किया; यही कारण है कि वे देश को अपनी मनीषा का अमृतफल दे सके।

सब जानते हैं राजसिंहासन पर से नंगी धरती पर उनकी नग्न पगतलियाँ आयी थीं।

कंकर उन्हें चुभे होंगे; किन्तु उस चुभन-की-पीड़ा का जहर पी कर उन्होंने श्रावकों के

लिए सदाचार का एक ऐसा निष्कण्टक राजमार्ग तैयार किया जो निर्बाध/अचूक/ तर्कसंगत था ।

उन्हें भारतीय लोकजीवन की विशद/गहन जानकारी थी।

वे दिगम्बर जैन मुनि थे ।

उन्हें भयंकर भस्मक रोग हुआ था ।

मृत्यु उनके सिरहाने के करीब से गुज़री थी ।

काँची में वे इससे मुक्त हुए । 'स्वयंभूस्तोत्र' उनके स्वस्थ होने की प्रक्रिया की सुखद परिणति है । वह भी एक रोमांचक प्रसंग है,

जिसमें से उनकी सुदृढ़ निष्ठा का सूरज

आज भी झाँक रहा है ।

वे रत्नों-की-डेरी पर जन्मे और रत्नों का एक ऐसा करण्डक/पिटारा हमें दे गये, जिसका कोई सानी आज इस दुनिया में नहीं है ।

स्वामी समन्तभद्र एक स्वतन्त्रचेता जैन मुनि थे ।

उन्हें परम्पराएँ पसंद थीं;

किन्तु उनका अन्धानुकरण बिलकुल पसंद न था; इसीलिए उन्होंने जहाँ भी/ जब भी जीवन के किसी उपकारक तत्त्व को देखा, तुरन्त उसे अपनी कसौटी पर कसा/

परखा और अपनी समकालीन चेतना को सस्नेह अपित कर दिया । उनकी अदृष्ट/ अप्रतिहत प्रतिभा से उनके समकालीन/परवर्ती मुनि-रचनाकार इतने प्रभावित थे

कि उन्होंने उनके लिए तरह-तरह के विशेषणों का उपयोग किया ।

विक्रम की नवीं शताब्दी में हुए आचार्य जिनसेन ने उन्हें 'कवि/गमक/वादी/और/वाग्मी' कहा ।

'कवि' इसलिए कि वे एक समर्थ/मनीषी तार्किक और कृतिकार थे ।

'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' की आठवीं/ग्यारहवीं/एक सौ पचासवीं कारिकाएँ उनकी अद्वितीय प्रतिभा की जीवन्त प्रमाण हैं । वे भावनाशील होते हुए भी एक निर्मम तार्किक थे । हर वक्तव्य को वे ज्ञान के प्रखर निकष पर कसते/परखते थे ।

'गमक' उन्हें इसलिए कहा चूँकि वे दूसरे विद्वानों की कृतियों के मर्म को समझने तथा उसे दूसरों को समझाने में काफी कुशाग्र थे । विजयोन्मुख वचनवृत्ति के कारण उन्हें आचार्य जिनसेन ने 'वादी' कह कर संबोधित किया ।

'वाग्मी' उन्हें इसलिए कहा कि वे अपने वाग्चातुर्य से जहाँ एक ओर अन्योँ तक गहनतम तथ्यों को अबाध सम्प्रेषित करने में सफल थे,

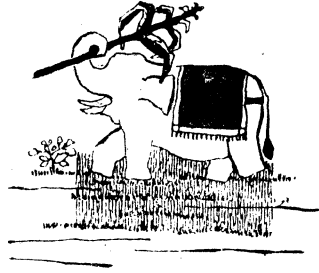
वहीं दूसरी ओर जब वे

बोलने खड़े होते थे तो चारों ओर एक जादू-सा छा जाता था ।

आचार्य अकलंक ने उन्हें 'लोकचक्षु' और

विद्यानन्द स्वामी ने उन्हें 'परीक्षेक्षण'

अपने अन्तर के मँल को काटना ही सबसे बड़ी सिद्धि है। जब मनुष्य इस भव के मँल को काट डालता है तब वह ऐसे निखर जाता है जैसे किट्ट और कलौस के कट जाने से घरिया में पड़ा हुआ सोना निखर जाता है।



कह कर सम्बोधित किया है; जिनके क्रमशः अर्थ हैं 'लोक जिनकी आँख से देखता है'। तथा 'परीक्षा, या कसौटी पर कसना ही है आँख जिनकी'।

हम समझते हैं : आज हमें

फिर ऐसी ही निर्भम कसौटियों की ओर कसौटीकारों की जरूरत है।

अपने युग के सुप्रसिद्ध टीकाकार स्व. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने उन्हें 'आत्मानुभवी मनीषी' कहा है। उन्होंने लिखा है—'स्वामी समन्तभद्र का निजी चारित्र ही उनके अनुभव की वाणी थी। उन्होंने जीवन को जैसा समझा वैसा कहा।

अपने अन्तर के मँल

को काटना ही सबसे बड़ी सिद्धि है। जब मनुष्य इस भव के मँल को काट डालता है तब वह ऐसे निखर जाता है जैसे किट्ट और कलौस के कट जाने से घरिया में पड़ा हुआ सोना निखर जाता है' (श्लोक-१३४)।

भाइये अब हम एक नजर डालते हैं 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' पर/उसके प्रतिपाद्य पर।

इसमें कुल डेढ़ सौ श्लोक हैं और सात अध्ययन।

पहले अध्ययन में इकतालीस श्लोक हैं,

जिनमें सम्यग्दर्शन की सांगोपांग समीक्षा है।

लोकमूढ़ताओं का जो वर्णन आया है वह समन्तभद्र की समाजशास्त्रीय मनीषा को प्रकट करता है। इस अध्ययन में उन्होंने कुछ ऐसे विद्रोही/तर्कसम्मत वक्तव्य दिये हैं

जो धर्म के ढाँचे को झकझोरते हैं और स्वस्थ चिन्तन को गौरवान्वित करते हैं :

२२, २३, २४ और २८ वें श्लोकों में उनकी यह समीचीन चेतना प्रकट हुई है।

तैत्तिरीयों कारिका में उन्होंने मुनियों पर चोट की है और सागार की पीठ को उत्कृष्टता के लिए थपथपाया है।

द्वितीय अध्ययन में सम्यग्ज्ञान के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए

अनुयोगों को संक्षेप में परिभाषित किया गया। तृतीय में चारित्र-चर्चा है।

इसमें सकल-विकल के भेद से चारित्र के स्वरूप को समझाया गया है। अष्टमूल गुणों

की भी समन्तभद्र ने अपरम्परित ढँग से चर्चा की है।

चतुर्थ अध्ययन में रचनाकार ने

तीन गुणव्रतों तथा उनके अतिचारों/उल्लंघनों पर विचार की है।

पाँचवें में उसने

चार शिक्षाव्रतों को परिभाषित किया है। जैसे कोई शिल्पी पत्थर को उठाता है और उसमें से शनः-शनैः संपूर्ण सूक्ष्मताओं के साथ एक मूर्ति उत्कीर्णित करता है, ठीक वैसे ही प्रथम अध्ययन से अन्तिम अध्ययन तक आते-आते उन्होंने श्रावकीय व्यक्तित्व की एक जीवन्त मूर्ति तैयार की है।

पाँचवें में 'चेलोपसृष्ट'

मुनि का वर्णन जहाँ एक ओर काव्यमूलक है, वहीं दूसरी ओर यथार्थपरक भी है। छोटे अध्ययन में सल्लेखना का और सातवें में ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन हुआ है। इस तरह 'रत्नकरण्ड' में हम श्रावक की एक रत्नत्रय-गर्भित प्रतिमा के दर्शन कर सकते हैं।

यहाँ अनुसारी पृष्ठों में

हम एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी की

षष्टिपूर्ति के उपलक्ष्य में

उन्हीं की प्रेरणा से सम्पूर्ण 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' एक नये ढंग से दे रहे हैं।

हमारे इस प्रस्तुतीकरण की दो विशेषताएँ हैं : संतोष जड़िया के अर्थगर्भित/जीवन्त-प्रतीक चित्र, जो संख्या में कुल ५१ हैं; तथा मिश्रीलाल जैन का बहुत कम समय में किया गया पद्यानुवाद।

जहाँ तक मूल और गद्यानुवाद का प्रश्न है, उनके आधार हैं

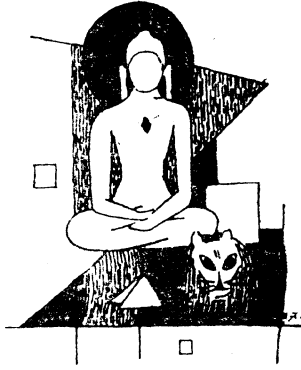
पं. मोहनलाल शास्त्री द्वारा संपादित 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' तथा स्व. आचार्य

जुगलकिशोरजी का 'समीचीन धर्मशास्त्र'।

हमें विश्वास है हमारे पाठक इसे ध्यान से पढ़ेंगे और स्वामी समन्तभद्र की

समीचीनता/यथार्थोन्मुख दृष्टि को समझने का प्रयत्न करेंगे।

—संपादक



नमः श्री-वर्द्धमानाय
निर्धूत-कलिलाल्मने ।
साऽलोकानां त्रिलोकानां
यद्विद्या दर्पणायते ॥१॥

भूत, भविष्यत्, वर्तमान,
युगपत् प्रतिबिम्बित ।
अनुपमेय कैवल्य दिव्य,
प्रज्ञा दर्पणजित् ॥
लोक अलोक त्रिलोक सैभी
देखें परछाईं ।
वर्द्धमान प्रभु नमन वनूं,
तव पदबन्ध झाईं ॥

मैं श्री वर्द्धमान महावीर को नमस्कार करता हूँ, उन्हें जो स्वयं के तथा दूसरों के कर्मों के नाशक हैं और जैसे दर्पण दर्शक की आँखों के लिए अदृष्ट का प्रकाशक है, ठीक वैसे ही जिनका केवलज्ञान अलोककाश सहित त्रिकाल/त्रिलोकवर्ती पर्याय-सहित छह द्रव्यों के समूह को युगपत्/एक साथ जानता है ।

देशयामि समीचीनं
धर्मकर्मनिवर्हणम् ।
संसारदुःखतः सत्वान्
यो धरत्युत्तमे सुखे ॥२॥

अखिल विश्व में व्याप्त
दुखों का कोलाहलमय क्रन्दन ।

शाश्वत आत्मा विवश
सह रही जन्म-मृत्यु के बन्धन ॥
समीचीन धर्माभूत का मैं
देता यह उपहार ।
सर्वोत्तम सुख मिले काट
भौतिक सुख-बन्धन-द्वार ॥

मैं प्रस्तुत ग्रन्थ में कर्मों-के-नाशक, अबाधित, और कल्याणकारी उस यथार्थ-परक धर्म का प्रतिपादन करूँगा, जो समस्त प्राणियों को संसार के कायिक/मानसिक क्लेशों से मुक्त कर उत्तम सुखों को प्राप्त कराता है ।

सद्दृष्टि-ज्ञान-वृत्तानि
धर्म धर्मेश्वरा विदुः ।
यदीय-प्रत्यनीकानि
भवन्ति भव-पद्धतिः ॥३॥

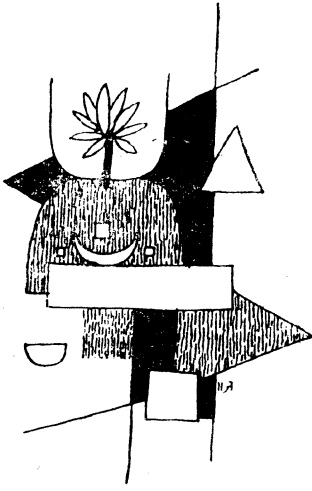
सम्यक्दर्शनज्ञानचरित—
जल-पूरित धर्म-जलाशय ।
तीर्थंकर की दिव्यध्वनि है
समय-शिला पर अक्षय ॥
जन्म-मृत्यु, बन्धन-विमुक्त
होने जन जो अकुलाते ।
धर्म-जलाशय शान्ति-तीर्थ
के तट वे केवल जाते ॥

धर्मज्ञ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र धर्म है तथा मिथ्या दर्शन, मिथ्याज्ञान, और मिथ्याचारित्र अधर्म हैं, क्योंकि ये प्राणियों को सांसारिक दुःखों में फँसाते हैं ।

श्रद्धानं परमार्थानाम्
आप्ताऽऽगमतपोभूताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं
सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥४॥

मुक्तिदूत आदर्श आप्त
आलोकमयी जिनवाणी ।

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१३३



निर्ग्रन्थों श्रमणों की वाणी
अगजग की कल्याणी ॥
देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा
जो भक्तिभाव-वश करते ।
सम्यग्दर्शन की आभा से
जिनके हृदय झलकते ॥

सच्चे देव, सच्चे शास्त्र, और सच्चे
गुरु पर तीन मूढताओं-से-रहित, सम्यक्त्व के
आठ अंगों के साथ, तथा आठ मदों से
मुक्त ज्यों-का-त्यों/याथातथ्य अविचल
श्रद्धान सम्यग्दर्शन है ।

आप्तेनोत्सन्न-दोषेण
सर्वज्ञेनाऽऽगमेशिना ।
भक्षितव्यं नियोगेन
नाऽन्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥५॥

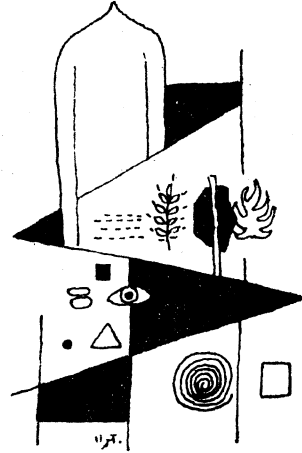
रागद्वेष की कर्मवृत्तियाँ
कर विनाश मृत्युजय ।
जन-मंगल के लिए दिव्यध्वनि
जग को दे निःसंशय ॥
द्रव्य, क्षेत्र से काल, भाव से
विश्वतत्त्व जो जाने ।

वह ज्योतिर्मय आगम में
केवल सर्वज्ञ बखाने ॥

जो वीतराग, सर्वज्ञ, और हितोपदेशी
है, वही सच्चा देव है; किन्तु जो वीतराग,
सर्वज्ञ, और हितोपदेशी नहीं है उसे सच्चा
देव कैसे कहेंगे ?

क्षुत्पिपासा-जरातंक-
जन्माऽन्तक-भय-स्मयाः ।
न राग-द्वेष-मोहाश्च
यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥६॥

जन्ममृत्यु-बन्धन-विमुक्त
कैवल्य-सूर्य के संग में ।
दोष अठारह तिमिर-रूप
क्या आ सकते जीवन में ?
शब्दों से वे परे उन्हें
कैसे बाँधूँ भाषा में ?
उद्धाटित वे हों न सकेंगे
नश्वर परिभाषा में ॥



जो भूख, प्यास, बुढ़ापा, राग, जन्म,
मरण, भय, गर्व, राग, द्वेष, मोह, आश्चर्य,
अरति, खेद, शोक, निद्रा, और स्वेद इन
अठारह दोषों से रहित है, वह वीतराग है ।

परमेष्ठी परंज्योति-
विरागो विमलः कृती ।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः
सार्वःशास्तोपलाल्यते ॥७॥

परम ज्योति सर्वज्ञ विरागी
स्थित गति पंचम में ।
निर्विकार कृतकृत्य न कोई
कार्य शेष जीवन में ॥
आदि अन्त और मध्य-रहित
अनुपम व्यक्तित्व तुम्हारा ।
विश्व-हितैषी शास्ता कह कर
जग ने तुम्हें पुकारा ॥

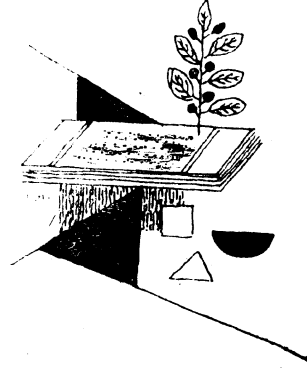
परमोच्च पद में स्थित, अक्षय कैवल्य
से युक्त, कृतकृत्य, विमल-निर्मल आदि-
मध्य-अन्त-रहित, सर्व पदार्थों का जो
ज्ञाता / दृष्टा है, वह शास्ता / हितोपदेशी है ।

अनात्मार्थं विना रागैः
शास्ता शास्ति सतोहितम् ।
ध्वनन् शिल्पि-कर
स्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥८॥

बिना अपेक्षा क्यों मृदंग
स्पर्शित शिल्पी-कर से ।
करता जन-मानस को झंकृत
अपने कोमल स्वर से ॥
वैसे राग-रहित उद्घाटित
अजर-अमर जिनवाणी ।
अनुपमेय निरपेक्ष शारदा
माँ-जैसी कल्याणी ॥

जैसे मृदंग, वादक का कर-स्पर्श पा
अपनी इच्छा बिना बज कर अपनी मधुर
ध्वनि से श्रोताओं को मुग्ध करता है, किन्तु
बदले में यश / प्रशंसा नहीं चाहता और न
ही श्रोताओं पर अनुरक्त होता है, उसी
तरह हितोपदेशी / वीतराग प्रभु प्राणियों

के पुण्य के निमित्त से बिना इच्छा सहज
ही उपदेश देते हैं तथापि श्रोताओं से न तो
लाभादि की अपेक्षा करते हैं और न ही
उन पर अनुरक्त होते हैं ।



आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यम्-
अदृष्टेष्ट-विरोधकम् ।
तत्त्वोपदेशकृत् सार्व
शास्त्रं कापथ-घट्टनम् ॥९॥

मुक्ति-रूप आदर्श आप्त-से-
प्राप्त पीयूष-प्रवर्षण ।
दोष-रहित पूर्वापर का
जिसमें अंकित आकर्षण ॥
वस्तु-स्वरूप तत्त्व-मीमांसा
का शाश्वत दिग्दर्शन ।
जन-मंगल के सुगम बोल में
धर्मशास्त्र दुख-भंजन ॥

जो वीतराग द्वारा कहा गया है,
इन्द्र आदि भी जिसका खण्डन नहीं कर
सके हैं, प्रत्यक्ष/परोक्ष आदि प्रमाणों से
जो अबाध है, जो वस्तुस्वरूप का प्रति-
पादक है, जो सब का हित करनेवाला,
और मिथ्यात्व को नष्ट करने वाला है-
वह सच्चा शास्त्र है ।

विषयाशावशातीतो
निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञान-ध्यान-तपोरत्न (वत)
स्तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥

विषय-वासना विषम बल्लरी
मूल-सहित तोड़ी है ।
हिसारभ परिग्रह से
किञ्चित् न वृत्ति जोड़ी है ॥
ध्यान-अग्नि में कर्म-कलुष
का प्रतिक्षण करते जो क्षय ।
निर्धारित गन्तव्य मुक्ति का
वे हैं श्रमण अरिजय ॥

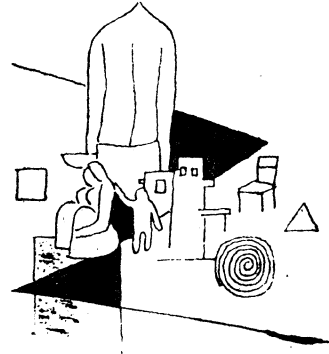
जो पाँचों इन्द्रियों की लालसाओं
के फंदे से बाहर है, जो कृषि आदि बाह्य
तथा रागद्वेष, क्रोध, मान, आदि
अभ्यन्तर परिग्रह का त्यागी है, और
ज्ञान-ध्यान/तप के लिए समर्पित है वह
सच्चा गुरु (सद्गुरु) है ।

इदमेवेदृशं चैव तत्त्वं
नान्यन्न चाऽन्यथा ।
इत्यकम्पाऽऽयसांभोवत्
सन्भागोऽसंशया रुचिः ॥११॥

दूर नहीं हो सकता क्षण-को
ज्यों कृपाण का पानी ।
वैसे रक्षित मन-मंजूषा में
अनुपम जिनवाणी ॥
तत्त्वों के शाश्वत स्वरूप में
जो रहता निःशंकित ।
उसके अन्तस् में आगम-
निर्झरणी का जल संचित ॥

जिस प्रकार तलवार आदि की धार
पर रखा पानी (आव/टेम्पर) उसके खण्ड-
खण्ड हो जाने पर भी यथारूप बना रहता
है, उसी तरह सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के
विषय में 'इनका लक्षण यही है, ऐसा ही है,

और तरह का नहीं है'-ऐसी अटल/अविचल
आस्था सम्यक्त्व का निःशंकित अंग है ।



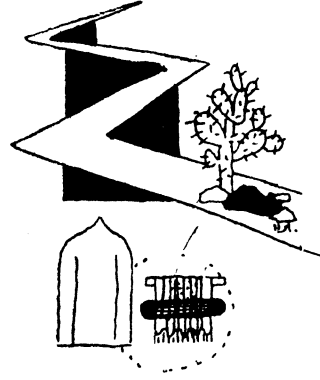
कर्म-परवशे साऽन्ते
दुःखैरन्तरितोदये ।
पाप-बीजे सुखेऽनास्था
श्रद्धाऽनाकांक्षणा स्मृता ॥१२॥

दीपक-लौ जैसे अस्थिर
हैं ये भौतिक आकर्षण ।
जीवन-नदिया के तट सुख-दुख
नश्वर चपल विलक्षण ॥
तुहिन-कणों-जैसे लौकिक सुख
इनमें क्या भरमायें ?
आकांक्षा छोड़ें, जीतें मन,
आगे पाँव उठायें ॥

इन्द्रिय-सुख शुभ कर्म के अधीन,
नश्वर, शारीरिक, तथा मानसिक दुःखों
से मिश्रित पाप के कारण हैं, तथा इनका
समागम क्षणवर्ती है, अतः इनमें आसक्ति
न रखना, इनके प्रति विरक्त रहना निःकां-
क्षित सम्यक्त्व है ।

स्वभावतोऽशुचौ काये
रत्नत्रय-पवित्रिते ।
निर्जुगप्सा गुण-प्रीति-
र्मता निर्वाचिकित्सिता ॥१३॥

रत्नत्रय से देह अपावन भी
पावन बन जाती ।
ग्लानि-रहित आँख श्रावक की
नहीं रूप पर जाती ॥
देह-रूप देवालय में
उसको दिखता परमेश्वर ।
संस्कृत ही उठते उसकी
हृद् वीणा के सातों स्वर ॥



यह शरीर मलमूत्र आदि अपवित्रताओं का आकलन है, किन्तु यदि इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्र्य की प्राप्ति हो जाए तो यही महान् पवित्र भी है; अतः इसकी अपावनताओं पर ध्यान न दे कर केवल यह मनुष्य शरीर ही मोक्षसाधक है, अन्य देवादिक शरीर नहीं की अनुभूति के साथ रत्नत्रय में प्रीति रखना निर्विचिकित्सा है ।

कापथे पथि दुःखानां
कापथस्थेऽप्यसम्मतिः ।
असम्पृक्तिरनुत्कीर्तिर-
मूढादृष्टिरुच्यते ॥१४॥

संसृति-पथ आरूढ़ मनुज
सुख और शान्ति कब पाता ?
ज्ञान चरित्र कुपंथ मलिन से
जुड़ जाता जब नाता ॥
भ्रान्ति-निवारक तत्त्वबोध से
ज्ञानचक्षु खुलते हैं ।
रहित-भूढ़ता से तन-मन के
घर-आँगन खिलते हैं ॥

मिथ्यादर्शन आदि तथा इनके समर्थकों/
अनुगामियों की मन से, वचन से,
और काया से प्रशंसा न करना अमूढ-
दृष्टित्व है ।

स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य
बालाऽशक्त-जनाऽऽश्रयाम् ।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति
तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥१५॥

करें उपेक्षा मोक्षमार्ग की
बालक और बुद्धि-में-भ्रान्त ।
मोक्षमार्ग शाश्वत मंगल पथ
रंच मात्र कब हुआ अशान्त ?
इस पथ की गौरव-गरिमा को
जो जन करते हैं रक्षित ।
सत्पुरुषों की भाषा में वे
होते ये चन्दन-चर्चित ॥

हित/अहित के विवेक से शून्य तथा
व्रतादि करने में असमर्थ प्राणियों द्वारा
रत्नत्रय, या उसके आराधक के प्रति
आरोपित दोष, अथवा की गयी निन्दा को
अप्रकट रखना उपगूहन है ।

दर्शनाच्चरणाद्वाऽपि
चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः
स्थितीकरणमुच्यते ॥१६॥

दर्शन ज्ञान चरित्र-मार्ग में
भूल-भटक जो होते म्लान ।
उन्हें सुपथ पर अविचल करना
स्थितिकरण की है पहिचान ॥

भीतर युद्ध, प्रतिक्रिया बाह्य
होते अद्भुत युद्ध यहीं ।
मोक्ष-पथ में दूरी-अंकन के
प्रस्तर-प्रालेख नहीं ॥

तीव्र कषाय, कुसंगति, रोग, दरिद्रता,
मिथ्योपदेश, अथवा मिथ्यादृष्टियों के
चमत्कारिक भ्रुतावों में आ कर जो जीव
सम्यग्दर्शन, या सम्यक्चारित्र से विचलित
हो उन्हें पुनः उसी में सुस्थिर/सुदृढ़
करना स्थितिकरण है ।

**स्वयूच्यान्प्रति सद्भाव-
सनाथाऽपेतकैतवा ।**

**प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं
वात्सल्यमभिलष्यते ॥१७॥**

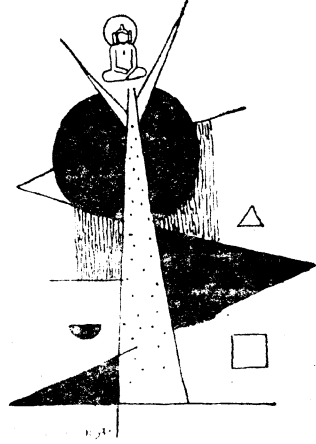
दर्शन ज्ञान चरित्र-रत्न के
प्रति जिनकी आस्था अनुपम ।
वे हैं सभी परस्पर परिजन
कहता करुणामय आगम ॥
जो समानधर्मी के प्रति
निर्मल निश्छल व्यवहार करे ।
वात्सल्य का संपोषण कर
जीवन का शृंगार करे ॥

वीतराग के अनुगामी भुनि, आर्थिका,
श्रावक, श्राविका, तथा सम्यग्दृष्टि की
सरल हृदय, निष्कपट चित्त से स्तुति,
नमस्कृति, दान, उच्चस्थान, उपकरण
आदि से उनका आदर-सत्कार वात्सल्य है ।

**अज्ञान-तिमिर-व्यापितस्
अपाकृत्य यथायथम् ।
जिनशासन-माहात्म्य
प्रकाशः स्यात्प्रभावना ॥१८॥**

तिमिर-घिरा जग ज्योतिष करता
जैसे किरणों का रपर्श ।

१३८/श्रावकाचार विशेषांक



वैसे जग-के-आंगन-में
फैलाये जिनवाणी उत्कर्ष ॥
जन-मंगल की लिखें ऋचाएँ
समयसार के गायेँ गान ।
आत्मोन्नयन लोकमंगल का
है प्रभावना अंग महान् ॥

पूजा/तप आदि के विषय में अज्ञानवश
फैली भ्रान्तियों को समीचीन उपायों से
दूर कर पूजा/तप की यथायोग्य स्थिति
प्रतिपादित/प्रकट करना प्रभावना है ।

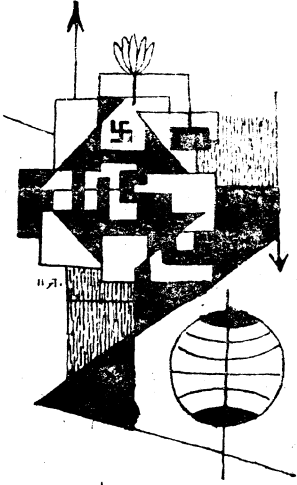
**तावदंजनचौरोऽङ्गै
ततोऽनन्तमती स्मृता ।
उद्दायनस्तृतीयेऽपि
तुरीये रेवती मता ॥१९॥**

**ततो जिनेन्द्रभवतोऽन्यो
वारिषेणस्ततः परः ।
विष्णुश्च वज्रनामा च
शेषयोर्लक्षतां गताः ॥२०॥**

सम्यग्दर्शन की चर्चा में
कीर्ति-कलश कुछ मिलते ।

जिनकी गाथाएँ सुन कर
अभिनव संदर्भ निखरते ॥
अंजन अनन्तमती
उदायन और रेवती रानी ।
विष्णु बज्र की, वारिषेण की
कथा सुखद कल्याणी ॥

अंजन चोर (निःशंकित), अनन्तमती
(निःकांक्षित), उदायन राजा (निर्वि-
चिकित्सा), रेवती (अमूढदृष्टित्व),
जिनेन्द्रभक्त सेठ (उपगूहन), वारिषेण
(श्रेणिक-पुत्र) (स्थितिकरण), मुनि विष्णु-
कुमार (वात्सल्य) तथा वज्रकुमार मुनि
(प्रभावना) सम्यक्त्व के लिए प्रसिद्ध हैं ।



नाऽङ्गहीनमलं छेतुं
दर्शनं जन्म-सन्ततिम् ।
न हि मन्त्रोऽक्षर-न्यूनो
निहन्ति विषवेदनाम् ॥२१॥

न्यून अंग सम्यग्दर्शन
कब होता सम्यग्दर्शन ?
इसी हेतु वह काट न पाता
जन्म-मरण-भव-बन्धन ॥

मात्रा शब्द स्थूलित मन्त्र
कब हरता विष की पीड़ा ?
वस्तु-व्यवस्था का क्रम निश्चित
यथा प्रकृति-की-क्रीड़ा ॥

जैसे अक्षरन्यून मन्त्र सर्पदंश की पीड़ा
को दूर करने में असमर्थ होता है, उसी
प्रकार एक भी अंग से हीन होने पर सम्यग्दर्शन
भी संसार-परिभ्रमण से मुक्त कराने
में अशक्त होता है । परिपूर्ण सर्वांगपूर्ण
सम्यग्दर्शन ही सार्थक है / हो सकता है ।

आपगा-सागर-स्नानम्
उच्चयः सिकताऽश्मनाम् ।
गिरिपातोऽग्निपातः
च लोकमूढं निगच्छते ॥२२॥

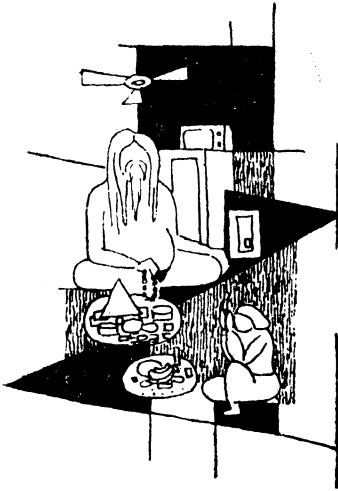
कर्म-कलुष अणुमात्र न धुलता
सरिता-सागर-जल से ।
अर्थहीन संचय है यह सब
सिकता प्रस्तर छल से ॥
गिरि से गिरना, दहन अग्नि में,
लोकमूढता-लक्षण ।
सम्यक् श्रमण नहीं करता
इन दुष्कृत्यों का वर्तन ॥

धर्मलाभ, या स्वकल्याण मान कर
नदी, समुद्र आदि में स्नान करना, बालूरेत
या पत्थर की ढेरियाँ लगाना, पर्वत से
गिरना, और आग में जलना इत्यादि
लोकमूढताएँ हैं - अन्धविश्वास हैं । इनसे
बचना चाहिये; किन्तु कायशुद्धि, भवन-
निर्माण, तथा प्रमादपूर्वक ऐसा होने पर
वह मूढता नहीं है ।

वरोपलिप्सयाऽऽशावान्
राग-द्वेषमलोभसाः ।
देवता यदुपासीत
देवतामूढमुच्यते ॥२३॥

राग-द्वेष जिनके जीवन में
आते-जाते प्रतिक्षण ।
उन देवों से विनय, याचना
देवमूढ़ता-लक्षण ॥
कर्मों के अनुरूप जगत् में
फैला सुख-दुख-क्रन्दन ।
तू है शुद्ध प्रबुद्ध स्वयं-में-
सक्षम, कर परिवर्तन ॥

पुत्रप्राप्ति, रोगमुक्ति, या धनलाभ-
जैसे लौकिक लाभों के लिए रागी/द्विषी
देवताओं की पूजा-आराधना देवमूढ़ता है ।



सग्रन्थाऽऽरम्भ-हिसानां
संसारऽऽवर्त-वर्तिनाम् ।
पाषण्डिनां पुरस्कारो
ज्ञेयं पाषण्डि-मोहनम् ॥२४॥

लोक-मार्ग संसार-चक्र में
उलझा जिनका जीवन ।
उद्यम में आरंभ परिग्रह
हिसा करते नर्तन ॥
पुरस्कार सम्मान उन्हीं का
नियतमूढ़ता-लक्षण ।
चाहे नग्न श्रमण हो वह,
या श्रेष्ठि, कृषक, या बुधजन ॥

१४०/श्रावकाचार विशेषांक

जो सग्रन्थ हैं (निग्रन्थ नहीं हैं), आरम्भ
सहित हैं, हिंसा में प्रवृत्त हैं, संहार के
गोरखधंधे में फँसे हुए हैं, ऐसे पाषण्डियों
का जो आदर-सत्कार है, वह पाषण्डि-
मूढ़ / गुरुमूढ़ता है । यहाँ पाषण्डी का अर्थ
उस साधु से है जो पाप-खण्डन की दृष्टि
से संपन्न है—पापं खण्डयति इति पाषण्डी
अर्थात् सत्साधु । (आज इसका अर्थ उलट
गया है । यह है— ढोंगी, आडम्बरग्रस्त,
धूर्त, लम्पट । स्वामी समन्तभद्र के युग में
यह प्रथम अर्थ में ही प्रयुक्त होता था) ।

ज्ञानं पूजां कुलं जाति
बलमृद्धिं तपो वपुः ।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं
स्मयमाहर्गतस्मयाः ॥२५॥

ज्ञान प्रतिष्ठा वंश जाति बल
पर जो जन होते हर्षित ।
धन तप शोभन काया में जो
मोहित मुग्ध समर्पित ॥
जनश्रुति है, इतिहास-विदित है
गर्व पतन का कारण ।
मद मदिरा का ही रूपान्तर
भटकाता जो प्रतिक्षण ॥

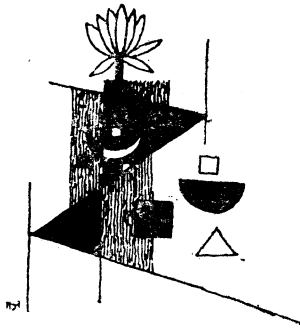
ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि,
तप, और देह — इन आठों का आश्रय ले कर
जो गर्व / दर्प करता है, आप्तपुरुष / मद-
रहित पुरुष उन्हें मद कहते हैं ।

स्मयेन योजन्यान्त्येति
धर्मस्थान् गविताशयः ।
सौज्येति धर्ममात्मीयं
न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥२६॥

धर्म बिना-धर्मों-के ऐसे
ज्यों बिन पानी मीन ।

धर्मी की आधार-शिला पर
टिकता धर्म-प्रवीन ॥
निज समान धर्मी के प्रति
जो रखता हो कुविचार ।
समझो तो वह मूढ़ काटता
बैठा जिस तरुडार ॥

जो गर्व के वशीभूत रत्नत्रयरूप धर्म
में स्थित धार्मिकों की, तथा आत्मधर्म की
अवमानना करता है, वह निश्चय से
अपने ही गुणधर्म की अवज्ञा करता है;
क्योंकि यह एक ध्रुव सत्य है कि धार्मिकों
के बिना धर्म का अस्तित्व संभव नहीं है ।



यदि पाप-निरोधो-
ऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम् ।
अथ पापान्नवोऽस्त्यन्य
सम्पदा किं प्रयोजनम् ॥२७॥

रत्नत्रय-निधि पाप-निरोधक
यदि सुयोग मिल पाये ।
अन्य सिद्धियाँ प्राप्ति-हेतु
क्यों भटके, क्यों अकुलाये ?
घन जन परिजन इष्टमित्र सब
मरघट तक के साथी ।
इनसे आगे साथ जीव के
चले कर्म की थाती ॥

यदि किसी के पास पापनिरोध के
लिए रत्नत्रयनिधि है तो फिर उसे अन्य
किसी सम्पदा की क्या आवश्यकता है ?

और यदि किसी के पास पापान्नव (मिथ्या-
दर्शनादि) हैं तो फिर अन्य पार्थिव/
लौकिक सम्पदाओं की क्या सार्थकता है ?
वे तो कालान्तर में नष्ट होंगी ही ।

सम्यग्दर्शन-सम्पन्नमपि
मातंगदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्म
गूढाऽङ्गाराऽन्तरौजसम् ॥२८॥

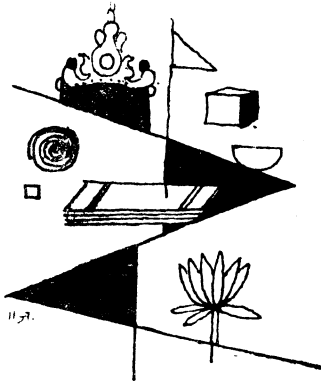
सम्यग्दर्शन गुण विशेष
जो भी धारण करता है ।
चाण्डाल हो भले जन्म का
जग जगमग करता है ॥
आप्त कहें, ज्यों बुझी राख
के भीतर के अंगारे ।
हैं प्रकाश के वंशज वे सब
जो सम्यक् दृग् धारे ॥

जो व्यक्ति सम्यग्दर्शन से समृद्ध, या
संपन्न है, वह चाण्डाल-पुत्र होने पर भी
देवोपम है । उसकी स्थिति उस अंगारे की
तरह है जो बाहर से राख से ढँका है किन्तु
अंतरंग में तेज और प्रकाश से युक्त है ।

श्वाऽपि देवोऽपि देवः
श्वा जायते धर्म-किल्बिषात् ।
काऽपि नाम भवेदन्या
सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम् ॥२९॥

पाप-पुण्य की इस जीवन में
फैली अद्भुत माया ।
देव पाप से श्वान
पुण्य से स्वर्ग श्वान ने पाया ॥
धर्म-साधना से जिसने भी
आत्म-चदरिया धोई ।
अनुपम शब्दातीत संपदा
क्या पाता हर कोई ?

मनुष्य तो मनुष्य एक कुत्ता भी धर्म के प्रताप से देवत्व प्राप्त कर सकता है । इसी तरह धर्म, या धर्मात्मा के तिरस्कार के कारण देव भी कुत्ता हो सकता है । वस्तुतः इस श्लोक में यह स्पष्ट किया गया है कि ऐश्वर्यादि से वंचित धर्मात्मा भी सम्मान्य होता है; यहाँ तक कि ऐसा जीव पशु भी हो तो भी वह आदर के योग्य है ।



भयाऽऽशा-स्नेह-लोभाच्च
कुदेवाऽऽगम-लिङ्गिनाम् ।
प्रणामं विनयं चैव
न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥३०॥

निर्देशित करते आये
सर्वज्ञ सदैव वचन में ।
भय आशा मद लोभ प्रीति
आये न कभी जीवन में ॥
इनके कारण कुगुरु कुदेव कुलिंग
नमन जो करते ।
कभी न सद्दर्शन-आभा से
उनके प्राण पुलकते ॥

शुद्ध/परिपूर्ण सम्यग्दृष्टियों को चाहिये कि वे भय, आशा, स्नेह, या लोभ के वशीभूत हो अहितकारी देव, शास्त्र, और गुरु को प्रणाम आदि के रूप में आदर-सत्कार न दें ।

१४२/श्रावकाचार विशेषांक

दर्शनं ज्ञान-चारित्र्यात्-
साधिमानमुपाश्नुते ।
दर्शनं कर्णधारं तन्-
मोक्षमार्गं प्रचक्षते ॥३१॥

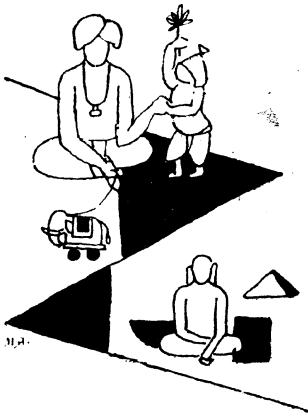
दर्शनं ज्ञान चरित में
दर्शनं कर्णधार खेवटिया ।
जगत-सिन्धु से मोक्ष-पुलिन तक
ले जाता वह नैया ॥
मुक्त जीव के चरण-चिह्न
युग-युग तक पूजे जाते ।
प्रस्तर भी उनकी अनुकृतियाँ
पा कर हैं मुस्काते ॥

सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की अपेक्षा सम्यग्दर्शन उत्कृष्टता को प्राप्त है, अतः मोक्षमार्ग में इसे कर्णधार (खेवटिया) कहा गया है ।

विद्या-वृत्तस्य संभ्रति-
स्थिति-वृद्धि-फलोदयाः ।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे
बीजाऽभावे तरोरिव ॥३२॥

बिना बीज के वृक्ष
वृक्ष के बिना फलों की आशा ।
सिकता-में-स्निग्धता पाने
की कैसी विकट दुराशा ?
दर्शन-बीज बीज-से-उगे
ज्ञान-वृक्ष लहराते ।
सहज वृक्ष की शाखाओं पर
फल चरित्र मुस्काते ॥

जिस तरह बीज के न होने पर वृक्ष की उत्पत्ति, वृद्धि, और फल-सम्पत्ति नहीं बनती, उसी तरह सम्यक्त्व की अनुपस्थिति में सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि तथा फल-सम्पदा नहीं बनती ।



गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो
निर्मोहो नैव मोहवान् ।
अनगारो, गृही श्रेयान्
निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥३३॥

अनासक्त निष्पक्ष गृही भी
सीढ़ी मोक्ष चढ़ा है ।
भोह-तिमिर-आच्छादित मुनि-मन
योजन दूर खड़ा है ॥
उसका वेश और वाणी भी
मुक्ति-मार्ग-में छल है ।
निज के प्रति यदि वर्तन उसका
नहीं हुआ निश्चल है ॥

निर्मोही गृहस्थ मोक्षमार्गी है, किन्तु
भोहग्रस्त गृहत्यागी मुनि मोक्षमार्गस्थ
नहीं है; जो भी गृहस्थ मिथ्या-दर्शन-रहित
सम्यग्दृष्टि है वह दर्शनमोह-से-युक्त मिथ्या-
दृष्टि मुनि से श्रेष्ठ है ।

न सम्यक्त्व-समं किञ्चित्
त्रैकाल्ये त्रिजगत्पयि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व
समं नाऽन्यत्तनुभूताम् ॥३४॥

ऊर्ध्वं मध्य पाताल लोक में
सिर-मणि सम्यग्दर्शन ।
तीन लोक में सदा
अमंगलकारी मिथ्यादर्शन ॥
मिथ्यादर्शन चारों गति में
यात्रा करवाता है ।
आत्म-विहग जन्मान्तर के
पिंजरे में बंध जाता है ॥

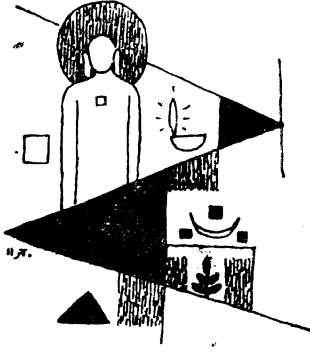
त्रिकाल और त्रिलोक में अन्य कोई
ऐसी वस्तु नहीं है जो सम्यक्त्व के समान
हो, देहधारियों के लिए श्रेयरूप हो, और
न ही ऐसी कोई अन्य वस्तु है जो मिथ्यात्व
के समान अहितरूप हो ।

सम्यग्दर्शनशुद्धा
नारक-तिर्यङ्-नपुंसक-स्त्रीत्वानि ।
दुष्कुल-विकृताऽल्पायु-
दरिद्रतां च व्रजन्ति नाऽप्यव्रतिकाः ॥३५॥

सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ
श्रेष्ठता की है यह पहिचान ।
तिर्यक् नरक नपुंसक गति
से रखता यह अनजान ॥
सौम्य देह मिलती है
निर्धन, अल्प आयु नहीं होती ।
सम्यग्दर्शन जीवन-सागर
का है दुर्लभ मोती ॥

जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध हैं, वे अव्रती
होते हुए भी नरक, तिर्यंच गति को तथा
नपुंसक एवं स्त्री पर्याय को प्राप्त नहीं
होते और न निन्द्य कुल को, अंगों की विक-
लता को, अल्पायु को तथा दरिद्रता को
ही प्राप्त होते हैं ।

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१४३



ओजस्तेजो-विद्या-वीर्य-यशो
 वृद्धि-विजय-विभव-सनाथाः ।
 महाकुला महार्था मानवतिलका
 भवन्ति दर्शनपूताः ॥३६॥

सम्यग्दर्शन-युक्त पुरुष
 होते विद्या के स्वामी ।
 कीर्ति पराक्रम विभव
 विजय होते उसके अनुगामी ॥
 धर्म अर्थ और काम मोक्ष
 के बनें शिरोमणि साधक ।
 कोई भी अवरोध पन्थ में
 कभी न बनता बाधक ॥

सम्यग्दर्शन से जिनकी आत्मा पवित्र
 हुई है वे ऐसे मानव-तिलक होते हैं, जो
 ओज, तेज, विद्या, वीर्य, यश, वृद्धि, और
 विभव से युक्त होते हैं, महाकुल और महार्थ
 (महारत) होते हैं ।

अष्ट-गुण-पुष्टि-नुष्टा
 दृष्टि-विशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टा ।
 अमराऽप्सरसां परिषदि
 चिरं रमन्ते जितेन्द्रभक्ताः स्वर्गे ॥३७॥

सम्यग्दृष्टि जीव भक्त प्रभु के
 सुरलोक निलय में ।

१४४/श्रावकाचार विशेषांक

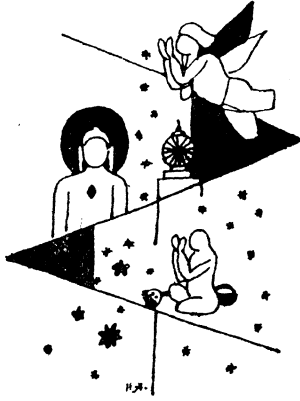
परम दिव्य इन्द्रिय-सुख पाते
 हैं जीवन की लय में ॥
 अष्ट ऋद्धियों-सहित कान्तियुत
 देह उन्हें मिलती है ।
 मानस में सुख-की-कलिका
 मुस्कान-लिये खिलती है ॥

सम्यग्दर्शन की विशेषता को प्राप्त
 जिनोपासक अष्ट गुणों से तथा पुष्टि
 से संतुष्ट और अतिशय शोभा-संपन्न होते
 हुए चिरकाल तक देव-देवांगनाओं की
 सभा में रमण करते हैं ।

नव-निधि-सप्तद्वय-रत्नाधीशाः
 सर्वभूमि-पतयश्चक्रम् ।
 वर्तयितुं प्रभवन्ति सप्तदशः
 क्षत्र-मौलि-शेखर-चरणाः ॥३८॥

नवनिधि चौदह रत्नों की
 आभा में प्राण पुलकते ।
 सम्राटों के मणि-जटित मुकुट
 उनके चरणों में झुकते ॥
 चक्र-प्रवर्तन अतुल शौर्य
 जिनके जीवन की थाती ।
 सम्यग्दृष्टा चक्रवर्ति की कथा
 सहज मिल जाती ॥

जो निर्मल सम्यग्दर्शन को धार
 करने वाले हैं, वे नवनिधियों और चौदह
 रत्नों के अधिपति और सर्वभूमि के स्वाम
 होते हुए चक्र को प्रवर्तित करने में सक्ष
 होते हैं तथा उनके चरणों में राजाओं व
 मुकुट-किरीट झुकते हैं ।



अमराऽसुर-नर-पतिभिः
यमधर-पतिभिश्च नूतपादाऽम्भोजाः ।
दृष्ट्या सुनिश्चिताऽर्था
वृषचक्रधरा भवन्ति लोक-शरण्याः ॥३९॥

तत्त्वज्ञान श्रद्धान जीव
सम्यग्दृष्टि होते हैं ।
चक्र-प्रवर्तक निश्चय ही
तीर्थकरण होते हैं ॥
पादपद्म में सुर-सुरेन्द्र
तक नतमस्तक होते हैं ।
गणधर करते कीर्तिगान
जग-जीव शरण होते हैं ॥

जिन्होंने अनेकान्तदृष्टि से अर्थ का
भलीभाँति निश्चय किया है, ऐसे सम्यग्-
दृष्टि जीव धर्मचक्र के धारक तीर्थकर
होते हैं, जिनके पादपद्म में राजाओं के
भुकुट किरिटी झुकते हैं ।

शिवमजरमरुजमक्षयमव्यावाधं
विशोक (म)भय(म)शंकम् ।
काष्ठागतसुख-विद्या-विभवं
विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः ॥४०॥

रंचमात्र दुख और न भय है ।
रोग शोक-से-रहित निलय है ॥
भय क्षय का भी नाम नहीं है ।
अवरोधों का काम नहीं है ॥
शाश्वत अटल मोक्षपद होता ।
शब्दातीत जहाँ सुख होता ॥
सम्यग्दर्शन जिन्हें शरण है ।
उन्हें मुक्ति सुख-स्वयंवरण है ॥

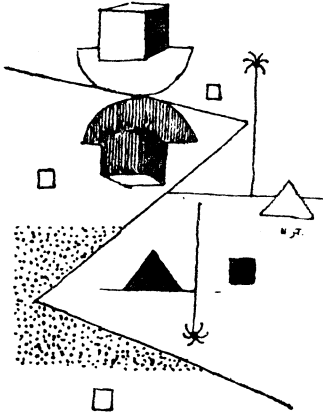
जो सम्यग्दर्शन की शरण में हैं, वे
उस शिवपद को भी पहुँचे हैं, जो जरा-
से-रहित है, रोग-से-मुक्त है, क्षय जहाँ
अनुपस्थित है, तथा विविध प्रकार की
बाधाओं / व्यवधानों का प्रवेश जहाँ
निषिद्ध है, जो शोक से मुक्त है, भय से
रहित है, शंका से शून्य है, सुख और ज्ञान
की विभूति के परमोत्कर्ष को लिये हुए है,
और जहाँ द्रव्यभावरूप कर्म-कल्मष का
अभाव है ।

देवेन्द्र-चक्र-महिमानममेयभानं
राजेन्द्र-चक्रमवनीन्द्र-शिरोऽर्चनीयम् ।
धर्मेन्द्र-चक्रमधरीकृत-सर्वलोकं
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरूपेति भव्यः ॥४१॥

तीर्थकर के चरण-कमल में
देवेन्द्रों के झुकते मस्तक ।
स्वर्णकिरीट चक्रवर्ती के
आराधन में आते पग तक ॥
पृथ्वी पर सर्वज्ञ देव का
दुँढ़े से उपमान नहीं है ।
मोक्ष परम उपलब्धि शब्द की
जिससे कब पहिचान बनी है ॥

जिनेन्द्र में भक्ति रखने वाला भव्य
सम्यग्दृष्टि देवेन्द्रों के समूह की अपरिमित
महिमा को, राजाओं द्वारा नमस्कृत
चक्रवर्तियों के चक्ररत्न को, तथा समस्त
लोक को अपना उपासक बनाने वाले
धर्मेन्द्र-चक्र को उपलब्ध कर शिवपद को
प्राप्त करता है ।

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/१४५



अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं
विना च विपरोतात् ।
निःसन्देहं वेद यदाहुः
तज्ज्ञानमागमिनः ॥४२॥

वस्तु-स्वरूप
अक्षरशः
ज्यों-का-त्यों / शत-प्रतिशत
न कम, न अधिक
समीचीन, संतुलित / याथातथ्य
जैसा-का-तैसा
असंदिग्ध, निःसंशय
उतर आये, प्रज्ञा पर;
तत्त्व की कसीटी एकमात्र यही है
ज्ञाताओं, दृष्टाओं ने
आगम में / वस्तु की / इबारत यह
लिख दी है ।

यथावस्थित वस्तुस्वरूप को, वस्तु के
व्यक्तित्व को जो न्यूनता और विकलता-से-
रहित, अतिरिक्तता और अधिकता-से-
रहित, विपरीतता-से-रहित, सन्देह-से-
रहित यथारूप जानता है अथवा उस रूप
जो उसका जानना है, आगमज्ञ उसे
सम्यग्ज्ञान कहते हैं ।

प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं
चरितं पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधि-समाधि-निदानं
बोधति बोधः समीचीनः ॥४३॥

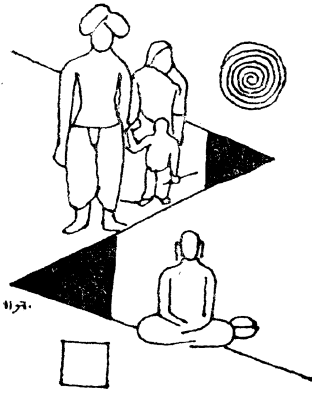
आगम-अनुयोगों में है
सिरमौर प्रथमानुयोग ।
धर्म अर्थ काम मोक्ष की कथा
कथा के माध्यम से परमार्थ योग ॥
अनुपम अद्भुत तीर्थकर-कथा
हृदय को करती सदा पवित्र ।
शलाका पुरुषों के अभिराम
विमल मिल जाते सभी चरित्र ॥
रत्नत्रय और ध्यान का कोष
वास्तव में प्रमानुयोग ।
काम-भोग-राग-कथा सुन-सुन
छूटते काम, भोग, भव-रोग ॥

पुण्य के साधनरूप तथा बोधि और
समाधि की प्राप्ति में कारणरूप जो अर्था-
ख्यान हैं, चरित्र और पुराण हैं, वह
प्रथमानुयोग है; इस प्रथमानुयोग को जो
जानता है वह सम्यग्ज्ञान है ।

लोकाऽलोक-विभक्ते
युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च ।
आदर्शमिव तथा मतिरवैत
करणानुयोगं च ॥४४॥

चारों गतियों का भ्रमण चक्र
फिर सृष्टि-पटल का संवर्तन ।
सम्यक् दृग् करता आलोकन
जैसे कोई निर्मल दरपन ॥
लोकालोक विभाजन क्षण-का
करता सम्यक् ज्ञाता ।
इस विधि से करणानुयोग भी
सम्यग्ज्ञान कहाता ॥

जो लोक[अलोक के विभाग का, काल-
परिवर्तन का, और चारों गतियों का दर्शन
की तरह प्रकाशक है, वह करणानुयोग है;
उसे जो जानता है वह भी सम्यग्ज्ञान है ।



गृहमेध्यनकाराणां
चारित्र्योत्पत्ति-वृद्धि-रक्षाङ्गम् ।
चरणानुयोग-समयं
सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥४५॥

जिसमें गृही और मुनियों के
आचारों का वर्णन ।
उद्भव और विकास चरण की
रक्षा का दिग्दर्शन ॥
सम्यक् रूप ज्ञान हों सारे
विधिविधान यमनियम सुगम ।
निकष चरण-अनुयोग कि जिस पर
परखा जाता संयम ॥

गृहस्थों और गृहत्यागी मुनियों के
चरित्र के उद्भव, उसके विकास और उसकी
रक्षा के अंगस्वरूप / कारणभूत अथवा
इन तीन अंगों को लिये हुए जो शास्त्र
आत्मानुसंधान की दिशा में प्रवृत्त है वह
सम्यग्ज्ञान है ।

जीवाऽजीवसुतत्त्वे
पुण्याऽपुण्ये च बन्ध-मोक्षौ च ।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुत-
विद्याऽऽलोक माऽऽतनुते ॥४६॥

द्रव्यानुयोग
दीपकः जिसकी वाती अकम्प/निष्कम्प ।
प्रकाश में जिसके
दिखते स्पष्ट/असंदिग्ध नौ तत्त्व ।
जीव अजीव आस्रव बंध संवर
निर्जरा मोक्ष पाप पुण्य सब ।
जो देता
विस्तार भावश्रुत को
वह है द्रव्यानुयोग ।

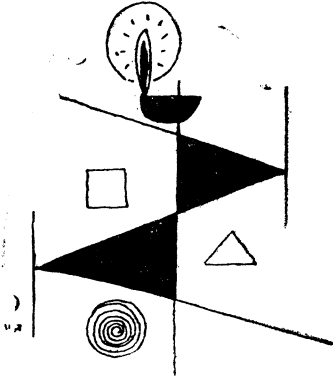
जो जीव और अजीव तत्त्वों को,
पुण्य और पाप को, तथा बन्ध और मोक्ष
को, और बन्ध के कारण/आस्रव तथा
मोक्ष के कारण/संवर-निर्जरा को भी
प्रकाशित/आलोकित करने वाला दीपक
है, वह द्रव्यानुयोग है ।

मोह-तिमिराऽपरहरेण
दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः ।
राग-द्वेष-निवृत्त्यै चरणं
प्रतिपद्यते साधुः ॥४७॥

तिरोहित हुआ मोहगत तिमिर
उदित सम्यग्दर्शन आलोक ।
जगा तत्क्षण सम्यग्ज्ञान
राग-परिणतियों का अवसान ॥
मुक्ति-गंतव्य साधना-हेतु
चरित्र धारण करना अम्लान ।
तभी सार्थक है सम्यग्दृष्टि
तभी सार्थक है सम्यग्ज्ञान ॥

मोहान्धकार के दूर होने पर सम्यग्दर्शन
की उपलब्धि के साथ सम्यग्ज्ञान-को-प्राप्त
साधु रागद्वेष-की-निवृत्ति के लिए सम्यक्-
चारित्र्य को अंगीकार करता है ।

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१४७



राग-द्वेष-निवृत्तिः
 हिंसादि निवर्तना-कृपा भवति ।
 अनपेक्षिताऽर्थवृत्तिः
 कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥४८॥

राग-आच्छादित अन्तःकरण
 अमावस छायी रहती पास ।
 राग से होते ही निवृत्त
 शिथिल होते पापों के पास ।
 टूटते रागद्वेष स्वयमेव
 छूटते हिंसा-पाप-विकार ।
 अपेक्षा अर्थ-बिना कोई
 करे क्यों राजा की मनुहार ?

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और
 अपरिग्रह की आचरण-रूप आराधना क्यों
 की जाती है ? इसलिए ताकि रागद्वेष
 की दुष्प्रवृत्ति से निवृत्त हुआ जा सके ;
 उससे छूटटी मिल सके । संसार में ऐसा
 कोई व्यक्ति नहीं है जो बिना किसी
 प्रयोजन के कोई काम करता हो । लोग
 राजाओं की सेवा क्यों करते हैं ? स्पष्टतः
 अर्थोपार्जन के लिए ।

हिंसाऽनृत-चौर्येभ्यो
मैथुनसेवा-परिग्रहाभ्यां च ।
पाप-प्रणालिकाभ्यो
विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥४९॥

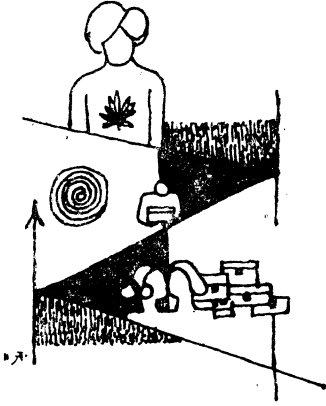
पराये प्राणों का उपघात
 अस्तु जब वाणी का आधार ।
 किसी की सम्पद् की चोरी
 वासना संचय पाप-विचार ॥
 त्यागना पाँचों पापों का
 परम ज्ञानी का शुभ आचार ।
 पालना इनकी करने से
 हृदय के मिटते सकल विकार ॥

हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म, तथा
 परिग्रह पाप के स्रोत हैं । इनसे विरक्त
 होना सम्यग्ज्ञानी का चरित्र है ।

सकलं विकलं चरणं
तत्सकलं सर्वसंग-विरतानाम् ।
अनगाराणां, विकलं
सागाराणां ससंगानाम् ॥५०॥

सकल चारित्र विकल चारित्र
 अपेक्षा से निःसृत दो रूप ।
 बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह-रहित
 श्रमण-चर्या के हैं अनुरूप ॥
 सकल चारित्र श्रमण-श्रृंगार
 विकल सागारों का आधार ।
 आचरण के बल पर है खड़ा
 असल में यह सारा संसार ॥

चारित्र के दो भेद हैं : सकल और
 विकल । सकल चारित्र में बाह्य/अभ्यन्तर
 परिग्रह का परिपूर्ण त्याग होता और
 विकल में अंशतः । सकल का परिपालन
 गृहत्यागी (मुनि) करते हैं और विकल
 का श्रावक/गृहस्थ । इन्हें क्रमशः महाव्रत
 और अणुव्रत भी कहा जाता है ।



गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणु-
गुण-शिक्षा-व्रतात्मकं चरणम् ।
पञ्च-त्रि-चतुर्भेदं त्रयं
यथासंख्यमाख्यातम् ॥५१॥

अणु/गुण/शिक्षा में सुविभक्त
श्रावकाचरण त्रिविध प्रकार ।
पाँच अणु चार शिक्षा गुण तीन
बनाते श्रावक का आचार ॥
समायोजित इन सबके बीच
गृही के जीवन का संचार ।
भव्य जीवों के जीवन का
यही करते अनुक्षण उपकार ॥

गृहस्थों का चारित्र त्रिविध है । यह
पाँच अणुव्रतों, तीन गुणव्रतों तथा चार
शिक्षाव्रतों से बनता है ।

प्राणातिपात-वितथव्याहार-
स्तेय-काम-मूर्च्छाभ्यः ।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यः
व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥५२॥

परायी साँसों करना नष्ट
असत् से जिह्वा का रंगना ।
बिना स्वीकृति लिये पराई
वस्तु का कौशल से हरना ॥
मूर्च्छा काम परिग्रह से
विरक्त जो भी जन होते हैं ।
थूल अणुव्रत को वे निर्बाध
अरुक साँसों में बोते हैं ॥

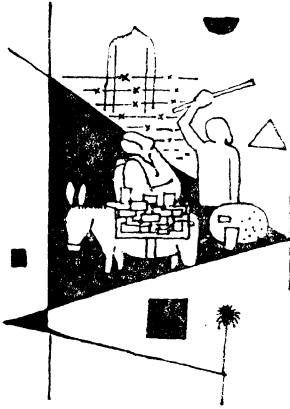
हिंसा, झूठ, चौरकर्म, अब्रह्म, तथा
मूर्च्छा परिग्रह से स्थूलतः (मोटे रूप में)
विरक्त होना अणुव्रत है ।

संकल्पात्कृत-कारित
मननाद्योग-त्रयस्य-चर-सत्वान् ।
न हिनस्ति यत्तदाहुः
स्थूल-वधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥

निपुणों ने
प्रज्ञों ने
आचार्यों ने
अहिंसा व्रत की
इबारत यों की है :
हिंसा/न करो, न करवाओ, न सराहो ।
ऐसा न मन से करो, न तन से, न शब्द से ।
त्रस जीवों को मत मारो
उनके प्रति करुणा-के-सिन्धु बनो
ताकि
तुम्हारे द्वार पर मंत्री मंगलाचरण करे
शुभकामना राँगोली रचे
और करुणा बंदनवार बाँधे ॥

मन से, वचन से तथा काया से
इरादतन (जानबूझकर) हिंसा न तो
करना और न करवाना और न किये/
करवाये जाने का अनुमोदन/समर्थन करना
'अहिंसा अणुव्रत' का परिपालन है ।

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१४९



छेदन-बन्धन-पीड़नम्-
अतिभारारोपणं व्यतीचाराः ।
आहारवारणाऽपि
च स्थूलवधाद्व्युपरतेः पंच ॥५४॥

जीवों का छेदन-भेदन-बंधन
पीड़न-उत्पीड़न-संपीड़न ।
अतिभारारोपण पशुओं पर
सानी-पानी से अपवंचन ॥
जंजीरों से कसना उनका
लालच-में-भर करना शोषण ।
कहते हम जिसे अहिंसा व्रत
यह सीधा उसका उल्लंघन ॥

अंग-छेदन, बन्धन, पीड़न, अधिक
भार लादना तथा होते हुए भी यथावश्यक
आहार न देना उससे किसी प्राणी को
बंचित रखना अहिंसा अणुव्रत के अतिचार
हैं। अतिचार निर्धारित व्रत-सीमा के
उल्लंघन को कहते हैं।

स्थूलमलीकं न वदति
न परान्वादयति सत्यमपि विपदे ।
यत्तद्वदन्ति सन्तः
स्थूलमृषावाद-वैरमणम् ॥५५॥

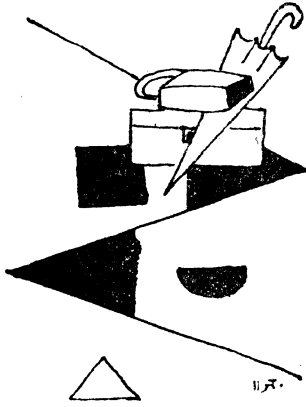
न स्वयं करें मिथ्या भाषण
न प्रेरित करके बुलवायें।
जो वाणी विपदा का कारण,
अभिव्यक्त करें न करवायें॥
है आप्त-वचन सत्याणुव्रत
इसमें सज्जन करते विचरण।
सागर यदि मर्यादा तोड़े
तो उसको भी लगता दूषण ॥

संकल्पपूर्वक/स्वेच्छा से (जानबूझ
कर), न खुद झूठ बोलना, न अन्यो से
बुलवाना तथा जो सत्य-कथन किसी
विपत्ति का कारण बनता हो उसे न स्वयं
बोलना और न बुलवाना 'सत्य अणुव्रत'
का पालन है।

परिवाद-रहोऽभ्याख्या
पैशून्यं कूटलेखकरणं च ।
न्यासाऽपहारिता च
व्यतिक्रमाः पंच सत्यस्य ॥५६॥

कटु शब्द नहीं निकलें मुख से
ना भेद पराये करें प्रकट ।
चुगली से कूटलेख निंदा से
मन पर बोझ न हो संकट ॥
और न किसी धरोहर के
न्यासी हो कर हम करें हरण ।
सच से सम्बन्धित अणुव्रत के
ये व्यतिक्रम इनका संवर्जन ॥

अपशब्द बोलना, गोपनीय तथ्यों
को प्रकट करना, चुगली खाना, झूठे/
जाली दस्तावेज बनाना, प्रामाणिक
दस्तावेजों में हेरफेर करना, और दूसरों
की अमानत/धरोहर का अपहरण करना
सत्य अणुव्रत का उल्लंघन है।



निहितं वा पतितं वा
सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टम् ।
न हरति यन्न च दत्ते
तदकृश-चौर्यादुपारमणम् ॥५७॥

ढँकी वस्तु, पथ में पाया धन
रखी वस्तु या विस्मृतभान ।
अथवा किसी अदत्त द्रव्य का
लेना, कह अपनी पहिचान ॥
यह शोषण; सामाजिक जीवन
तक में वृत्ति यह उपेक्षणीय ।
इससे विरत रहें जीवन-भर
है अचौर्य व्रत यों करणीय ॥

दूसरों की ढँकी या रखी या अन्य
किसी स्थिति में आरक्षित सम्पत्ति को
बिना दिये न लेना 'अचौर्य अणुव्रत' का
अनुपालन है ।

चौरप्रयोग-चौराऽर्थान्दान-
बिलोप-सदृशसम्मिश्राः ।
हीनाधिकविनिमानं
पंचाऽस्तेये व्यतीपाताः ॥५८॥

चौर्यकला में प्रेरित करना,
या चोरी का लेना द्रव्य ।

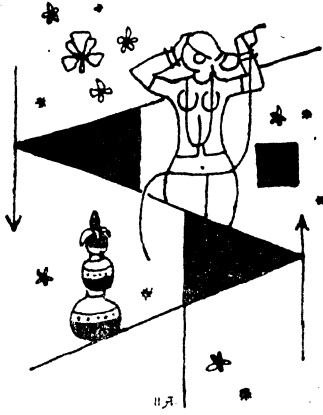
वस्तु पराई के विनाश से
दूषित करना निज भवितव्य ॥
मूल्यवान वस्तु में करना
न्यून मूल्य, मिश्रित, प्रतिकूल ।
मापतौल के बाँटों में
स्वेच्छा से रखना कोई भूल ॥
ये अचौर्य व्रत के दूषण हैं
बनें न जीवन के भूषण ।
या फिर फिसल जाएँगे कर से
अर्जित यश के मंगल क्षण ॥

चोरी, या चौरकर्म में प्रवृत्त होने में
सहयोग देना, यह जानते हुए भी कि 'फलाँ
माल चोरी का है' खरीदना, दूसरों की
सम्पत्ति में आग लगाना या उस पर गैर-
क्रानून कब्जा करना/बताना, अनुचित
नफे के लिए असल वस्तु में सस्ती/समान
रंगढंग की वस्तु का अपमिश्रण (मिलावट)
करना 'अचौर्य अणुव्रत' का व्यतिपात
अर्थात् उल्लंघन है ।

न तु परदारान् गच्छति
न परान् गमयति पापभीतेर्यत् ।
सा परदारनिवृत्तिः
स्वदारसंतोषनामाऽपि ॥५९॥

परनारी के प्रति आकर्षण
या परनारी-संग-रमण ।
स्वयं करे, न करे प्रबन्धन
अन्यजनों के हेतु-रमण ॥
साधक डरता पापवृत्ति से
रखता शुद्ध सकल जीवन ।
परस्त्री से निवृत्ति-
निजदारा में संतोष गहन ॥

पापभय से परनारी का न तो स्वयं
सेवन करना न अन्यो को तदन्तरूप प्रेरित
करना परदारानिवृत्ति, स्वदारसंतोष,
अथवा 'ब्रह्मचर्य' अणुव्रत है । इस व्रत
के नाम तथा नामान्तरों में से भी व्रत का
आशय स्पष्ट झलक जाता है ।



अन्यविवाहाऽऽकरणाऽ

अनङ्ग क्रीडा-वितृत्व-विपुलतृषः ।

इत्वारिकागमनं चाऽस्मरस्य

पंच व्यतीचाराः ॥६०॥

स्व स्वजनों से भिन्न अन्य
के व्याह रचाने का उपक्रम ।

नैसर्गिक अंगों को तज कर
अन्य लिंग के साथ रमण ॥

कुटिल नारि-संग भ्रमण/रमण कर
हृदय वासना-में-रंगना ।

स्वांग रचा काया वाणी से
जग-जन का रंजन करना ॥

परिणीता के संग काम की
अतिशय अभिलाषा रखना ।

कुलटा निजदारा सेवन-
अतिचारों से प्रतिपल डरना ॥

दूसरों को (अपने तथा परिजनों को छोड़) विवाह में सहयोग देना, स्वाभाविक अंगों को छोड़ अन्यों द्वारा काम-क्रीडा करना, शरीर तथा शब्द से कुचेष्टा करना, काम-भोग की अदम्य लालसा रखना, तथा कुलटा-व्यभिचारग्रस्त स्व-स्त्री का सेवन करना ये पाँच ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार/मर्यादा-उल्लंघन हैं ।

१५२/श्रावकाचार विशेषांक

धन-धान्यादि-ग्रन्थं

परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता ।

परिमितपरिग्रहः स्यादि-

च्छापरिमाण-नामाऽपि ॥६१॥

धन-सम्प्रति-ग्रहण-मर्यादा

सीमा निर्धारित करना ।

जितनी देह प्रमाण उसी के

अपनी चादरिया रंगना ॥

परिमित परिग्रह संग इसे

इच्छा-परिमिति भी कहते हैं ।

सीमा में रहते श्रावकगण

सीमा में ही चलते हैं ॥

धनधान्य/जमीन-जायदाद आदि परिग्रह को परिमित कर उनकी परिधि से बाहर के पदार्थों में आसक्ति का त्याग 'अपरिग्रह अणुव्रत' है । नामान्तर से इसे 'परिमित परिग्रह' तथा 'इच्छापरिमाण व्रत' भी कहते हैं ।

अतिवाहनाऽतिसंग्रह

विस्मय-लोभाऽतिभारवहनानि ।

परिमितपरिग्रहस्य च

विक्षेपाः पंच लक्ष्यन्ते ॥६२॥

लोभ-लाभ में पड़ कर करना

अधिकाधिक वाहन-उपयोग ।

अतिसंग्रह की हीनवृत्ति से

होता दूषण का संयोग ॥

उन्नति देख परायी व्यर्थ ही

मन में भरना विस्मय शोक ।

पशुओं पर अतिभार

बिगड़ता है इससे भी तो परलोक ॥

परिग्रह-अणुव्रत के अतिचार

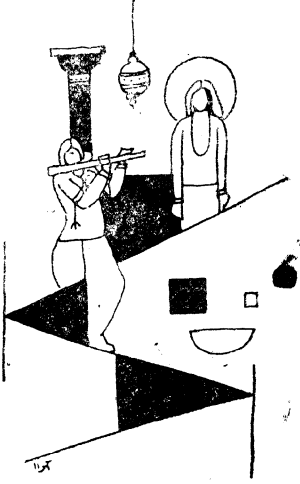
सम्भता होती है निष्प्राण ।

अधोगति में जाता है जीव

आत्मा पलपल होती म्लान ॥

अधिक लाभ उठाने की दृष्टि से वाहनों का उनमें जोते जाने वाले पशुओं का क्षमता से अधिक उपयोग करना, नष्ट

की मंशा से धनधान्यादि को काफी समय तक रोके रखना, विशिष्ट लाभ के होते हुए भी और अधिक लाभ की लालसा करना, लोभवश वाहनों पर क्षमता से अधिक भार लादना ये परिग्रह-परिमाण अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।



पंचाणुव्रतनिधयो
निरतिक्रमणा फलन्ति सुरलोकम् ।
यत्राऽवधिरष्टगुणाः
दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥६३॥

अणुव्रत निधियाँ हैं बहुमूल्य
मनुज को ले जातीं स्वर्लोक ।
विलक्षण अवधिज्ञान है दिव्य
पास आने देता कब शोक ?
ऋद्धियाँ छूतीं चरण सदैव
फैलता है सुख का आलोक ।
ऋद्धियों के संग दिव्य शरीर
भोगता स्वर्गलोक के भोग ॥

अतिचार-रहित अणुव्रतों का पालन निधिरूप है। इनके निरतिचार अनुपालन से स्वर्गलोक मिलता है, वह स्वर्गलोक जहाँ अवधिज्ञान है, अष्टगुण (अणिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य,

ईशित्व, वशित्व, कामरूपित्व) तथा दिव्य देह सहज प्राप्त है।

मातंगो धनदेवश्च
वारिषेणस्ततः परः ।
नीलो जयश्च सम्प्राप्ताः
पूजाऽतिशयमुत्तमम् ॥६४॥

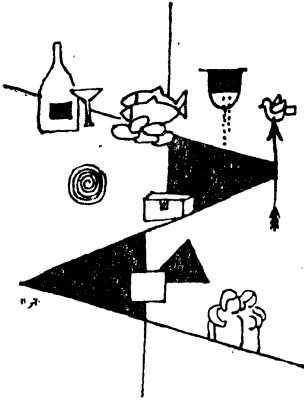
कथाओं में अंकित आदर्श
यशस्वी हुआ यथा चाण्डाल ।
नीली धन वारिषेण की कथा
श्रवण कर उन्नत होता भाल ।
परिग्रहव्रत में जय नरराज
व्रतों के विमल कीर्ति-आधार ।
कथाएँ इन सबकी सुन-गुन
हृदय में होता हर्ष अपार ॥

धनश्री-सत्यघोषौ च
तापसाऽऽरक्षकावपि ।
उपाख्येयास्तथाश्म
अश्विनवनीतीयथाक्रमम् ॥६५॥

धनश्री ने पति-वध किया
पतन का वहाँ खुला तब द्वार ।
कहा जब सत्यघोष ने असत्
नर्क बन गया सकल संसार ॥
तपस्वी चौर्यकला में दक्ष
मुख्य रक्षक करते व्यभिचार ।
लोभ से मरा सेठ नवनीत
घृणा से घूर रहा संसार ॥

यमपाल चाण्डाल, सेठ धनदेव, श्रेणिक-पुत्र वारिषेण, वणिकपुत्री नीली, और राजपुत्र जयकुमार क्रमशः, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह के लिए विख्यात हैं; दूसरी ओर सेठानी धनश्री, पुरोहित सत्यघोष, तपस्वी अपसर, कोतवाल यमदण्ड, तथा लुब्धदत्त (श्मश्रुनवनीत) क्रमशः हिंसा, असत्य, चौर्य, कुशील, और परिग्रह को ले कर कुख्यात हैं।

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/१५३



**मद्य-मांस-मधु-त्यागैः
सहाऽणुव्रत-पंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणं
श्रमणोत्तमाः ॥६६॥**

मांस मधु मदिरा गहन अभक्ष्य
करे श्रावक इनका परिहार ।

मांस मधु हिंसा के हैं द्वार
जगता मद्य वासना-आग ॥

दिव्य यह तीर्थकर-उपदेश
त्याग दे ऐसे हीन विचार ।

पांच अणुव्रत को धारण करे
जगत् में फैले सद्व्यवहार ॥

मद्य, मांस, मधु, हिंसा, झूठ, चौर्य, कुशील तथा परिग्रह इन आठों के त्याग को श्रावक के अष्ट मूलगुण कहते हैं; अन्य शब्दों में तीन मकारों का त्याग और पाँच अणुव्रतों के परिपालन से श्रावक का व्यक्तित्व बनता है ।

**दिग्ब्रतमनर्थदण्डव्रतं च
भोगोपभोगपरिमाणम् ।
अनुबृंहणाद्गुणानाम्
आख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥६७॥**

त्रिव्रतों अणुव्रत करते समृद्ध
बढ़ाते मूल गुणों का मान् ।
गमन-सीमांकन है दिग्ब्रत
अनर्थविधि संयम का सम्मान ॥
भोग-परिभोग सभी के हेतु
अचल संयम है अटल विधान ।
प्रमाद से विरत निरलस श्रावक
रखेगा उसका प्रतिपल ध्यान ॥

दिग्ब्रत, अनर्थदण्डव्रत तथा भोगोप-भोग-परिमाण व्रत गुणव्रत हैं। इन तीनों से अष्ट मूलगुणों का गुणवत्ता/उत्कृष्टता समृद्ध होती है; वे अधिक तेजोमय बनते हैं। इनके गुणव्रत कहे जाने का एक कारण यह भी है।

**दिग्बल्यं परिगणितं
कृत्वाऽतोऽहं वहिर्न यास्यामि ।
इति संकल्पो दिग्ब्रतमा—
मृत्युणुपाप-विनिवृत्त्यै ॥६८॥**

दसों दिशि में सीमाएँ बाँध
रखेगा श्रावक अपने पाँव ।

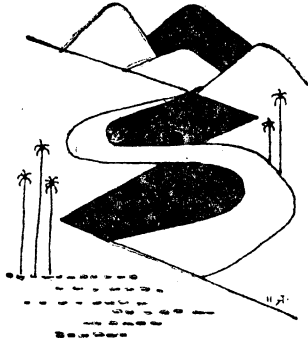
खींच लेगा वह ठोस लकीर
नहीं चूकेगा कोई दाँव ॥

सूक्ष्मतर हिंसा-रक्षा-हेतु
बनेगा दिग्ब्रत मूलाधार ।

इस तरह क्रमशः कर अभ्यास
बन पड़ेगा संयत संसार ॥

सूक्ष्म पापों से बचने के लिए दसों दिशाओं में गमनागमन की मर्यादा निश्चित करना और तदनुसार जीवन-भर उसके बाहर न जाना 'दिग्ब्रत' है ।

† 3 गुणव्रत हैं—दिग्ब्रत, अनर्थदण्डव्रत, भोगोपभोग परिमाण व्रत ।



**मकराकर-सरिदटवी
गिरि-जनपद-योजनानि मर्यादाः ।
प्राहुर्दिशां दशानां
प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥६९॥**

अतिप्रसिद्ध सरिता सागर
वन पर्वत की सीमा बाँधें ।
एक बार सीमा निर्धारित
करके फिर न इन्हें लाँघे ॥
दसों दिशाओं में इस विधि से
सीमाएँ अंकित करना ।
दिग्ब्रत की मर्यादाओं का
सावधान पालन करना ॥

दिग्ब्रत में सुप्रसिद्ध समुद्र, नदी, पर्वत,
शहर और योजना आदि को सीमांकन के
के लिए निश्चित किया जाता है; यथा—
उत्तर में हिमालय, दक्षिण कन्याकुमारी
श्यादि ।

**प्रवर्धेर्बहिरणुपाप—
तिविरतेर्दिग्ब्रतानि धारयताम् ।
चमहाव्रतपरिणतिम्
णुब्रतानि प्रपद्यन्ते ॥७०॥**

गमनागमन बना सीमा में
हिंसा से मन विमुख हुआ ।

अणुव्रत पंच महाव्रत में मन
प्रतिपल यों सन्नद्ध हुआ ॥
निश्चित मर्यादा के बाहर
जाता हो जब नहीं चरण ।
तो समझो सब कुछ अनुकूलित
सहज-सरल गन्तव्य-वरण ॥

अंकित मर्यादा से बाहर दिग्ब्रती के
स्थूल/सूक्ष्म दोनों प्रकार के पाँचों पापों का
सर्वथा त्याग हो जाता है, तदनुसार उस
अपेक्षा से उसके अणुव्रत महाव्रत-जैसे हो
जाते हैं, किन्तु इसके अंतरंग घटना न होने
से कषाय की सत्ता बनी रहती है तदनुसार
इन्हें परमार्थ से महाव्रत नहीं माना जा
सकता ।

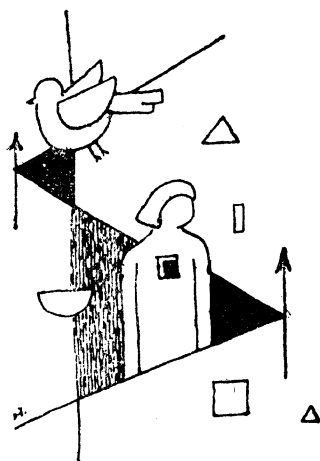
**प्रत्याख्यान-तनुत्वान्—
मन्दतराश्चरणमोह-परिणामाः ।
सत्वेन दुरवधारा
महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥७१॥**

दिग्ब्रत धारक श्रावक के मन
अतिशय मंद कषाय रहीं ।
इतनी, जैसे वे हों ही न
घट में पहले व्यक्त कहीं ॥
इसीलिए अणुव्रत लगे अब
जैसे हुए महाव्रत खुद ।
किन्तु नहीं उनका यह दर्जा
क्या हम खो बैठें सुधबुध?

दिग्ब्रती के, महाव्रतों की घातक
प्रत्याख्यानावरण वषाय* इतनी मंद हो
जाती है कि उसके अस्तित्व की प्रतीति ही
नहीं होती, इसलिए उसके अणुव्रत उपचार
से महाव्रत प्रतीत होते हैं, तथापि उबत
कषाय की उपस्थिति के कारण उन्हें
महाव्रत कहना संभव नहीं है ।

* हिंसा आदि से विरवितरूप संयम का नाम
'प्रत्याख्यान' है । इस प्रत्याख्यान को जो देवते
हैं, नहीं होने देते वे 'प्रत्याख्यानावरण' हैं ।

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१५५



पंचानां पापानां

हिंसादोनां मनोवचःकायैः ।

कृत-कारिताऽनुमोदैः]

त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥७२॥

पाप पाँच हैं ।

हिंसा/अनृत/स्तेन/परिग्रह
और अब्रह्म

इनसे मुख मोड़े मन से, वाणी से,
काया से, जो

इन्हें करे न, करवाये भी नहीं
और न करे प्रशंसा कभी किये की
उस ऐसे अविचल पौरुष से
पाँच महाव्रत हैं गौरवान्वित ।

मन, वचन, काय तथा कृत, कारित,
अनुमोदना इन नौ संकल्पों से हिंसा आदि
पाँच पापों का सर्वथा त्याग 'महाव्रत' है ।
यह महान् आत्माओं के लिए ही संभव है ।

१५६/श्रावकाचार विशेषांक

ऊर्ध्वाऽधस्तात्तियम्
व्यतिपात- क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम् ।
विस्मरणं दिग्विस्मरण-
त्याशाः पंच मन्यन्ते ॥७३॥

अज्ञानी अंधा हो कर जब
करता है सीमा-विस्तार ।

निर्धारित सरहदें लांघ जब
करने लगता है संचार ॥

ऊपर नीचे अगल-बगल की
मर्यादाओं का ध्यान न हो ।

तो फिर दिग्भ्रत पूरा क्यों हो ?
कैसे क्यों अतिचार न हो ?

ऊपर, नीचे, दिशाओं-विदिशाओं
की मर्यादा का उल्लंघन, निर्धारित मर्यादा
में वृद्धि तथा सीमांकन का विस्मरण-
ये दिग्भ्रत के पाँच अतिचार हैं ।

अभ्यंतरं दिग्वधेर-

पार्थकेभ्यः सपापयोगेभ्यः ।

विरमणमनर्थदण्डव्रतं

विदुर्व्रतधराऽप्रप्यः ॥७४॥

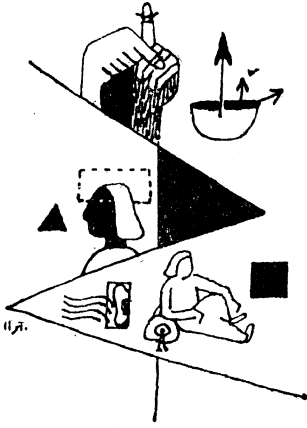
दिग्भ्रत की मर्यादाएँ तो
पहले ही निर्धारित-निश्चित ।

फिर यह मुख, यह यश, लोभ यह
मन को क्यों कर रहा कलंकित ?

छोड़ो इन्हें संभालो पूंजी
निजता को कर लो उद्धाटित ।

अनर्थदण्डविधि यही कि
व्यर्थता सार्थकता को करे न लोछित ॥

दिशाओं की मर्यादाओं के भीतर
प्रयोजन-रहित पापयोगों (स्रोतों) से
विरक्त होना 'अनर्थदण्डव्रत' है । यहाँ
प्रयोजन शब्द ध्यान देने योग्य है ।



पापोपदेश-हिंसादान
अपध्यान-दुःश्रुतीः पंच ।
प्राहुः प्रमादचर्याम्
अनर्थदण्डानदण्डधराः ॥७५॥

दिग्गत और अनर्थदण्डव्रत में
केवल फर्क यही है
एक परिधि से बाहर का दोषापहार है
और दूसरा
बनी परिधि के भीतर रह कर
मन का सघन
शीघन/संशोधन/परिष्कार है ।
पापों का उपदेश
ग्रहण हिंसा का
उसके उपकरणों का
मंशा बुरी
अहित पर का, उसकी पीड़ा का आयोजन
सुनना अशुभ/अमंगल
चर्या में आलस/मुस्ती
गफलत/प्रमाद/और लापरवाही
पाँच भेद जानो ये हैं
इस अनर्थदण्ड के ।

पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान,
दुःश्रुति, और प्रमादचर्या ये पाँच अनर्थ-
दण्ड हैं ।

तिर्यक्क्लेश-वणिज्या-
हिंसाऽऽरम्भ-प्रलंभनादीनाम् ।
कथा-प्रसंग-प्रसवः
स्मर्तव्यः पापोपदेशः ॥७६॥

पापोपदेश : ऐसा कथन जो
प्रेरित करे हिंसा को
परपीड़न को ।
ऐसे प्रसंग/ऐसे किस्से
जिनका सम्बन्ध पशुओं/पक्षियों/दास-
दासियों के
व्यापार-वाणिज्य से हो ;
पापोपदेश है ।
ऐसी कहानियाँ सुनाना/ऐसे दृष्टान्त देना
जिनसे सूचना मिलती हो कि
अमुक जगह दास-दासियाँ सस्ती हैं
या पशु-पक्षी विपुल हैं
या पशुओं की खरीद-फरोख्त फायदेमंद है
पापोपदेश है ।

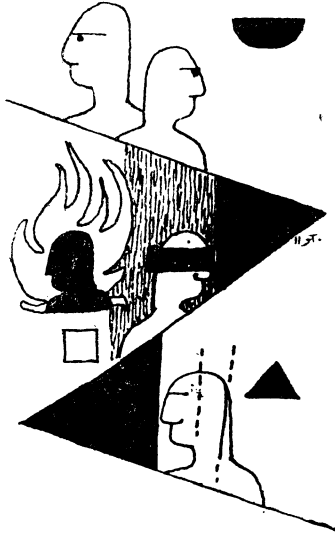
तिर्यचों के तथा क्लेश के व्यापार का ;
हिंसा, आरम्भ तथा छल आदि के/
उत्पादक/प्रेरक कथा-प्रसंगों का बार-बार
कथन पापोपदेश अनर्थदण्ड कहलाता है ।

परशु-रूपान-खनित्र
ज्वलनायुध-शृङ्गि-शृङ्खलादीनाम् ।
बधहेतूनां दान
हिंसादानं भ्रुवति बुधाः ॥७७॥

युद्ध के साधन जो शस्त्रास्त्र
दान देना वे निश्चित पाप ।
यही सब हिंसा के उपकरण
विश्व में फैलाते संताप ॥
यही बोते हिंसा के बीज
पलें जिनमें आँसू-उच्छ्वास ।
विज्ञान कहते हिंसादान
शान्त हो धरती का संवास ।

फरसा, तलवार, गेंती, कुदाली, अग्नि,
आयुध, विष, साँकल आदि वध-कारणों
(हिंसा के उपकरणों) का दिया जाना
'हिंसादान' अनर्थदण्ड है ।

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१५७



बध-बन्धच्छेदादे-
 द्वेषाद्वागाच्च परकलत्रादेः ।
 आध्यानमपध्यानं
 शासति जिनशासने विशदाः ॥७८॥

परनारी पर-परिजन के प्रति
 नित अपकर्ष ध्यान रखना ॥

वध/बन्धन/पीड़न/उच्छेदन
 में भी हर्ष प्रकट करना ॥

रागद्वेष की ये परिणतियाँ
 कहलातीं अपध्यान, प्रवीण !

न कुछ खोया, न कुछ पाया,
 चित्त व्यर्थ ही किया मलीन ॥

राग-द्वेष से अन्य की स्त्री, धनधान्यादि
 के नाश होने, मारे-पीटे जाने, बाँधे जाने,
 अंगच्छेदन, हराये जाने आदि का जो
 दुश्चिन्तन है उसे 'अपध्यान' अनर्थदण्ड
 कहा गया है ।

१५८/श्रावकाचार विशेषांक

आरम्भ-संग-साहस
 मिथ्यात्व-द्वेष-राग-मद-मदनः ।]
 चेतःकलुषयतां
 श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥७९॥

चित्र-विचित्र श्रवण से यह
 उज्ज्वल मन भी कलुषित होता ।
 रागद्वेष मिथ्यात्व परिग्रह
 मल मैथुन मन में बोता ॥
 दुःश्रुति यह कि शास्त्र-श्रवण से
 काम वासना बढ़े विकार ।
 बिना सिखाये, काम-वासना
 सीख रहा सारा संसार ॥

आरम्भ, परिग्रह, साहस, मिथ्यात्व,
 राग, द्वेष, मद, और विषय-भोग से चित्त
 को मलिन करने वाले शास्त्रों को सुनना
 'दुःश्रुति' अनर्थदण्ड है ।

क्षिति-सलिल-दहन-पवनारम्भं
 विफलं वनस्पतिच्छेदं ।
 सरणं सारणमपि च
 प्रमादचर्याप्रभाषन्ते ॥८०॥

है प्रमाद-चर्या यह साधक !
 व्यर्थ तोड़ना तरु, फल, फूल ।

सलिल अनिल संग, अनल धरा संग
 करना कार्य प्रकृति प्रतिकूल ॥

निरुद्देश्य पर्यटन भ्रमण
 फिर अन्यों को रखना साथ ।

वन वीरुध तरु लता पत्र छेदन
 है व्यर्थ प्रकृति आघात ॥

बिना किसी प्रयोजन के जमीन
 खोदने, जल बहाने, आग जलाने, हवा करने,
 वनस्पति तोड़ने, घूमने और घुमाने को
 'प्रमादचर्या' अनर्थदण्ड कहते हैं ।



कंदर्पं कौत्कुच्यं मौख्यर्यम्
अतिप्रसाधनं पंच ।
असमोक्ष्य चाऽधिकरणं
व्यतीतयोऽनर्थबंडकृद्विरतेः ॥८१॥

बिना प्रयोजन मन वच काया
तीनों से क्रीड़ा करना ।
काय-कुचेष्टा, भोग्य वस्तुओं का
अतीव संचय करना ॥
अर्थहीन शब्दों के द्वारा
करना व्यर्थ हास-परिहास ।
ये अतिचार अनर्थदण्ड व्रत के
त्यागें अनुकरण अभ्यास ॥

काम-विषयक तीव्रता के कारण
हैंसी-ठट्टा करते हुए अशिष्ट शब्द कहना,
शरीर की कुचेष्टा करते हुए अशिष्ट वचन
कहना, बकवास करना, आवश्यकता से
अधिक भोगोपभोग की सामग्री संचित करना,
और बिना किसी प्रयोजन के निरर्थक कार्य
करना अनर्थदण्डव्रत के ये पाँच अतिचार हैं ।

अक्षार्थानां परिसंख्यानं
भोगोपभोगपरिमाणम् ।
अर्थवतामप्यबधौ
राग-रतीनां तनूकृतये ॥८२॥

मर्यादाए निश्चित करके
परिणत कर दें अनुशासन में ।
भोगों की संख्या/गणना से
रागादिक क्षय हों क्षण में ॥
व्रत और नियम रक्खे जाते
अत्मोन्नयन की आशा में ।
भोगोपभोग होता सार्थक तब
ऋषि-मुनियों की भाषा में ।

राग के उद्रेक से होने वाली आसक्ति
को घटाने के लिए परिग्रह-परिमाण के
अन्तर्गत रोज-ब-रोज काम में आने वाले
इन्द्रियों के विषयों का निर्धारित समय तक
या जीवनपर्यन्त 'अमुक वस्तु इतनी रखूंगा
और अमुक इतनी रखूंगा' इस तरह का
परिमाण निश्चित करना 'भोगोपभोग
परिमाण' शिक्षाव्रत कहलाता है ।

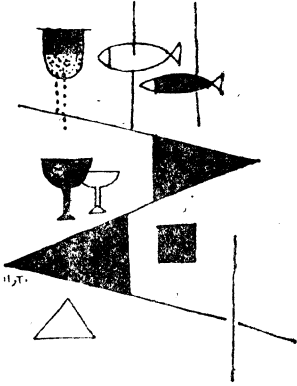
भुक्त्वा परिहातव्यो
भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः ।
उपभोगोऽशन-वसनप्रभृतिः
पाञ्चेन्द्रियोविषयः ॥८३॥

वस्तु-स्वरूप
दिन के उजाले की तरह स्पष्ट
और असंदिग्ध है ।
वही धर्म है । वही 'है' ।
भोगोपभोग की नियति भी
निर्धारित है ।
पदार्थ के पुनःपुनः भोगने की
प्रक्रिया जहाँ मौजूद है
वहाँ उपभोग है ;
किन्तु जहाँ यह प्रक्रिया
एक बार में ही खत्म है
वहाँ वह भोग है ।
जैसे—
वस्त्राभूषण उपभोग हैं,
भोजन, गंध आदि भोग हैं ।

जो पदार्थ बार-बार भोगने में/काम
में आता है वह 'उपभोग' है; यथा - कपड़े,

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१५९

गहने आदि; और जो पदार्थ एक बार भोगने के बाद फिर भोगने योग्य नहीं रहता वह 'भोग' कहलाता है; यथा-भोजन, माला आदि ।



त्रसहति-परिहरणार्थं
क्षौद्रं पिशितं प्रमाद-परिहृतये ।
मद्यं च वर्जनीयं
जिनरचरणौ शरणमुपयातैः ॥८४॥

श्रीजिनेन्द्र के चरण-कमल में
जो शरणागत होते भव्य ।
आजीवन मधु-मांस त्याग का
उनका होता है कर्तव्य ॥
त्रस जीवों की रक्षा के-हित
मांस-शहद त्यागे श्रावक ।
मदिरा मत्त बनाती तन-मन
आत्मसाधना में बाधक ॥

मधु और मांस के खाने से त्रस जीवों की हिंसा होती है और शराब पीने से त्रस-हिंसा के साथ मोह की भी उत्पत्ति होती है, अतः भोगोपभोग परिमाण व्रत के धारक को इन तीनों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये; यानी इनके परिमाण की नहीं, बल्कि इन्हें सर्वथा छोड़ने की बात है । ये सर्वथा वर्जनीय हैं ।

अल्पफल-बहुविधातान्
मूलकमाद्राणि शृङ्गवेराणि ।
नवनीत-निम्ब-कुसुम
कैतकमित्येवमहेयम् ॥८५॥

है त्याज्य सभी ये कंदमूल
अदरक मूली आलू गाजर ।
निम्ब-पुष्प कैतकी-पुष्प
नवनीत आदि सब जीवन-भर ॥
प्राप्ति शून्यवत् हिंसा अतिशय
भटकती जो जनम-जनम ।
अल्पत्याग से भी साधक के
जीवन में पलता संयम ॥

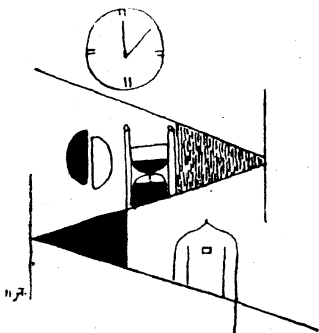
इसी तरह इस व्रत के धारक को ऐसे फलों को जिनके खाने में फल कम; किन्तु स्थावर हिंसा अधिक होती हैं (यथा-अदरक, मूली, गाजर, आदि जमीकंद; मक्खन, नौम-कैतकी आदि के फूल तथा इसी तरह की अन्य सारी वस्तुएँ उन्हें सर्वथा छोड़ देना चाहिये ।

यदनिष्टं तद्भ्रतपेद्यच्छाऽ-
नुपसेव्यमेतदपि जह्यात् ।
अभिसन्धिकृताविरति-
विषयाद्योग्याद्भ्रतं भवति ॥८६॥

जो विषतुल्य अनिष्ट भक्ष्य न
स्वाभाविक खाता उसे कौन ?
उसे ग्रहण करने की अनुमति में
खुद विवेक ही रहता मौन ॥
संकल्पित हो इष्ट वस्तु का
त्याग त्याग कहलाता है ।
धर्मशास्त्र के शब्दों में
वह संयम से बँध जाता है ॥

भोगोपभोग के जो पदार्थ अनिष्ट हों (शरीर में बाधा उत्पन्न करते हों तथा प्रकृति/समय के प्रतिकूल हों), उन्हें निवृत्ति का विषय बनाये अर्थात् छोड़ें;

तथा जो अनिष्ट होते हुए भी गर्हित हों (देश-राष्ट्र-समाज-कुटुम्ब की मर्यादा में न आते हों) उन्हें भी छोड़ें, क्योंकि योग्य संदर्भ में संकल्पपूर्वक जो विरक्ति होती है, वह 'व्रत' कहलाती है।



नियमः यमश्च विहितौ
द्वेधा भोगोपभोगसंहारात् ।
नियमो परिमितकालो
यावज्जीव यमो ध्रियते ॥८७॥

द्विविध भोगोपभोग के नियम
प्रथम है नियम, द्वितीय संयम ।
नियम यम धारण करते वही
पालते जो पूरा संयम ॥
समय की सीमा में जो बँधा
'नियम' की उसको संज्ञा प्राप्त ।
जिसे धारण करते आमरण
उसे 'यम' कहते हैं प्रभु आप्त ॥

भोगोपभोग परिमाण के संदर्भ में
त्याग दो प्रकार का माना गया है :
नियम, यम । जो त्याग नियत समय के

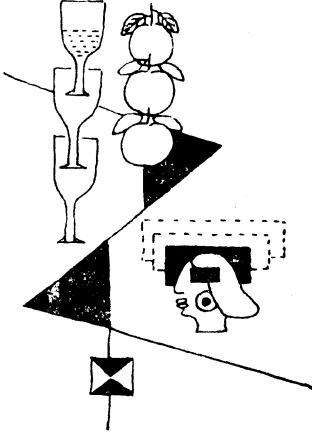
लिए किया जाता है वह 'नियम' और जो
जीवनपर्यन्त के लिए किया जाता है वह
'यम' कहलाता है ।

**भोजन-वाहन-शयन-स्नान-
षवित्राङ्ग-राग-कुसुमेषु ।
ताम्बूल-वसन-भूषण-
मन्मथ-संगीत-गीतेषु ॥८८॥**

**अद्य दिवा रजनी वा
पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा ।
इति काल-परिच्छित्या
प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥८९॥**

भोजन वाहन शयन स्नान ।
अलंकृति काम भोग गान ॥
ताम्बूल वस्त्र अथवा लेपन ।
उपभोग करें इनका जन-जन ॥
निशि दिन पक्ष मास ऋतु अयन,
सीमा निर्धारित कर फिर त्याग ।
घटे विषयों के प्रति स्वयमेव,
इन्द्रियों का क्रमशः अनुराग ॥

इस व्रत में भोजन, वाहन, शैया,
स्नान, सुगंध, अंजन, तिलक, पुष्प, पान,
वस्त्र, आभूषण, काम-भोग, संगीत, आदि
का घड़ी, पहर, दिन, रात, पक्ष, मास, दो
मास, छह मास तक के लिए त्याग किया
जाता है ।



**विषयविषयोऽपेक्षा-
नुस्मृतिरतिलौल्यमतितृषानुभवौ ।
भोगोपभोगपरिमा-
न्यतिक्रमाः पंच कथ्यन्ते ॥९०॥**

मन-दर्पण में विषय-वासना
स्मृति बन कर छाती ।

विषय भोगने की इच्छा
तब अनथक बढ़ती जाती ॥

भोग-समय अनुरक्ति असीमित
चित्तवृत्ति में बसती ।

विषय-वल्लरी उच्छेदन हित
नहीं कामना जगती ॥

भोगोपभोग-अतिचार उक्त
सब अर्हत् कहते छोड़ो ।

अणुव्रत अमृत-निर्झर है
इससे तुम नाता जोड़ो ॥

विषय-विष की उपेक्षा न करना,
मुक्त विषयों का बार-बार स्मरण
करना, भावी भोगों की अतिगूढ़तापूर्वक
इच्छा करना, प्रस्तुत विषयों में अतीव
लालसा रखना, नियतकालिक भोगोपभोगों

का सेवन करते हुए उन्हें अत्यधिक आसक्ति
से भोगना—ये भोगोपभोगपरिमाण के
पाँच अतिचार हैं ।

**देशावकाशिकं वा
सामयिकं प्रोषधोपवासो वा ।
वैध्यावृत्यं शिक्षाव्रतानि
चत्वारि शिष्टानि ॥९१॥**

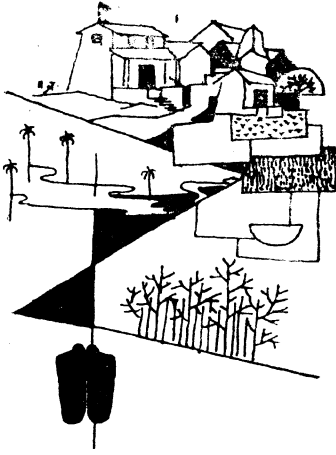
शिक्षाव्रत पालन कर श्रावक
बन सकता स्वयमेव श्रमण ।
लक्ष्य गहन/बहुमूल्य किन्तु
है मूल्यवान् भी प्रथम चरण ॥
देशावकाशिक सामायिक व्रत
संयम-से पालन करना ।
प्रोषध वैधावृत्य व्रतों को
उर-सिंहासन पर धरना ।

देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोप-
वास, तथा वैधावृत्य ये चार शिक्षाव्रत हैं ।

**देशावकाशिकं स्यात्काल-
परिच्छेदनेन देशस्य ।
प्रत्यहमणुव्रतानां
प्रतिसंहारो विशालस्य ॥९२॥**

इसे काल की मर्यादा में
प्रतिदिन वरण किया जाता ।
अनुदिन मर्यादा निर्धारित
इससे न्यूनता पाता ॥
देशावकाशिक संज्ञक व्रत को
जीवन-भर धारण करना ।
प्रतिपल प्रतिदिन प्रवहमान हो
जिससे संयम का झरना ॥

दिग्ब्रत में संकल्पित देश-काल की
विस्तृत मर्यादा को उत्तरोत्तर कम करना
(घटाना) देशावकाशिक शिक्षाव्रत है ।



गृह-हारि-ग्रामाणां
क्षेत्र-नदी-दाव-योजनानां च ।
देशावकाशिकस्य
स्मरन्ति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥१३॥

नियत ग्राम गृह वीथि नगर वन
योजन गिरि सरिता-पर्यन्त ।
गमन-आगमन का सीमांकन
देशावकाशिक यह जयवन्त ॥
विविध अन्य सीमा-निर्धारण
इसमें ही गर्भित होते ।
नियमों में बँध जीवन-मरुथल
प्रतिपल नव उर्वर होते ॥

इस व्रत में गमनागमन के क्षेत्र का
परिमाण किसी प्रसिद्ध घर, प्रसिद्ध वीथिका,
प्रसिद्ध ग्राम, प्रसिद्ध खेत, प्रसिद्ध नदी,
प्रसिद्ध जंगल और कुछ योजन (मील/
किलोमीटर) आदि तक यथाशक्ति किया
जाता है ।

संवत्सलरमृतुमयनं
मास-चतुर्मास-पक्षमूर्धं च ।
देशावकाशिकस्य
प्राहुःकालाऽर्वाधि प्राज्ञाः ॥१४॥

दिवस रात्रि, या पक्ष मास
विचरण की सीमा रखना ।
वर्षाऋतु स्थान मास में
कब कितना होगा चलना ?
समय मास नक्षत्रों से बँध
निश्चित मर्यादा करना ।
ऋषीश्वरों द्वारा व्याख्यायित
देशावकाशिक व्रत रखना ।

इस व्रत में काल की मर्यादा एक साल,
छह माह, चार माह, एक माह, पखवाड़ा,
एक नक्षत्र, या एक दिन आदि तक यथा-
क्षमता की जाती है ।

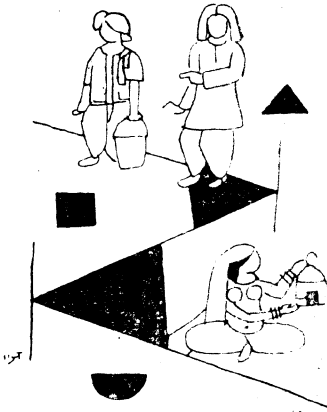
सीमान्तानां परतः
स्थूलेतर-पंचपाप-संत्यागात् ।
देशावकाशिकेन च
महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते ॥१५॥

व्रत धारण कर सीमा प्रतिदिन
भी यदि की जाती है क्षीण ।
थूल सूक्ष्म पापों से हटने
से मिट जाते पाप मलीन ॥
देशावकाशिक शिक्षाव्रत में
होते महाव्रत गर्भित ।
इसी भावना-वश मुनियों के
द्वारा यह इतना चर्चित ॥

देशावकाशिक व्रत की मर्यादा के
बाहर चूँकि देशावकाशिक व्रतधारी के
स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही पापों का अभाव
हो जाता है, अतः उसके अणुव्रत उस अपेक्षा
से महाव्रत-जैसे हो जाते हैं । यह कथन
निश्चय दृष्टि से नहीं, उपचार की दृष्टि
से है ।

प्रेषण-शब्दाऽऽनयनं
रूपाऽभिव्यक्ति-पुद्गलक्षेपौ ।
देशावकाशिकस्य
व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पंच ॥१६॥

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१६३



सीमा पार संदेशा देना
 इंगित करना बतियाना ।
 अथवा वांछित व्यक्ति वस्तु
 का सीमा बाहर से पाना ॥
 इंगित करना कंकर-क्षेपण
 सीमा-बाहर पत्राचार ।
 देशावकाशिक के ये/इतने
 आगम में वर्णित अतिचार ॥

खुद मर्यादा के भीतर रहते हुए निर्देश दे कर किसी व्यक्ति को मर्यादा के बाहर भेजना, मर्यादा से बाहर काम कर रहे व्यक्तियों को ताली, खाँसी आदि के ध्वनि-संकेतों से निर्देश देना, मर्यादा से बाहर की वस्तु को मर्यादा के भीतर मँगाना, मर्यादा से बाहर कार्यरत व्यक्तियों को हावभाव द्वारा निर्दिष्ट करना, मर्यादा के बाहर काम कर रहे व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित करने के लिए उन पर/उनकी ओर पत्थर, कंकर आदि फेंकना देशावकाशिक शिक्षान्नत के पाँच अतिचार हैं ।

आसमयमुक्ति मुक्तं
 पंचाऽघानामशेषभावेन ।
 सर्वत्र च सामयिकाः
 सामयिकं नाम शंसन्ति ॥९७॥

१६४/श्रावकाचार विशेषांक

नियत अवधि तक सीमा में ही
 या अंकित सीमा-बाहर ।
 मन वच तन से कृत कारित अनु-
 मोदित सीमा में रह कर ॥
 हिंसादिक पाँचों पापों से
 रहे विरत तब सामायिक ।
 आत्मज्ञान-विज्ञान-प्रदाता
 तीर्थंकर विभु हैं भाविक ॥

दिग्गत तथा देशन्नत की मर्यादा के भीतर और बार सर्वत्र सामायिक के लिए निर्धारित अवधि में मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमोदनपूर्वक पाँचों पापों का त्याग 'सामायिक' शिक्षान्नत है ।

मूर्ध्वरुह-मुष्टि-वासो-बन्धं
 पर्यंकबन्धनं चाऽपि ।
 स्थानामुपवेशनं वा
 समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥९८॥

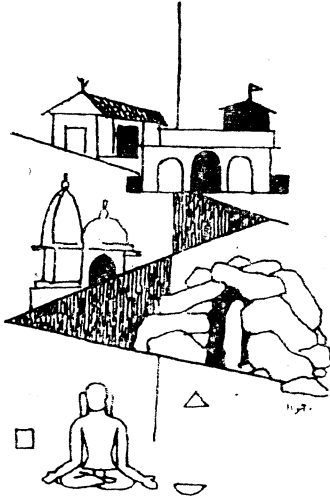
समय को जानते
 समयज्ञ नखशिख ।
 कौन है समयज्ञ ?
 जानता आगम परम जो ।
 और यह आगम
 भला क्या है ?
 रागद्वेष-विमुक्त
 खालिस^१ आत्मा का ज्ञान आगम है ।
 मूर्ध्वरुह^२-बन्धन
 बाँधना मुष्टि का
 पर्यंक-आसन वस्त्रबन्धन
 माप मन के
 निराकुलता चित्त की
 जब तक सधे
 तब तक
 समझना सार्थक इनको ।
 खड़े, बैठे किसी भी
 रूप में जैसे जहाँ हो

१. शुद्ध २. केश, चोटी

आत्म-निर्झर विमल-प्रांजल
बह रहा कलकल
निरंजन

और तू आस्वाद उसका चख रहा है ।
सुन ! निकट से कान में—
'सामायिक' यही है ।

जो समयज्ञ हैं / आगम और शास्त्र
के ज्ञाता हैं वे केशबन्धन, मुष्टिबन्धन,
वस्त्रबन्धन, पर्यकबन्धन पद्मासनादि की
स्थिति में खड़े हो कर, या बैठ कर
रागद्वेष आदि से रहित शुद्धात्मा का रसा-
स्वादन करते हैं, उसका अनुसंधान करते
हैं, उसे जानते हैं ।



एकान्ते सामायिकं
निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च ।
चैत्यालयेषु वाऽपि च
परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥१९॥

जहाँ न हो कोई व्यवधान
जहाँ हो अविरल सूनापन ।
कन्दरा पर्वत हो या वन
चैत्य हो या हो धर्म-भवन ॥
मुदित मन से सामायिक करे ।
आत्मिक सुख अन्तस् में भरे ॥
भीतर बैठा जो अविनश्वर ।
उसीके चिन्तन में तू ठहर ॥

यहाँ समय का अर्थ रागद्वेषरहित
शुद्धात्मा है ; किन्तु समयज्ञ का अर्थ
परमागम का विशेषज्ञ करना चाहिये ।
समयज्ञ अर्थात् वह जो सामायिक की बारी-
कियों को विस्तार से जानता है ।

वनों में, गह्रों में, चैत्यालयों में,
अथवा अन्य गिरि-कन्दरादि में जो
निराकुल/उपद्रव-रहित एकान्त स्थान हो
वहाँ प्रसन्न चित्त से सुस्थिर हो कर सामा-
यिक को समृद्ध करना चाहिये ।

व्यापार-वैमनस्याद्विनिवृत्याम्
अन्तरात्मविनिवृत्या ।

सामायिकं बध्नीयात्-

उपवासे चैकभुक्ते वा ॥१००॥

कायिक वाचिक मन के सारे
कोलाहल को तुम करो शान्त ।
दैनिक सामायिक यथासमय कर
निर्मल हो, हो शुद्ध कान्त ॥
सामायिक है ऐसा पारस
जिससे अणुव्रत होते सुवर्ण ।
वे बनते वामन से विराट
ज्यों-ज्यों तू करता आत्मवरण ॥

उपवास तथा एकासन के दिन शरीर
और मन की व्यग्रताओं से निवृत्त हो कर
अर्न्तर्जल्पादि* रूप संकल्प-विकल्प के
त्याग द्वारा सामायिक को सुदृढ़ करना
चाहिये ।

सामायिकं प्रतिदिवसं
यथावदप्यनलसेन चेतव्यम् ।
व्रतपंचक-परिपूरण-
कारणमवधानयुक्तेन ॥१०१॥

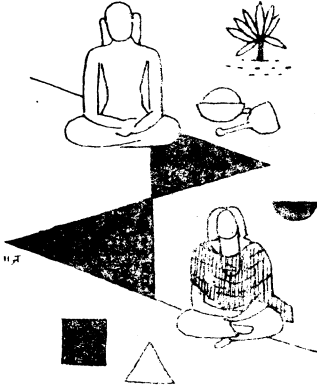
सामायिक अतिचार-मुक्त
करती पापों का नित विनाश ।
निरलस अणुव्रत-परिपालन से
संयम की मिलती है सुवास ॥

* भीतर-भीतर बातचीत, या आत्मसंभाषण ।

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/१६५

नियमित निश्चित सामायिक से
दैनंदिन सार्थक हो विकास ।
माँ जिनवाणी के अनुग्रह से
श्रावक पाता दिन-दिन प्रकाश ॥

न सिर्फ उपवास, या एकासन के दिन
ही वरन् प्रतिदिन अप्रमत्त और एकाग्रचित्त
से गृहस्थ को यथाविधि सामायिक करनी
चाहिये; क्योंकि सामायिक ही अहिंसादि
पाँच व्रतों की परिपूर्णता के लिए कारणभूत
है ।



सामयिके सारम्भाः
परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि ।
चेलोपसृष्टमुनिरिव
गृही तदा याति यतिभावम् ॥१०२॥

सामायिक में अणुव्रत-साधक
बाह्य परिग्रह से हो मुक्त ।
अंतरंग रागादि परिग्रह
त्यागे साधक हो संयुक्त*॥
आत्मध्यान में हो निमग्न
तो सम्यक् भाव शुद्ध होते ।
मुनि के अन्तस् के समान
श्रावक निर्मल/निश्छल होते ॥

सामायिक के समय कृषि आदि
आरम्भों के साथ-साथ भीतर-बाहर के
समस्त परिग्रहों का अभाव भी रहता है

*इंटीग्रेटेड, समरस ।

अतः सामायिक की इस निर्मल मनोदशा
में श्रावक की स्थिति चेलोपसृष्ट* मुनि-
जैसी होती है; अर्थात् यदि वह वस्त्र का
त्याग और कर दे तो उतनी अवधि के लिए
वह ठीक मुनि-जैसा हो जाए ।

शीतोष्ण दंशमशकं
परीषहमूपसर्गमपि च मौनधराः ।
सामयिकं प्रतिपत्त्वा
अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ॥१०३॥

सामायिक में अचल, मौन
धारण करना होता है इष्ट ।
सामायिक के अमर क्षणों में
कभी न होना पथ से भ्रष्ट ॥
शीत, उष्ण, लघु कीटों के
उपसर्गों में भी अचल रहे ।
मन वचन काया में स्थिर हो
नदी समय की सतत् बहे ॥

सामायिक में लीन (निमग्न) व्यक्ति
को मौन धारण कर मन, वचन, और काया
को अनुशासन में रखते हुए सर्दी-गर्मी/
डॉस-मच्छर आदि बाईस परीषह तथा
देव, मनुष्य और चिर्यच-कृत उपसर्गों को
सहन करना चाहिये तथा ऐसा करते हुए
अपने मन को पूरी तरह निराकुल और
अविचलित रखना चाहिये ।

अशरणमशुभमनित्यं
दुःखमनात्मानभावसामि भवम् ।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति
ध्यायन्तु सामयिके ॥१०४॥

विश्व जिसमें करता है वास ।
वहाँ फैला पग-पग संन्यास ॥
नहीं वह नित्य, न कोई शरण ।
उराता रहता प्रतिक्षण मरण ॥
श्रमण दुख का कहते हैं निलय ।
अचिर, आयु होती है विलय ॥

* उपसर्ग के कारण वस्त्र-ढँका (आच्छादित)
साधु ।

अचेतन है इसका पररूप ।
 अशुचि इसका ही एक विरूप ॥
 मोक्ष इससे बिलकुल विपरीत ।
 जगत् की वहाँ न कोई रीत ॥
 सामायिक में साधक रख ध्यान ।
 आत्मा का स्वधर्म विज्ञान ॥

सामायिक की प्रक्रिया में निमग्न
 श्रावक अनुप्रेक्षण करे कि वह जिस संसार
 में रह रहा है वह अशरण, अशुभ, अनित्य/
 क्षणवर्ती (पर्याय-दृष्टि से), दुःखदायक
 और पर-रूप है तथा मोक्ष इससे विपरीत
 अर्थात् शरण, शुभ, सुखपूर्ण और आत्म-
 स्वरूप है ।



वाक्कायमानसानां
 दुःप्रणिधानान्यनादराऽस्मरणे ।
 सामयिकस्याऽतिगमा
 व्यज्यन्ते पञ्च भावेन ॥१०५॥

मन में उभरे संकल्प-विकल्प
 देह साधक की स्थिर रहे ।
 मूल मन्त्रों का विस्मृत पाठ
 शब्द-संयम स्खलित रहे ॥
 सामायिक धारण करते समय,
 सामायिक में निष्ठा रहे ।
 पंच अतिचार सामायिक के
 नित्यप्रति इनसे दूर रहे ॥

वचन से विचलित होना, काया से
 असंयत होना, मन को आर्त-रौद्र ध्यान में
 डालना, सामायिक के प्रति अनुत्साह रखना
 उसे बोझ की तरह निपटाना, और सामा-
 यिक-पाठ/प्रक्रिया को भूल जाना ये सामा-
 यिक व्रत के पांच अतिचार हैं ।

पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः
 प्रोषधोपवासस्तु ।
 चतुरभ्यवहार्याणां
 प्रत्याख्यानं सदिच्छाभिः ॥१०६॥

अष्टमी चतुर्दशी शुभ दिवस
 तजे चारों व्रजित आहार ।
 प्रोषधापवास-व्रती साधक
 करे इस विधि समुचित व्यवहार ॥
 व्रतों की वांछा हो मन में
 उदित हो उनके प्रति संस्कार ।
 व्रतों के हैं अनेक सोपान
 बने उन सबका यह आधार ॥

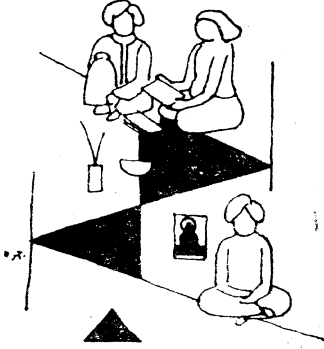
सदैव प्रत्येक चतुर्दशी और अष्टमी
 को व्रत-पालन की आंतरिक अभिलाषा
 से खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, और पेय रूप चारों
 आहारों का त्याग प्रोषधोपवास शिक्षा-
 व्रत है ।

पंचानां पापानामलं क्रिया
 आरम्भ-गन्ध-पुष्पाणाम् ।
 स्नानाऽञ्जननस्यानाम्-
 उपवासे परिहर्ति कुर्यात् ॥१०७॥

दृष्टि काया वाणी के सुमन
 कहाँ से इनमें भरा पराग ?
 सुख तो आत्मा की है वस्तु
 जिसे पाता केवल वैराग्य ॥
 आत्मा की सन्निधि में उपवास
 त्याग पांचों पापों का करे ।
 शून्य व्यापार दिवस उपवास
 अंजन/स्नान क्रिया न करे ॥

उपवास के दिन हिंसादिक पांच पापों
 का, वस्त्रालंकारों से सज्जित होने का,
 कृषि आदि आरंभों का, चन्दन-इत्र आदि

गंधद्रव्यों के उपयोग का, पुष्पादि सूंघने, या धारण करने का, स्नान का, अंजन आंजने का, और नास आदि सूंघने का त्याग करना चाहिये ।



**धर्माभूतं सतृष्णः
श्वणाभ्यां पिवतु पाययेद्वान्यान् ।
ज्ञान-ध्यानपरो वा
भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥१०८॥**

स्वयं जब रहे स्वयं के पास ।
उसे प्रज्ञा कहती उपवास ॥

ध्यान उपवास दिवस अ-चलित ।
हृदय में ज्ञानदीप उदीप्त ॥

दान धर्माभूत का कर पान ।
साँस दो दिन की है महमान ॥

ज्ञान से बना धर्म-जलयान ।
ध्यान से कर यात्रा-प्रस्थान ॥

उपवास करने वाले व्यक्ति को चाहिये कि वह निरलस/अप्रमत्त भाव से उत्साह-पूर्वक धर्माभूत का स्वयं पान करे, अन्यों को कराये, तथा ज्ञान-ध्यान में तत्पर रहे ।

**चतुराहार-विसर्जनम्-
उपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः ।
स प्रोषधोपवासो
यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥१०९॥**

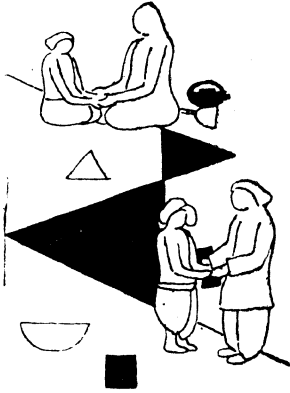
चार आहार त्याग उपवास,
हृदय में भूख रहे न प्यास ।
दिवस में एक बार भोजन,
कहा जाता प्रोषध उपवास ॥
और दो प्रोषध व्रत के मध्य
रखा उपवास प्रोषधोपवास ।
साधना के ये प्रथम चरण,
करे श्रावक सम्यक् अभ्यास ॥

उपवास क्या है? खाद्य, स्वाद्य,
लेह्य, और पेय रूप चार आहारों का त्याग ।
एक बार का भोजन 'प्रोषध' कहलाता है,
किन्तु जब एक उपवास के इर्द-गिर्द एकासन
होते हैं तब हम उस उपवास को 'प्रोषधो-
पवास' कहते हैं ।

**ग्रहण-विसर्गाऽऽस्तरणात्-
यदृष्टमृष्टान्यनादराऽस्मरणे ।
यत्प्रोषधोपवास-
व्यतिलंघन-पंचकं तदिदम् ॥११०॥**

निरीक्षण बिना परीक्षण के
ग्रहण हों पूजा के उपकरण ।
अलस मलमूत्र-विसर्जन में
अनादर आवश्यक, विस्तरण ॥
क्रियाएँ व्रत की जाना भूल
सुने साधक ये हैं अतिचार ।
बचेगा जब इनसे दिन-रात
बनेगा तब निर्मल आचार ॥

बिना देखे तथा बिना शोधे पूजा के
उपकरणों को ग्रहण करना, मलमूत्र विस-
र्जित करना, बिस्तर या आसन बिछाना,
षडावश्यकों की उपेक्षा या अनादर करना,
और उपवास से सम्बन्धित अपेक्षित क्रियाओं
का भूल जाना प्रोषधोपवास के पाँच अति-
चार हैं ।



दानं वैयावृत्यं
धर्माय तपोधनाय गुणनिधये ।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियाम्
अगृहाय विभवेन ॥१११॥

व्यापत्तिव्यपनोदः
पदयोः संवाहनं च गुण-रागात् ।
वैयावृत्यं यावानुपग्रहो
अन्योऽपि संयमिनाम् ॥११२॥

तपस्वी को निरपेक्ष निःकांक्ष
वस्तु देना कहलाता दान ।
शुचित् व्रत धारण करने से
तपस्वी बनते सदा महान् ॥
धर्महित क्षमता के अनुरूप
दान कहलाता वैयावृत्य ।

श्रावकों का अन्तस् आह्लाद
कराता उनसे सम्यक् कृत्य ॥

तपोधन-गुण के प्रति अनुराग
सहज कर दे चर्या अनुकूल ।

विमल मन निश्छल श्रावक करें
दूर उनके पथ का हर शूल ॥

विविध सेवाओं के आयाम
बनें स्थितियों के अनुरूप ।
यदि सीमा निर्धारित करे
विकृत होगा सेवा का रूप ॥

सम्यग्दर्शन आदि गुण-निधियों से
विभूषित गृहत्यागी तपोधनों को निरपेक्ष
चित्त से धर्म के निमित्त यथाशक्ति दान
देना वैयावृत्य है । मात्र दान ही नहीं अपितु
गूणानुरागपूर्वक संयमीजनों की आपत्तियों
को दूर करना; उनकी सेवा-टहल करना;
तथा उनका और भी जो उपग्रह (सहयोग)
है उसे करना वैयावृत्य है ।

नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः
सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन ।
अपसूनारम्भाणाम्
आर्याणमिष्यते दानम् ॥११३॥

श्रमण के प्रति श्रावक-अनुराग ।
सप्त गुण* उर का कुसुम पराग ॥

हृदय नवधा भक्ति में रमे ।
पंच सूना † कर्मों की श्रमे ॥

दान का अर्थ एक आहार ।
तपस्वी चर्या का आधार ॥

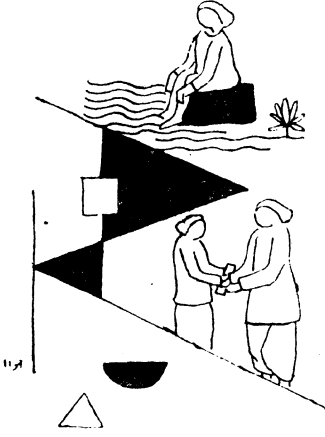
श्रमण के पास पाणि-का-पात्र ।
शेष का साधन श्रावक-मात्र ॥

सात गुण-सहित भद्रपरिणामी श्रावक
द्वारा पंच सूना तथा आरंभ-रहित नवघ्ना-
भक्तिपूर्वक मुनि को दिया गया आहार
दान कहलाता है ।

*श्रद्धा, तुष्टि, भक्ति, विज्ञानता, अलम्बता, क्षमा,
शक्ति ।

†हिंसा के स्थान : ओखली, चक्की, चौका-चूल्हा,
जलघटी (उदकुम्भी), बूहारी ।

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१६९



गृहकर्मणापि निश्चितं
कर्म विमर्शितं खलु गृहविमुक्तानाम् ।
अतिथीनां प्रतिपूजा
हृदयरमलं धावते वारि ॥११४॥

नीर से जैसे धूलता हृदयर
श्रावकों के कटते त्यों पाप ।

श्रमण की सेवा-अर्चा से
जागते हैं नव पुण्य-प्रताप ॥

पंचसूना कार्यों से पुष्ट
शिथिल हो जाते सारे पाप ।

भक्ति-पूजा का यह परिणाम
प्राप्त होता है आपोआप ॥

जैसे जल खून को धो डालता है, वैसे
ही गृहत्यागी मुनिजनों को यथायोग्य
चतुर्विध दान देने से घर-गिरस्ती के काम-
काज में संचित कठिनतर पाप भी निश्चय
से नष्ट हो जाते हैं ।

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेभोगो
दानादुपासनात्पूजा ।
भक्तैः सुन्दररूपं
स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥११५॥

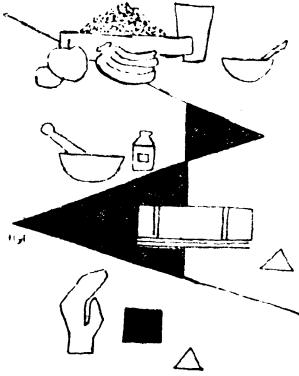
तपोधन को प्रणाम करता
प्रगति निश्चय ही पा जाता ।
दान का फल अनुपम होता
भोग-सुख साधन मिल जाता ॥
अर्चना पूजन करने से
कीर्ति के मिलते हैं मोती ।
भक्ति की महिमा अद्भुत है
देह सुषुमा का घर होती ॥

वीतराग की नमस्कृति से उच्चगोत्र
की, दान से भोगोपभोग की, सेवा/उच्च-
स्थानदान तथा पादप्रक्षालन से सर्वमान्य
केवलीत्व आदि की, भक्ति से सुन्दर रूप
की, तथा स्तुति से यशःकीर्ति प्राप्त होती
है ।

क्षितिगतमिव वटबीजं
पात्रगतं दानमल्पमपि काले ।
फलतिच्छायाविभवं
बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥११६॥

भूमि को प्राप्त हुआ लघु बीज
कल्पतरु बन कर लहराता ।
पथिक को सघन छाँव मिलती
सहज श्रम उसका घट जाता ॥
दान के पात्र गया लघु बीज
पुण्य-का-तरु बन कर बढ़ता ।
सघन छाया के ही अनुकूल
उसे मनवांछित फल मिलता ॥

जिस प्रकार उर्वर भूमि में बोया गया
छोटा-सा बट-बीज यथासमय सघन छाया
और विपुल फल देता है, उसी प्रकार
यथावसर सत्पात्र को दिया गया थोड़ा-सा
दान भी विपुल ऐश्वर्य, सम्पत्ति और यथेष्ट
भोगोपभोग का कारण बनता है ।



आहारौषधयोरप्यु-
पकरणावासयोश्च दानेन ।
वैयावृत्यं द्रुवते,
चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥११७॥

आहार, औषधि, उपकरण, आवास,
वैयावृत्य देता इन्हें प्रकाश ।

क्षुधा से मुक्ति-हेतु आहार,
औषधि व्याधि-मुक्ति प्रयास ॥

उपकरण शास्त्रों को कहते,
आवास में अभयदान होते ।

लोकहित गणधर का उपदेश,
उत्कर्ष पाता है आत्मप्रदेश ॥

आहार, औषध, उपकरण (पीछी,
क्रमण्डल, शास्त्रादि), तथा आवास
(वसति) आदि इन चारों दानों के भेद
है वैयावृत्य भी चार प्रकार का है ।

श्रीषेण-वृषभसेने,
कौण्डेशः शूकरश्च दृष्टान्ताः ।
वैयावृत्यस्यैते
चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥११८॥

आहार में श्रीषेण है ज्ञात ।
औषधि में वृषभसेन विख्यात ॥
कौण्डेश ने दिये शास्त्र-उपकरण ।
शूकर प्रसिद्ध अभय दे शरण ।
प्रथमानुयोग के ये आख्यान ।
विविध क्षेत्रों के कीर्तिमान ॥
चतुः अनुयोगों का है अर्थ ।
परस्पर तुलना करना व्यर्थ ॥

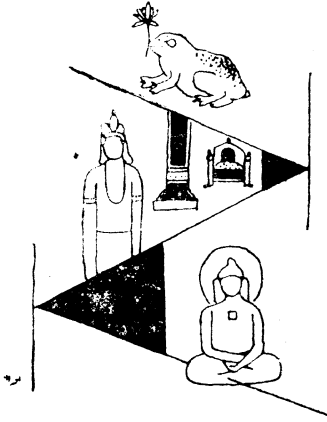
आहारदान में श्रीषेण, औषधिदान
में वृषभसेना, शास्त्रदान में कौण्डेश कोत-
वाल तथा आवास दान में शूकर विशेषतः
प्रसिद्ध हुए हैं ।

देवाधिदेवचरणे परिचयनं
सर्वदुःख निर्हरणम् ।
कामदुहि कामदाहिनि
परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥११९॥

चरण-कमल देवाधिदेव के
सहज शरण जो भी जाता ।
श्रद्धा-भक्ति प्रसादरूप में
मनवांछित फल वह पाता ॥
कर्मशत्रु का मद मर्दन कर
हर इच्छित पदार्थ पाता ।
भावभक्ति उन्मिष्ट हृदय से
झर-झर गीत अधर आता ॥

जिनपूजा से इच्छित/वांछित फलों
की प्राप्ति, और दुःखों का नाश होता है;
अतः आत्महितरत श्रावक-श्राविका को
श्रद्धाभक्तिपूर्वक भगवत्पूजा आवश्यक
करनी चाहिये । यह भी वैयावृत्य है ।

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/१७१



**अर्हञ्चरणसपर्यामहानुभावं
महात्मनामवदत् ।
भेकः प्रभोदमतः
कुमुभेनेकेन राजगृहे ॥१२०॥**

समवसरण की सुन कर कीरति
आत्म-मग्न वह हो जाता ।

एक पुष्प-पंखुरी मुख में ले
पुलकित मन दादुर जाता ॥

किन्तु अर्चना-पूर्व नृपति के
गज-पग-तल दब मर जाता ।

मात्र अर्चना की श्रद्धा से
स्वर्गलोक में सुख पाता ॥

राजगृही में आनन्द-विभोर/भक्ति-
लीन एक मेढक ने एक फूल से अर्हन्त के
चरणों की पूजा की महिमा को महान्
आत्माओं पर प्रकट किया है ।

**हरित-पिधान-निधाने
हृानादराऽस्मरणमत्सरत्वानि ।
वैयावृत्यस्यैते
व्यक्तिक्रमाः पंच कथ्यन्ते ॥१२१॥**

१७२/श्रावक। चार विशेषांक

तरुलता हरित पत्र से ढँकी ।
हरे पत्तों के ऊपर रखी ॥
पूज्यतम श्रमणों का आहार ।
विवर्जित देना उक्त प्रकार ॥

विधि-विस्मरण उपेक्षा, या
ईर्ष्या से भोजन देना ।
हैं वैयावृत के अतिचार
श्रावक सावधान रहना ॥

आहारादि की वस्तु को हरे पत्ते, या
पुष्पों से ढँकना; उसे हरे पत्तों पर रख कर
देना, दान आदि में अवमानना का भाव
रखना, अन्य दानदाताओं की प्रशंसा को
सहन न करते हुए ईर्ष्याभाव से दान देना
या पूजा इत्यादि करना, और दान आदि
की प्रक्रिया/विधि में भूल/त्रुटि करना
वैयावृत्य के पाँच अतिचार हैं ।

**उपसर्गं दुर्भिक्षे
जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे ।
धर्मय तनु-विमोचन-
माहुः सल्लेखनामार्याः ॥१२२॥**

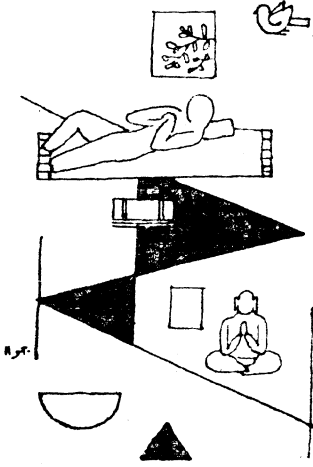
जीवन में दुर्भिक्ष, जरा,
अथवा असाध्य रोग आये ।

प्राण-की-रक्षा का पुरुषार्थ
साध्य जब किंचित् न रह पाये ॥

तब तन को धर्मार्थ विस्जित
करना होता साधु-मरण ।

महाप्रयाण की इस बेला में
रत्नत्रय की गहे शरण ॥

अटल उपसर्ग, दुर्भिक्ष, वाद्वैक्य
(बुढ़ापा), तथा असाध्य रोग की विषम
स्थिति में रत्नत्रय-रूप धर्म-परिपालन के
लिए कषाय को कृश करते हुए शरीर का
त्याग करना 'सल्लेखना' है ।



अन्तक्रियाधिकरणं
तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते ।
तस्माद्वावद्विभवं
समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥१२३॥

जीवन-भर के तप-संयम का
साधु-मरण ही अमृत फल ।
सल्लेखनापूर्वक मरने से
हो जाता नर-जन्म सफल ॥
जीवन की अन्तिम बेला में
कहते हैं भवितव्य सुधार ।
सृष्टि रहा करती दृष्टि में
सुख पाने हित छोड़ विकार ॥

नींव की सफलता कलश है, आरंभ-की-
गरिमा सफल उपसंहार है अतः जीवन के
अवसान-काल को अधिक संभालना चाहिये ।
तपश्चर्या का फल अन्तक्रिया पर अवलम्बित
है, अतः सल्लेखना के यथाशक्ति निर्विघ्न
अनुष्ठान में प्रयत्नशील होना चाहिये ।

स्नेह वैरं संगं परिग्रहं
चाऽपहाय शुद्धमनाः ।
स्वजनं परिजनमपि च
क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ॥१२४॥

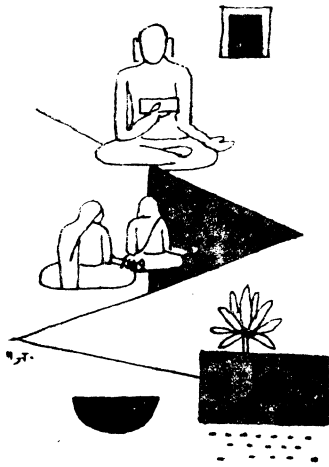
आलोच्य सर्वमेनः
कृति-कारितमनुमतं च निर्व्याजम् ।
आरोपयेन्महाव्रतमा-
मरणस्थायि निःशेषम् ॥१२५॥

मरण-महोत्सव तेरे संग ।
छोड़ राग-द्वेष के रंग ॥
बाह्याभ्यन्तर परिग्रह त्याग ।
तोड़ साँस से भी अनुराग ॥
छोड़ स्वजन सेवक पहिचान ।
कर भी; माँग क्षमा का दान ॥
हो जाता है सभी अतीत ।
संग न होगा कोई भीत ॥

छल-कपट-रहित हृदय-दर्पण ।
समीक्षा में क्यों बने कृपण ?
कृत कारित अनुमोदित जो पाप ।
रखें क्यों अन्तिम क्षण में आप ॥
महाव्रत धारण कर निःशेष ।
बनें साँसों तब अमर विशेष ॥
मृत्यु उत्सव बन जाने दो ।
देह जाती है जाने दो ॥

सल्लेखना के धारक को चाहिये कि
वह राग, द्वेष, संग-साथ और संपूर्ण परिग्रह
को छोड़े तथा शुद्ध चित्त से हितमित शब्दों
में स्वजनों/परिजनों को क्षमा करे तथा
उनसे स्वयं को क्षमा कराये । इसके साथ
ही वह मन, वचन काय तथा कृत, कारित,
अनुमोदना से किये गये समस्त दुष्कृत्यों/
पापों की समीक्षा करे और जीवनपर्यन्त
पाँच महाव्रतों को उल्लासपूर्वक धारण
करे ।

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१७३



शोकं भयमवसादं क्लेशं
कालुष्यमरतिमपि हित्वा
सत्बोत्साहमुदीर्यं च
मनः प्रसाद्यं श्रुतैर्मृतैः ॥१२६॥

त्याग तू साधक, हर्ष-विषाद ।
राग-कल्मष मत कर उत्पाद ॥
मृत्यु से कैसा भय यह मीत !
समाधि से बनती वही पुनीत ॥
प्रकट ऊर्जा मेधा कर वीर ।
अभी बैठा भव-सागर-तीर ॥
सुधा अर्हत्-की का कर पान ।
यही भव-सागर में जलयान ॥

सल्लेखना के लिए प्रस्थित व्यक्ति को चाहिये कि वह शोक, भय, विषाद, राग, द्वेष और अप्रीति का त्याग कर अपनी ऊर्जा तथा उत्साह को समृद्ध कर अमृतोपम सुखदायी तथा दुःख/संताप को दूर करने वाले शास्त्रों को स्वयं सुने तथा दूसरों को सुना कर चित्त को प्रसन्न और निर्मल करे ।

१७४/श्रावकाचार विशेषांक

आहारं परिहाप्य

क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम् ।

स्निग्धं च हापयित्वा

खरपानं पूरयेत् क्रमशः ॥१२७॥

त्याग दे क्रमशः कवलाहार ।
पेय हो जीवन का आधार ॥
त्याग सब, जल-भर कर स्वीकार ।
तुझे जाना भव-जलनिधि-पार ॥
चेतना की करनी है शोध ।
छोड़ सारे जग के अवरोध ॥
मरण-के-पार अमर जो द्वीप ।
बहुत अब दिखने लगा समीप ॥

वह आहार को भी क्रमशः छोड़ता जाए । पहले अन्न छोड़े और दूध या छाछ ले, तदनन्तर दूध-मठा भी छोड़ कर कांजी और उष्ण जल ही ग्रहण करे ।

खरपान-हापनामपि

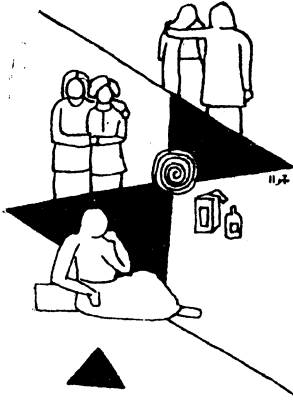
कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्यता ।

पंचनमस्कारमनास्तनु

त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥१२८॥

सल्लेखन मृत्यु-महोत्सव जान ।
मूल्य साधक इसका पहिचान ॥
उष्ण जल तक का कर परित्याग ।
परिग्रह रंच-मात्र भी आग ॥
आत्मा के रह पूर्ण समीप ।
जला कर णमोकार-का-दीप ॥
हुआ है वस्त्र पुराना त्याग ।
मोक्ष की बेला साधक जाग ॥

वह अन्ततः कांजी और गर्मजल का भी त्याग करे तथा यथाशक्ति उप-वासादि व्रतों में चित्त को निराकुल रखता हुआ णमोकार मन्त्र का जाप करे तथा शरीर को निर्विघ्न/सौल्लास छोड़ दे ।



**जीवित-मरणाऽऽशंसे
भय-मित्रस्मृति-निदान-नामानः ।
सल्लेखनाऽर्जितचाराः
यंच जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ॥१२९॥**

समाधि-मरण शाश्वत शरण ।
विश्व-जलनिधि से तारण-तरण ॥
मरण, जीवन इच्छा हो शेष ।
स्वजन की स्मृति हो न लेश ॥
भयों से मन ले पूर्ण विराम ।
स्मृति में केवल आत्मागम ॥
सदा इसके प्रतीप* अतिचार ।
मरण के क्षण हैं वृत्ति सँवार ॥

जीने की अभिलाषा रखना, जल्दी मरने की इच्छा करना, भयभीत होना, मित्रों का स्मरण करना और आगामी भोगों की इच्छा रखना सल्लेखना के पाँच व्यतिपात/अतिचार हैं ।

*बिबद्ध, विपरीत

**निःश्रेयसमभ्युदयं
निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम् ।
निष्पबति पीतधर्मा
सर्वैर्दुःखैरनालोढः ॥१३०॥**

किया है धर्माभूत का पान ।
समाधि है उसकी पहिचान ॥
सर्व दुख उसके हुए अशेष ।
मोक्ष की जिसको इच्छा शेष ॥
सुखाम्बुधि का करता वह पान ।
मुक्ति का सुमन सदा अम्लान ॥
सहज भव-जलनिधि जाता पार ।
समाधि-धन है जिसका आधार ॥

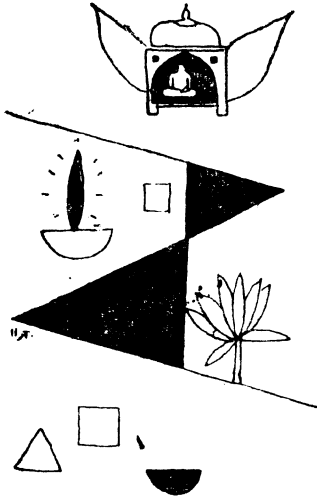
सल्लेखना का धारक धर्माभूत का पान कर सब दुःखों से रहित हो निःश्रेयस-रूप/सुख-समृद्ध का अनुभव करता है, जिसका कोई किनारा नहीं है तथा वह उस सुख-सिन्धु का भी अनुभव करता है जो दुस्तर है!—तिरने में कठिन है ।

**जन्म-जरा-ऽऽमय-मरणैः
शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम् ।
निर्वाणं शुद्धसुखं
निःश्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥१३१॥**

जन्म ने पाया पूर्ण विराम ।
मृत्यु कैसे पूछेगी नाम ?
जरा दुख परिणति हुई अतीत ।
आत्मा गाती शाश्वत गीत ॥
चेतना हुई पूर्ण कृतकृत्य ।
न कोई शत्रु, न कोई भृत्य ॥
आत्मा अविनाशी चिद्रूप ।
दूर तक खिली हुई है धूप ॥

जन्म, बूढ़ापा, रोग, मृत्यु, शोक, दुःख और भय से रहित तथा राग द्वेष-काम-क्रोध-आदि-से-मुक्त जो शुद्ध अविनाशी सुख है वह निर्वाण है; समस्त विभाव-भाव का अभाव लिये हुए अबाध, परम-निराकुलतामय, स्वाधीन, सहजानन्द-रूप मोक्ष है—इसे 'निःश्रेयस्' कहते हैं ।

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१७५



विद्या-दर्शन-शक्ति
स्वास्थ्य-प्रह्लाद-तृप्ति-शुद्धि-युजः ।
निरतिशया निरवधयो
निःश्रेयसमावसन्ति सुखम् ॥१३२॥

काल के, नश्वरता-के-चरण
न आते जिनके तनिक समीप ।

ज्ञान दर्शन आलोक अनन्त
मुखर शाश्वत कैवल्य-प्रदीप ॥

ज्ञान-दर्शन से आलोकित
कर्म-कल्मष की छूटी साँस ।

मोक्ष सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि
जहाँ सुख का है दिव्य प्रकाश ॥

जो विद्या (कैवल्य), दर्शन, स्वास्थ्य,
प्रह्लाद (अनन्त सुख), तृप्ति, और शुद्धि
गुणों से युक्त है, निरतिशय है (इन गुणों
की हीनाधिकता से रहित है) और निर-
वधि है ऐसे सिद्ध जीव निःश्रेयस सुख में
संपूर्णतया निवास करते हैं ।

काले कल्पशतेऽपि
च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या ।
उत्पातोऽपि यदि स्यात्
त्रिलोक-संभ्रान्ति-करण-पटुः ॥१३३॥

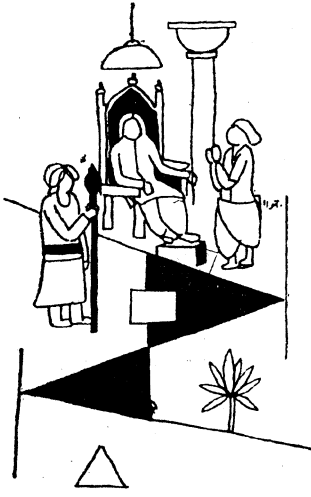
प्रलय से निखिल सृष्टि रोये
बुझें जल-जल कर कई दिए ।
सहस्र शत काल कल्प बीतें
नहीं वैभाविक भाव जिये ॥
सिद्ध स्वाभाविक ध्रुव शाश्वत
रंच-भर अंतर ही न दिखा ।
काल विस्मित हर क्षण में विवश
जले परिवर्तन-दीपशिखा ॥

यदि तीनों लोकों में भीषण उत्पात
घटित हो या सैकड़ों कल्प-काल बीत जाएँ
तो भी सिद्धों के गुण या स्वभाव में कोई
विक्रिया/विकृति नहीं होती, यानी वे अनन्त-
काल तक अनन्त सुख में निमग्न रहते हैं,
संसार में कभी नहीं लौटते ।

निःश्रेयसमधिपन्नाः
त्रैलोक्यशिखामणिभ्रियं दधते ।
निष्कट्टिकालिकाच्छवि-
चामीकर-भासुरात्मानः ॥१३४॥

शुद्ध स्वर्ण-सी दीप्तिमन्त
आत्मा आभा उत्कर्ष लिये ।
अशुच कर्म की कीट-कालिमा
के सब बन्धन काट दिये ।
वे त्रैलोक्य चरित्र-चूडामणि
अखिल विश्व की बने शरण ।
नाम मन्त्र है, धर्म रसायन
सार्थक करता नित्य मरण ॥

मोक्ष को प्राप्त जीव किट्ट-कालिमा से
रहित देदीप्यमान सुवर्ण के समान दीप्ति-
मन्त निर्मल आत्मा को धारण करने वाले
होते हैं तथा तीनों लोकों के शिरोभाग
पर अधीष्टित हो कर उनके चूडामणि की
शोभा को धारण करते हैं ।



पूजार्थाऽऽज्ञैश्वर्यैर्बल
परिजन-काम-भोग-भूयिष्ठः ।

अतिशयित-भूवनमद्भुतम्-
अभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥१३५॥

ज्ञान दर्शन चरित्र से युक्त
संलेखना का है समभ्युदय ।

पल्लवित-पुष्पित होता है
बना रहता है नित्य अजेय ॥

प्राप्त होते असीम ऐश्वर्यं
प्रचुर मात्रा में काम सुयोग ।

मुग्धकारी हो जाता जगत्
पुण्यफल का अतिशय संयोग ॥

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूप समीचीन
धर्म जिस अभ्युदय को परिणमित होता है,
वह पूजा, धन तथा आज्ञा के ऐश्वर्य से
संयुक्त हुआ बल परिजन, काम तथा भोग
की प्रचुरता के साथ लोक में अत्यन्त
उत्कृष्ट और आश्चर्यजनक होता है ।

श्रावक-पदानि देवैः
एकादश देशितानि येषु खलु ।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह
संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥१३६॥

व्रतों को धारण करने से
छूटते क्रमशः राग-विकार ।
उत्तरोत्तर प्रतिमा के समय
पूर्ववर्ती गुण का आधार ॥
श्रावकों के ग्यारह प्रतिमान
यही कहलाते गुणस्थान ।
मुक्ति-मन्दिर के ये सोपान
प्राप्त कर फिर कर महाप्रयाण ॥

सर्वज्ञ ने दर्शन, व्रत, सामायिक,
प्रोषध, सचित्तत्याग, रात्रिभोजन त्याग,
ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रहत्याग,
अनुमतित्याग, तथा उद्विष्टत्याग श्रावकों
की ग्यारह कक्षाएँ (विकास-चरण/पद/
प्रतिमाएँ) कहीं हैं। ये क्रमविवृद्ध हैं। एक
के दृढ़/परिपक्व होने पर ही दूसरी महिमा-
वान् होती है। इनका परिपालन धारा-
वाहिक होना चाहिये; अर्थात् एक-में-से-
दूसरी-जन्मे किन्तु निष्पन्न की पूर्ववर्ती
कक्षा दृढ़तापूर्वक बनी रहे। अन्तिम
प्रतिमा दसों पूर्ववर्ती प्रतिमाओं का सघन
(कम्पोजिट) रूप होगी। अतः इनके परि-
पालन में श्रावक को अत्यधिक सावधानी
बरतनी चाहिये ।

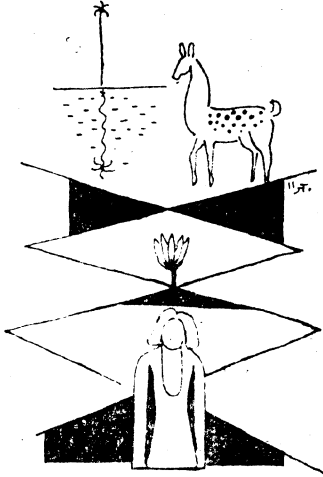
सम्यग्दर्शनशुद्धः
संसार-शरीर-भोग-निर्विण्णः ।
पंचगुह-चरण-शरणो
दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ॥१३७॥

सम्यग्दर्शन से युक्त हुआ
भोगों से पूर्ण विरक्त हुआ ।
वह देह जगत् के भोगों में
कर शिथिल राग अव्यक्त हुआ ॥
पंच परमेष्ठी की शरण
शाश्वत तत्त्व शुद्ध कर वरण ।

दार्शनिक श्रावक के लक्षण

आप्त की वाणी के ये वरण (वर्ण) ॥

जो सम्प्रदर्शन से शुद्ध हुआ है, जो संसार से/शरीर से/भोगों से विरक्त है वह पंचपरमेष्ठियों के चरणों की शरण को प्राप्त है; इस तरह जो तत्त्वपथ की ओर आकर्षित है वह 'दार्शनिक' श्रावक है।



निरतिक्रमणमणुव्रत

पंचकमपि शीलसप्तकं चाऽपि ।

धारयते निःशल्यो

योऽसौ व्रतितानं मतो व्रतिकः ॥१३८॥

श्रावक माया मिथ्या निदान,

सब शल्यों से निःशल्य हुआ ।

अणुव्रती शीलव्रत-अनुपालक

अतिचारों ने जिसको नहीं छुआ ॥

केवल हिंसादिक भावों के

तजने से बनता व्रती कौन ?

अन्तस् में गहरे शल्यों की

जब तक न रागिनी हुई मौन ॥

जो श्रावक निःशल्य भाव से निरति-चारपूर्वक पांच अणुव्रतों तथा सात शील-व्रतों का धारक है वह 'व्रतिक' श्रावक है।

चतुरावर्त-त्रितयश्चतुः .

प्रणामः स्थितो यथाजातः ।

सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोग

शुद्धस्त्रिसंध्यमभिवन्दी ॥१३९॥

आन्तरिक परिग्रह त्याग करे ।

दिशि चार तीन आवर्त करे ॥

हर दिशि में चार प्रणाम करे ।

कायोत्सर्ग निष्काम करे ॥

पद्मासन खड्गासन दोनों

मुद्राओं में से एक चुने ।

मन-वचन-काय-व्यापारों में

संशोधन कर प्रतिबद्ध बने ॥

फिर सुबह शाम दोपहर

वन्दना कर कर्मों से मुक्त बने ।

अविचल मन से सामायिक कर

समतामय संयुक्त बने ॥

जो चारों दिशाओं में तीन-तीन आवर्त और एक-एक प्रणाम (शिरोनति) कर अभ्यन्तर/बाह्य परिग्रह-रहित मुनि-के-समान खड्गासन या पद्मासन-पूर्वक मन, वचन और काया को निर्मल रख सुबह, दोपहर और शाम सामायिक करता है, उसे 'सामायिक' श्रावक कहते हैं।

पर्वदिनेषु चतुर्ध्वपि

मासे-मासे स्वशक्तिमनिगुह्य

प्रोषध-नियम-विधायी

प्रणधिपरः प्रोषधाऽनशनः ॥१४०॥

मास में चौदस आठम रखे

रखे प्रोषध का भी उपवास ।

करे न निज की आवृत शक्ति

करे न खुद अपना उपहास ॥

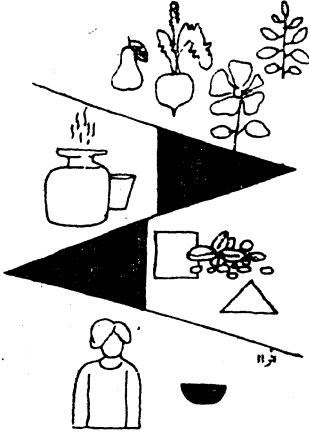
अष्टमी दो चतुर्दशी उभय

मास में चार दिवस की बात ।

बढ़ेगी इससे अन्तःशक्ति

शिथिल क्यों होगा इससे गात ?

जो प्रतिमास दोनों अष्टमियों और दोनों चतुर्दशियों में अपनी शक्ति को बिना छुपाये धर्मद्वयान में लीन होकर विधिपूर्वक प्रोषधोपवास करता है, वह प्रोषधोपवास पद का धारक चतुर्थ श्रावक है।



मूल-फल-शाक-शाखा
 करीर-केन्द-प्रसून-बीजानि ।
 नाऽऽमानि योऽति सोऽयं
 सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥१४१॥

भोजन में वजित रखे
 कंद मूल फल फूल ।
 अधकचरे फल, कोंपलें
 शाख बीज या मूल ॥
 सचित्त त्याग प्रतिमा लिये
 करुणा के आगार ।
 उदासीनता मन जगे
 यह नश्वर संसार ॥

जो दयामूर्ति श्रावक अपक्व, कच्चे, अशुष्क, सचित्त (अंकुरोत्पत्ति की संभावना से युक्त), जड़, फल, शाक, डाली, कोंपल, जमीकंद, फूल, बीज आदि नहीं खाता—यहाँ तक कि पानी भी गरम करके पीता है—वह सचित्तविरत पद का धारक श्रावक है।

अन्नं पानं खाद्यं
 लेह्यं नाऽऽनाति यो विभावयाम् ।
 स च रात्रिभुक्तविरतः
 सत्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥१४२॥

अन्न खाद्य और लेह्य पेय का
 निशि में कर परिहार ।
 श्रावक ! निशि-भोजन-विरत
 रख इतना आचार ॥
 सूक्ष्म जन्तुओं के प्रति
 सधता है सद्भाव ।
 जनमंगल की वृत्ति में
 हिसाकर्म-अभाव ॥

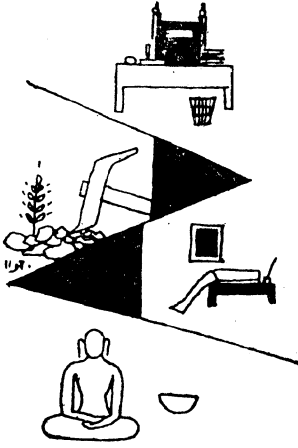
जो श्रावक रात में अन्न, खाद्य, लेह्य, और पेय आदि चारों प्रकार के आहार ग्रहण नहीं करता और प्राणिमात्र पर दया-भाव रखता है वह रात्रिभुक्तविरत छठी प्रतिमा का धारक है।

मलबीजं मलयोनिं
 गलन्मलं पूति गन्धि बीभत्सम् ।
 पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति
 यो ब्रह्मचारी सः ॥१४३॥

काम-अंग कामिनी का होता
 अशुच घृणित और मल का द्वार ।
 साधक ब्रह्मचर्यव्रत ले कर
 त्याग करे सब कलुष विचार ॥
 तन के साथ ब्रह्मचर्यव्रत
 भावों पर ही आधारित ।
 तन भी पावन, मन भी पावन
 रमण-क्रिया से रहे विरत ॥

जो श्रावक शरीर को मलबीज, मलयोनि (अपावनताओं का द्वार), मल-निर्झर, दुर्गन्धयुक्त, घृणात्मक देख काम-सेवन से सर्वथा विरक्त है वह ब्रह्मचारी व्रत का धारक है। यह सातवीं प्रतिमा है।

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१७९



सेवा-कृषि-वाणिज्य
प्रमुखादारम्भतो व्युत्पारमति ।
प्राणातिपातहेतो
योऽसावारम्भ-विनिवृत्तः ॥१४४॥

हिंसा से निवृत्ति-हेतु
तजता है व्यवसाय कृषि ।
किसी दिवस तप-संयम द्वारा
बन जाता है स्वयं ऋषि ॥

यह आरम्भ-त्याग प्रतिमा है
धर्म साधना-हेतु वरण ।
है उद्देश्य अशरण संसृति में
तीर्थंकर की मिले शरण ॥

जो श्रावक हिंसा की कारणभूत
नौकरी, खेती, व्यापार आदि आरम्भ-
प्रवृत्तियों का त्याग कर देता है वह आरम्भ-
त्यागी श्रावक है। यह आठवीं प्रतिमा का
स्वरूप है।

बाह्येषु दशसु वस्तुषु
ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वव्रतः ।
स्वस्थः संतोषपरः
परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥१४५॥

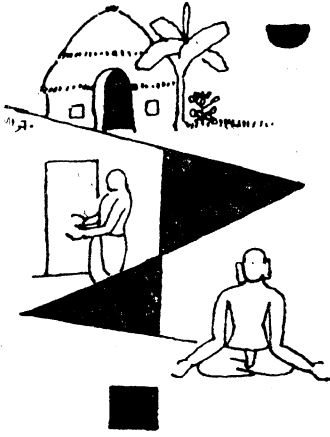
परिचित चित्रित चित्त परिग्रह
से आकर्षण को तोड़ा ।
बाह्य सुखों से संयमपूर्वक
भावों के रथ को मोड़ा ॥
स्वर्ण रजत धन धान्य वसन में
कब उसने ममता पायी ॥
परिग्रह त्याग प्रतिमा तब
संयम-आँगन मुस्कायी ॥

जो बाह्य दस परिग्रहों से ममत्व छोड़
स्वात्मस्थ, परिग्रह की आकांक्षा से निवृत्त
तथा संतोष-धारण में तत्पर है वह परि-
चित्त परिग्रहविरत (परिग्रहत्याग) नवीं
प्रतिमा का धारक श्रावक है।

अनुमतिरारम्भे वा
परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा ।
नास्ति खलु यस्य
समधोरनुमतिविरतः स मन्तव्यः ॥१४६॥

लौकिक सुख आकर्षण के प्रति
जब अन्तस् में टूटा राग ।
वह आरम्भ परिग्रह अनुमति
दे कर क्यों फिर बने सराग ?
अनुमति त्याग दशम प्रतिमा है
मूक्ति-मार्ग का शुभ सोपान ।
आत्मा मल अमूर्त
निरंजन से क्रमशः होती पहिचान ॥

जिसकी निश्चयपूर्वक आरम्भ में,
परिग्रह में, तथा लौकिक कार्यों में अनुमति
नहीं होती वह रागादि-रहित विवेक का
धारक अनुमति विरत श्रावक माना गया
है। यह दसवीं प्रतिमा का स्वरूप है।



गृहतो मुनिवनमित्वा
गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य ॥
मैक्याशनस्तपस्यभू-
त्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥१४७॥

श्रमण-दिगम्बर के समीप जा
व्रत संयम स्वीकार करे ॥
तप द्वारा यों अपने भौतिक
जीवन का उद्धार करे ॥
खण्ड वस्त्र को पहिन दिवस में
पाणि-पात्र आहार करे ॥
सर्वोपरि श्रावक प्रतिमा को
तत्पर अंगीकार करे ॥

जो श्रावक घर-गिरस्ती छोड़ कर
मुनिवन (जहाँ किसी मुनि का विहार हुआ
हो, या वर्षायोग हो) जाकर तथा गुरु के
निकट व्रतों को ग्रहण करके तपस्या करता
है, भिक्षा द्वारा भोजन करता है तथा वस्त्र-
खण्ड कोपीन/छोटी चादर का धारक होता
है उसे उत्कृष्ट श्रावक कहते हैं। यह
श्रावक का सर्वोच्च पद है।

पापमरातिर्धर्मो
बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन् ।
समर्थ यदि जानोते
श्रेयोज्ञाता ध्रुवं भवति ॥१४८॥

निश्चित है नश्वर संसृति में
पाप शत्रु है, धर्म सुबन्धु ।
जिनवाणी में लहराता है
अतल अपरिमित ज्ञान-सिन्धु ॥
शुद्ध तत्त्व से परिचय द्वारा
समयसार को जान लिया ।
नश्वर तन-बैठी ध्रुवता को
शतप्रतिशत पहिचान लिया ॥

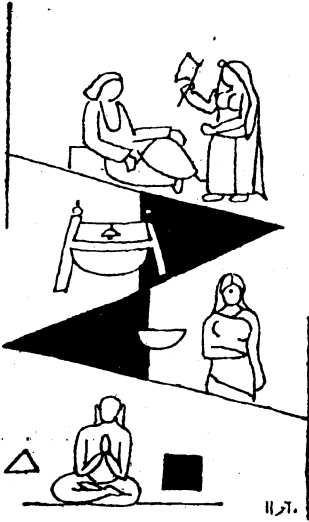
'पाप इस जीव का शत्रु है और धर्म
मित्र (बन्धु) है' इस दृढ़ निश्चय के साथ
जो स्वयं को जानता है वही आत्मस्वरूप
को भी जानता है; वही श्रेष्ठ ज्ञाता भी
है।

येन स्वयं वीत-कलंक
विद्या-दृष्टि-क्रिया-रत्नकरण्ड-भावम् ।
नीतस्तमायाति पतीच्छयेव
सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु ॥१४९॥

रत्न-करण्डक के रत्नों की
आभा से जो दीप्त हुए ।
दर्शन ज्ञान चरित्र चित्त में
शुभ मंगल अनुभूति लिये ॥
स्वयंवरा की भाँति उन्हें
सर्वार्थसिद्धियाँ प्राप्त हुईं ।
तीर्थंकर के पथ-अनुगामी
केवल बनते कालजयी ॥

जिस भव्य ने अपनी आत्मा को
निर्दोषविद्या, निर्दोषदृष्टि तथा निर्दोष-
क्रिया-रूप (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और
सम्यक् चरित्र) रत्नों का अधिष्ठान बना
लिया है/करण्ड बना लिया है, उसे तीनों
लोकों में सर्वार्थसिद्धि-पति का स्वयंवरण
करने वाली स्वयंवरा कन्या की भाँति-
स्वयमेव प्राप्त हो जाती है।

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१८१



सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव
 सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु ।
 कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीताज्-
 जिन-पति-पद-पद्म-प्रेक्षिणी
 दृष्टिलक्ष्मीः ॥१५०॥

कामी की कामिनी में जैसे
 होती अनुरक्ति है ।

वत्सलता ममता माँ के
 अन्तस् में बसती है ॥

सुता शील-संपन्न वंश को
 कीर्तिलता जो लाये ।

पादाम्बुज सर्वज्ञ विलोकित
 दृष्टि सुधा बरसाये ॥

जिस तरह कोई उत्तम नायिका अपने नायक को सुख प्रदान करती है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शनरूपा लक्ष्मी मुझे सुख दे । जिस प्रकार कोई सुतवत्सला माँ अपने बेटे का लालन-पालन करती है, वैसे ही सप्तशील-व्रतों से विभूषित सम्यग्दृष्टिरूपा लक्ष्मी मेरी रक्षा करे, और जैसे कोई गुणवती कन्या अपने कुल को समुज्ज्वल करती है, उसी प्रकार अष्टमूलगण-संपन्ना सम्यग्दृष्टि-रूपी लक्ष्मी मुझे उज्ज्वल/निर्मल करे ।

□□

स्वामी समन्तभद्र ने अपनी विश्वलोकोपकारिणी वाणी से न केवल जैन मार्ग को सब ओर से कल्याणकारी बनाने का प्रयत्न किया, किन्तु विशुद्ध मानवी दृष्टि से भी उन्होंने मनुष्य को नैतिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए बुद्धिवादी दृष्टिकोण अपनाया । उनके इस दृष्टिकोण में मानवमात्र को रुचि हो सकती है । समन्तभद्र की दृष्टि में मन की साधना, हृदय का परिवर्तन सच्ची साधना है, बाह्य आचार तो आडम्बरों से भरे हुए भी हो सकते हैं । उनकी गर्जना है कि मोही मुनि से निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ है ।

-डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल

मादक पदार्थ : घातक कितने !?

नशाखोरी से सामाजिक व्यावहारिकता पूर्णतः बदल जाती है और नशे से अपराध-प्रवृत्ति बढ़ती है। संसार के कई अपराध-विज्ञानी और मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस तथ्य की पुष्टि हुई है। शोध-पत्रों और सर्वेक्षण-रिपोर्टों के अध्ययन से पता चलता है कि विभिन्न जघन्य अपराधों; जैसे—बलात्कार, हत्या, आत्महत्या, लूटपाट एवं आगजनी की बढ़ती हुई घटनाओं में नशीले पदार्थों का बहुत योगदान है।

—एम. पी. गौतम

मादक द्रव्यों का बढ़ता हुआ सेवन अब संसार की एक गंभीर चिंता है। विभिन्न देशों में युवावर्ग एवं किशोरों के बीच मादक द्रव्यों का व्यसन अब सामाजिक शिष्टाचार हो गया है। विभिन्न मादक द्रव्य, उत्तेजक और मंदकारी दवाएँ संसार की नयी पीढ़ी के आकर्षण केंद्र हैं। सरल भाषा में मादक द्रव्य-व्यसन को नशे-की-आदत कहा जा सकता है। आजकल के प्रसिद्ध मादक द्रव्यों में शराब, कनाबिस (गांजा, भाँग, चरस, हशीश, मारीजुआना), अफीम, हेरोइन, कोकेन, एल.एस.डी., मेनड्रेक्स प्रमुख हैं। प्राचीनकाल की औषधियों का अब मादक पदार्थों के रूप में सेवन आरंभ हो गया है। इन द्रव्यों का सेवन मनुष्य के सामाजिक जीवन को खतरों में डाल देता है। मनुष्य इस व्यसन के ऊपर शारीरिक और मनोवैज्ञानिक रूप से निर्भर हो जाता है। इनके एक बार सेवन करने के बाद मात्रा को निरन्तर बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है। कुछ विद्वानों का मत है कि मादक द्रव्यों का सेवन वैयक्तिक असामान्यता (पर्सनल एब्नॉर्मलिटी) के कारण आरंभ किया जाता है, परन्तु लाइण्ड स्मिथ का कहना है कि लोग सामान्य बनने की इच्छा से वशीभूत हो कर इसका सेवन करते हैं फिर यह उनकी आदत में बदल जाता है। आमतौर पर यह पाया गया है, कि इन मादक पदार्थों का सेवन नशेलचियों की संगति से आरंभ होता है। पहले-पहल इसमें आनंद की अनुभूति होती है, फिर जरूरत महसूस होने लगती है और धीरे-धीरे मनुष्य इनका आदी हो जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह तथ्य निर्विवाद है कि प्राचीन भारत में सोमरस सर्वाधिक लोकप्रिय मादक पेय था। भारतीय ग्रंथों में सोमरस का देवताओं द्वारा उपयोग किया जाना उल्लेखित है। भारतीय वाङ्मय के सर्वाधिक प्राचीन वेदग्रंथों के अलावा पारसियों के 'जन्द अवस्ता' में भी सोमरस का उल्लेख मिलता है। सोमरस वास्तव में क्या था, आज तक अनिर्णीत एवं संदिग्ध है, जबकि शताधिक वनस्पतियों के नाम सोमलता से जोड़े जा चुके हैं। वैदिक सोमपान से आधुनिक मद्यपान की तुलना को विद्वत्तापूर्ण नहीं कहा जा सकता। इतिहास के आधार पर यह स्वीकार करना होगा कि संसार में ऐसे ही कई मादक पदार्थों का चलन पुराना है। प्राचीन काल में पूर्वी भारत में सोम और पश्चिम में निपेनिथ-जैसी औषधियों का मादक पदार्थों के रूप में प्रचलन था। इनके विचित्र गुणों से संबंधित अनेक

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/१८३

कथाएँ उपलब्ध हैं। एक हजार ई.पू. चीनी सम्राट शैन नेग ने अपने अभिलेखों में मारीजुआना का उल्लेख किया है। मारीजुआना, कनाबिस पौधे का ही उत्पाद है। 'दि वेरायटीज ऑफ साइकेडेलिक एक्पीरियेंस' के अनुसार नई दुनिया अर्थात् अमेरिका की खोज से पूर्व, अमेरिका के पादरी अपने-अपने देवताओं से संपर्क स्थापित करने के लिए, अपनी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ाने के लिए कुछ विशेष प्रकार के पौधों का उपयोग करते थे। आज जितने भी मादक पदार्थ प्रचलित हैं, उनमें बहुत कुछ प्राचीन काल में किसी-न-किसी रूप में औषधियों में प्रयुक्त किये जाते थे। आयुर्वेद चिकित्सा में अफीम, भाँग इत्यादि का आज भी प्रयोग किया जाता है। सोचा जाए कि जहाँ विज्ञान ने मानव की सुख-सुविधाओं के लिए कुछ किया है, वहीं कुछ ऐसे भी अनुसंधान हुए, जिनसे मानव के विनाश की आशंका बढ़ी है। अपनी जानकारी और ज्ञान का कुछ लोगों ने स्वार्थवश दुरुपयोग आरंभ किया और करवाया। इसी का फल है कि भयानक-से-भयानक नशे वाली औषधियों का दिन-ब-दिन आविष्कार होता चला जा रहा है।

मादक द्रव्य व्यसन की बुराइयों तथा परिणामों की चर्चा विस्तार से करे इससे पहले यह बेहतर होगा कि कुछ प्रमुख मादक पदार्थों की चर्चा सारांश में कर ली जाए।

अफीम

अफीम या पौपी का पहला वर्णन आठ सौ वर्ष ईसा पूर्व मिलता है। प्राचीन यूनानी संस्कृति में इसके संदर्भ मिलते हैं। आयुर्वेद में इसका प्राचीन काल से प्रयोग होता चला आ रहा है। इसे अहिफेन तथा अफूर भी कहते हैं। इसे पश्चिमी देशों में ब्लैक गोल्ड यानी काला सोना के नाम से जाना जाता है। वेदना स्थापन, निद्राजनन, स्तंभन आदि कर्मों में भी इसका प्रयोग होता है। यह काला भूरा गुड़-जैसा पदार्थ होता है। इसमें २५ अल्केलायड होते हैं। साथ में प्राकृतिक गोद, शर्करा, रंगीन पदार्थ, मैकोनिक एसिड, लेक्टिस एसिड आदि होते हैं। अफीम में नशा, मारफीन नामक अल्केलायड की मात्रा पर निर्भर होता है अर्थात् जितनी अधिक मात्रा मारफीन की होगी नशे के लिए अफीम उतनी ही अच्छी मानी जाएगी। भारतीय अफीम में मुख्य अल्केलायड की मात्रा इस प्रकार होती है: मारफीन ८-१४ प्रतिशत, कोडीन १.८ से ४ प्रतिशत, नारकोटीन ३.५ से ७.६ प्रतिशत, थीवेन ०.५ से १ प्रतिशत तथा पापावरीन ० से १ प्रतिशत।

हेरोइन

इसका तात्पर्य अभिनेत्री से नहीं है। इसे अफीम से प्राप्त मारफीन से बनाया जाता है। यह एक यौगिक है। सबसे पहले जर्मन केमिस्ट सर टेरनर ने १८०३ में इसे बनाया था। मारफीन को रासायनिक विधियों द्वारा डाइ एसिटल मारफीन

में बदला जाता है और यही हेरोइन के नाम से प्रसिद्ध है। मारफीन नाम ग्रीक शब्द मारफेयस से लिया गया है, जिसका अर्थ 'स्वप्नों के भगवान'। हेरोइन पानी में घुलनशील है तथा इसमें मारफीन से करीबन सात गुना अधिक नशा होता है। चीन, बर्मा, उत्तरी थाईलैंड, उत्तर पश्चिम लाओस में इसके बनाने के कारखाने पाये जाते हैं। हेरोइन के आदती लोग अपने हाथ से इंजेक्शन लगाते हैं। बार-बार लगाने के स्थान पर काला दाग पड़ जाता है। पश्चिमी देशों में इसका प्रचलन अधिक है। जे.सी. बाल, एल. रोशन, जे.ए. फ्लूयेक तथा डी.एन. न्यूको नामक वैज्ञानिकों ने एक अध्ययन-रिपोर्ट प्रकाशित की है: 'लाइफ टाइम क्रिमिनेलिटी ऑफ हेरोइन एडिक्ट्स इन दी यूनाइटेड स्टेट्स'। इसमें बताया गया है कि हेरोइन के नशे के आदती लोगों में अपराध-प्रवृत्ति जागृत होती है। इसके आदती लोगों पर किये गये अध्ययन से पता चलता है कि ४,५०,००० हेरोइन के आदती प्रतिवर्ष करीब ५,०,०००,००० अपराधों से संबंधित पाए गए हैं और इनकी लाइफ टाइम क्रिमिनैलिटी ८१,९०,०,००,००० अपराधों से भी ज्यादा बढ़ गयी है।

कनाबिस

गाँजा, भाँग, चरस, हशीश, मारीजुआना, एक ही पौधे कनाबिस से प्राप्त होने वाले विभिन्न रूप हैं। इस पौधे का पूरा लेटिन नाम कॅनाबिस सट्टाइवा है। यह नर और मादा दो रूपों में उत्पन्न होता है। कनाबिस के मादा पौधे में अधिक नशा पाया जाता है। कनाबिस के अन्य रूप पश्चिमी देशों में विभिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं, जैसे सिनसेमिला, रीफर इत्यादि। उत्तर भारत में भाँग से बनायी गयी मिठाई मजूम कहलाती है। कनाबिस से मिथ्याभ्रम एवं वाक्चपलता बढ़ जाती है, अनियंत्रित हँसी भी आती है। गाँजा पीने वालों को मानसिक रोग हो जाते हैं। स्मरण शक्ति कम हो जाती है। माँसपेशियों में बिना कारण उथल-पुथल होती है। कनाबिस के मादा पौधे से होने वाले स्राव से पाँच भिन्न मुख्य रासायनिक पदार्थ प्राप्त होते हैं, (-) डेल्टा-९-टेट्रा हाइड्रो केनाविनोल, (-) डेल्टा-८-टेट्रा हाइड्रो केनाविनोल, टेट्रा हाइड्रो केनाविनोलिक एसिड, केनाविनोल और केनाबिडायोल।

उपर्युक्त रासायनिक पदार्थों में डेल्टा-९-टी.एच.सी. ऐसा पदार्थ है, जिसका शरीर एवं मस्तिष्क पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है।

एल. एस. डी.

यह एक मादक औषधि है। इसका पूरा नाम लासार्जिक एसिडडाई एथिल एमाइड है। इसकी खोज ए. स्टाल और डब्ल्यू. ए. हाफमैन ने एक प्रकार की फफूँद जो राई-जैसे पौधों पर पलती है, जिसे अर्गट कहते हैं, के उत्पाद यौगिकों के संश्लेषण के दौरान की थी। इन वैज्ञानिकों ने पाया कि इनसे चालीस मिनट के अंदर दृष्टि दोष, ध्यान केंद्रित करने में बेचैनी या असफलता, अनियंत्रित हँसी के

दौरे, परेशानियाँ और चिताएँ जागृत होती हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि एल.एस. डी. से मस्तिष्क पर ही बहुत घातक प्रभाव पड़ता है। पेडियाट्रिक रिसर्च सोसायटी की कुछ वर्ष पूर्व हुई बैठक में डॉ. सी. एम. बर्लिन तथा डॉ. सी. बी. नेक्वसन ने अपने अनुसंधानों की विवेचना करते हुए बताया है कि एल. एस. डी. म्यूटाजेनिक है या म्यूटाजेनिक प्रभाव रखती है। उन्होंने कहा है कि महिलाएँ गर्भ धारण करने के पूर्व या पश्चात् किसी भी प्रकार यदि एल. एस. डी. का प्रयोग करती हैं तो पैदा होने वाले बच्चे अक्सर बेडौल, बदसूरत, और डरावने होते हैं। उम्र के अनुसार इन बच्चों की ऊँचाई नहीं बढ़ती, न ही वजन बढ़ता है। इस प्रकार उत्पन्न बच्चों के शरीर के अन्य भाग भी दोषयुक्त पाये गये। जैसे हाथ और पैर का छोटा-बड़ा होना या टेढ़ा होना। कभी-कभी पूरा शरीर काला हो जाना, जैसे जला हुआ हो। गर्भपात के प्रकरणों का अध्ययन करने पर भ्रूण भेदे और बेडौल पाये गये।

कोफेन

कोका के पौधे की सूखी पत्तियों से इसे प्राप्त किया जाता है। यह वनस्पति जन्य क्षार तत्व अर्थात् एस्केलाइड है। इसे कामोत्तेजक एवं उद्दीपक पदार्थ के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। अक्सर पान के साथ इसका सेवन किया जाता है। इनमें बेहोशी पैदा करने वाला गुण होता है। इसका उपयोग शल्यक्रिया में किया जाता रहा है। इसका सेवन करने वालों को जीर्ण-विषण्णता घेर लेती है।

प्रत्येक शराब में अलकोहल का कुछ-न-कुछ अंश होता है। शराब में अलकोहल से तात्पर्य इथाइल अलकोहल से है। यही मादकता उत्पन्न करता है। विभिन्न शराबों में इथाइल अलकोहल की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। जैसे बियर में ३७ प्रतिशत, ताड़ी में ३ प्रतिशत, साइडर में २-३ प्रतिशत, रम, व्हिस्की, ब्रांडी में ३५-४५ प्रतिशत के बीच होती है। शराब का प्रचलन हमारे देश में कितना है, यह किसी से छिपा हुआ नहीं है। इसकी बुराइयों से पाठक परिचित ही होंगे। मद्यपान की रोक-थाम के लिए हमारे देश में पहले से ही प्रयत्न किये जा रहे हैं। सामाजिक और धार्मिक संगठनों और सरकार से जितना बन रहा है, इसके विरुद्ध अभियान छेड़े हुए हैं; पर वास्तव में देखा जाए तो इसकी खपत बढ़ती ही जा रही है। महात्मा गाँधी ने मद्यपान के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए एक बार कहा था कि 'मद्यपान को चोरी और वेश्यावृत्ति से भी अधिक खतरनाक समझता हूँ। वास्तव में दोनों की उत्पत्ति इसी से होती है।'

हमारे देश में मादक द्रव्यों का प्रचलन सर्वविदित है। ऐसा सुना जाता है कि मुख्यतः गरीबी, बेरोजगारी, भविष्य की अनिश्चितता, समाज द्वारा अवहेलना तथा कई व्यक्तिगत दुःखों को भुलाने के लिए मादक द्रव्यों का उपयोग किया जाता है। कई बार तो ऐसा होता है कि अज्ञानतावश किशोरावस्था में लड़के-लड़कियाँ इन

सारी बुरी आदतों के शिकार हो जाते हैं। यदि कोई कहे कि अमुक पदार्थ के सेवन से मैंने आकाश-प्रकाश का चमत्कारपूर्ण सौंदर्य देखा है तथा दुःखों को भूल कर सुखों का आनंद प्राप्त किया है, तो किसी भी व्यक्ति के मन में कम-से-कम एक बार उन पदार्थों के सेवन करने की इच्छा जागृत हो जाना स्वाभाविक है। यदि प्रचार माध्यमों को लें तो रेडियो, दूरदर्शन, पत्र-पत्रिकाओं ने भी इनके प्रचलन में सहयोग दिया है। हर्षोन्माद तथा आनंददायी गुणों को बढ़ा-चढ़ा कर प्रचार किया गया है, किंतु इनके कुप्रभावों को उतना महत्त्व नहीं दिया गया जितना दिया जाना चाहिये था। वैज्ञानिकों की दृष्टि में इनके प्रयोग से मस्तिष्क पर इनका सबसे अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है; पर जो भी हो कौन मानेगा? मनुष्य तो सदैव जीवन की नीरसता को दूर करने हेतु तत्पर रहता है। इसमें किसी भी वस्तु का योगदान उसे प्रिय होता है। वह बाद में घातक ही सिद्ध क्यों न हो? आज की नयी पीढ़ी इसके हानि-कारक प्रभावों की चिंता न करके इसके अद्भुत अनुभवों तथा रोमांच के प्रति अधिक जिज्ञासु है।

कितने ही आदती पागलपन की स्थिति में पहुँच रहे हैं और कितने ही अन्य मानसिक रोगों से ग्रसित हैं। नशे की स्थिति में असामान्य व्यवहार कई दुखित घटनाओं का कारण बनता है, जैसे हवा में उड़ने-जैसी कल्पना में ऊँची इमारतों से कूद जाना, मति-भ्रामकता की स्थिति में सीढ़ियों से गिर जाना, जोर की आवाज पर घबड़ा जाना, नदी-तालाब को देख कर मृत्यु-भय, चलते वाहनों से टकरा जाना इत्यादि। कई नशीले पदार्थों में कामोत्तेजना उत्पन्न करने की अत्यधिक क्षमता रहती है और इनके ज्यादा सेवन करने से यौन अपराधों की घटनाएँ होती हैं। नशे में वह इंसान न हो कर बहशी बन जाता है। उसका एक मात्र लक्ष्य अपने उद्देश्य की प्राप्ति होता है। वह इस यौन आवेग की स्थिति में पूजनीय रिश्ते-नातों, आदर्श, अच्छाई-बुराई सभी को तिलांजलि दे बैठता है। इस अवस्था में उन बंधनों को तोड़ने में उसे कोई संकोच नहीं होता। कई नशाखोरों को नशे की अधिकता में क्रूरतापूर्ण क्रृत्य करते हुए पाया गया है। यौन अपराधों में गुदा-मैथुन, पशु-संभोग तथा शव-मैथुन तक संदर्भित हैं।

नशे से जुड़ी नयी एवं पुरानी धारणाओं के बारे में देखा जाए तो कई रोचक बातें सामने आती हैं। मुख्यतः परेशानियों से निजात पाने के लिए इनका सहारा लेने की बात कही जाती है, पर वास्तव में यह सत्य नहीं है कि इनके सेवन से परेशानी या दुःख से छटकारा मिलता है। इससे तो कई परेशानियाँ और बढ़ जाती हैं। इनके सेवन से शारीरिक तथा मानसिक शक्ति का ह्रास हो जाता है। इनके कुप्रभावों पर किये गये अध्ययनों से पता चलता है कि मनुष्यों में सीखने की कला, स्मरण शक्ति, कार्यकुशलता, बुद्धिमत्ता पर बहुत ही बुरा असर पड़ता है। व्यसनियों के हाथ-पैरों में कंपन शुरू हो जाता है। मिथ्याभ्रम जैसे रोग घेर कर बैठते हैं। जीवन के

प्रति अमुरक्षा की भावना आ जाती है। यौन शक्ति का पतन हो जाता है और नपुंसकता उत्पन्न होती है। अति उतावलापन, झल्लाहट, चिंता, भयाकुलता उत्पन्न हो जाती है। नशेवाजों की यह दलीलें सच नहीं हैं कि इनसे उनमें हार्दिक सच्चाई, प्रेम, दोस्ती तथा संभोग की अत्यंत सुखद चरमसीमा प्राप्त होती है। यह भुलावा-मात्र है। अनिद्रा-जैसे भयंकर रोग का शिकार होना तो निश्चित ही है। आज टूटते परिवार, चारित्रिक पतन, कर्तव्यहीनता, एवं कुंठा का कारण यही खतरनाक नशा है।

संसार के अन्य देशों के समान हमारे देश में भी इस समस्या के निदान के प्रति सरकार, विभिन्न सामाजिक संगठन चिंतित हैं; पर चिंता सीमित नहीं होनी चाहिये। आज हमारे समाज के प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है कि वह प्रत्येक नवयुवक को जो इनकी ओर आकर्षित होते हैं, उन्हें इनके भयावह कुप्रभावों से उत्पन्न परिणामों से परिचित करें। विद्यार्थियों में इन मादक पदार्थों के प्रति घृणा उत्पन्न करने में हमारी शिक्षा-संस्थाएँ अच्छा योगदान कर सकती हैं। सरकार को भी चाहिये कि इसके प्रयोग को निरुत्साहित करें। समाचार-एजेंसियों को भी अपनी भूमिका ऐसी रखनी चाहिये कि इनके हर्षोन्माद गुणों का बखान न करते हुए इनके घातक प्रभावों को प्राथमिकता दें। जिस बुरी तरह से नशीले पदार्थों के प्रति रुचि बढ़ रही है, उसकी रोकथाम नहीं हुई तो यह समस्या हमारे पुरे सामाजिक ढाँचे को तहस-नहस कर देगी। यदि कोई व्यक्ति नशे को अपनाता है तो वह उसका व्यक्तिगत निर्णय जरूर है, पर वह एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहने से उसका प्रत्येक निर्णय समाज से जुड़ा है, उसका निर्णय निजी नहीं है, समाज पर उसका प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव पड़ता ही है। □

“शराब के प्रभाव में असंतुष्ट व्यक्ति शान्ति चाहता है और कायर व्यक्ति साहस बटोरने की आशा रखता है। निराश व्यक्ति विश्वास की तथा दुःखी व्यक्ति सुख की आशा करता है; परन्तु इन सबको पतन और विनाश के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता।”

—डॉ. आदम क्लार्क

बेकसूर प्राणियों के खून में सने (पृष्ठ १२८ का शेष)

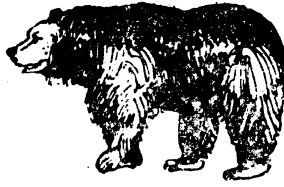
सब जानते हैं कि बन्दर एक बेहद चंचल शाकाहारी पशु है; सबसे बड़ी बात यह है कि डार्विन के अनुसार वह आदमी का पुरखा भी है तो देखें कि हम अपने पुरखों की कैसी फजीहत कर रहे हैं। अन्तरिक्ष यात्रियों के संदर्भ में बन्दर के साथ बड़ा क्रूर प्रयोग किया जाता है। उसके हाथ-पाँव और शरीर को जकड़ कर महीनों डाल दिया जाता है ताकि यह जाना जा सके कि अन्तरिक्ष यात्री इस अवस्था में कितने समय तक जीवित रह सकेंगे। सानफ्रान्सिस्को (अमेरिका) में बन्दरों के साथ जो प्रयोग हुए हैं वे दिल दहलाने वाले हैं। कई चिकित्सीय प्रयोगों में उनके बाल झड़ गये हैं और कइयों में उन्हें पक्षाघात हुआ है।

नेवला बड़ा वफादार जानवर माना गया है किन्तु मनुष्य ने उसे उसकी वफादारी का इनाम उसकी जान ले कर दिया है। वैसे नेवला आसानी से पकड़ में नहीं आता है किन्तु पकड़ने में कुशल लोग इसे इसके बिल में से संदसी द्वारा खींच लाते हैं और मार डालते हैं। इसकी खाल का उपयोग भी कई फैशनेबुल वस्तुओं के बनाने में किया जाता है।



शतुरमृग

शतुरमृग एक शाकाहारी/भीमकाय पक्षी है। यह भी मनुष्य की नृशंसता का शिकार होने से नहीं बच सका है। एक तो जब तक यह जीता है तब तक हर महीने इसके बाल/पंख नोच लिये जाते हैं; दूसरे इसके अंडे और इसका मांस लोग खा जाते हैं। इसकी खाल का उपयोग थैले बनाने में होता है तथा पंख टोप में शोभा के लिए खोसे जाते हैं।



भालू

भालू मदारी की आजीविका का साधन माना गया है। वह इसे नचाता है और अपना पेट पालता है; किन्तु किस्सा यहीं खत्म नहीं हो जाता, भालू/रीछ को नाचना जिस तरह से सिखाया जाता है वह सारा काम बड़ा क्रूर/बेरहम है। उसे गर्म तवे पर खड़ा कर दिया जाता है, जिसकी आँच पा कर वह तड़पने लगता है। लोग इसे नाचना मानते हैं। अनुभूति का प्रश्न है। भालू को तवे पर इतना/इतनी बार रखा जाता है कि उसे जीवन-भर यही लगता है कि वह गर्म तवे पर ही खड़ा है। इसे फाँसने का तरीका बड़ा अजीब है। इसे धोखे से गड़हे में गिरा कर पकड़ लिया जाता है। इसके २४ से ४८ घंटे के सद्यःजात शिशु को इसलिए मार डाला जाता है चूँकि उसकी खाल बहुत नरम होती है और उससे बड़ी आकर्षक/मुलायम टोपियाँ बन सकती हैं।

इन क्रूरताओं को जानने का एकमात्र मक्सद यही है कि हम जब भी किसी चीज को खरीदें अपने विवेक को जागृत रखें तथा ऐसी सामग्री कदापि न लें जो किसी के खून में सनी हो।



कुत्ते

कुत्ते सदियों से मनुष्य की सेवा करते रहे हैं, किन्तु मनुष्य ने कभी इस वफादार कौम के साथ उतना अच्छा व्यवहार नहीं किया जितना अच्छा किया जाना चाहिये। अमेरिका में नर्म खाल के कुत्तों का एक साथ कत्ल कर दिया जाता है। इन्हें कतार में खड़ा कर दिया जाता है और बिजली के करेंट से मार डाला जाता है। इनमें

अधिकांश पप्स होते हैं। इसकी नर्म खाल के पर्स बनाये जाते हैं। देश की नगर पालिकाएँ/नगरपालिक निगम आबारा कुत्तों को प्रतिदिन बहुत बड़ी संख्या में बिजली के शॉक से या ज़हर दे कर मार डालते हैं।



मिक (गंध मार्जार)

मिक, या चिन्चिल्ला एक रोएँदार खूबसूरत जानवर है। दुर्भाग्य से रोमवाले पशुओं पर आदमी हमेशा से कहर ढाता रहा है। मिक एक निरीह प्राणी है, जो अपने मसूण/चिकने रोओं के लिए मशहूर है। मिक की खाल जिस तरह खींची जाती है, वह एक लोकहर्षक दृश्य है। इसके फर/रोओं से टोपियाँ/दस्ताने/कोट/स्वेटर/खिलौने/ब्लैकेट/पर्स/कार-सीट-कवर्स इत्यादि बनाये जाते हैं। जिनकी खाल का आदमी लगातार इस्तेमाल करता आ रहा है वे हैं खरगोश, कराकुल, भेड़, मिक, खिसकोली, रीछ, कुत्ता, बकरा आदि। मिक लगभग २० सेंटीमीटर लम्बा जानवर होता है। यह नर-वानर (प्राइमेट) श्रेणी का जन्तु है। इसके कान गोल, आँखें सुदीर्घ, और प्राँजल होती हैं। यह ज्यादातर दक्षिण भारत और लंका में पाया जाता है। विश्व में मिक-उत्पादनों में विगत चालीस वर्षों में काफी वृद्धि हुई है। अब तो भारत भी होड़ में आगे आ गया है (अच्छाइयों की होड़ में आगे आने की आदत वह धीरे-धीरे भूल रहा है)। आज से ४० साल पहले साढ़े तीन लाख मिकों की हत्या होती थी; किन्तु आज यह संख्या ढाई करोड़ हो गयी है अर्थात् हर साल दुनिया में ढाई करोड़ मिक मौत के घाट उतार दिये जाते हैं; क्यों?

स्पष्टतः मनुष्य के मौज-शौक के लिए। दुःखद यह है मिकों का सारा जीवन पिंजरों में बीतता है; किन्तु जैसे ही इनकी चमड़ी व्यापारिक दृष्टि से काम में आने-जैसी हो जाती है, इन्हें मार डाला जाता है।

फर/रोएँ के व्यापार ने भारत को भी हिंसा-की-अन्तहीन दौड़ में ला खड़ा किया है। कश्मीर में कुलू से कोई सत्तर मील दूर गारसाँ है जहाँ खरगोश की खाल का एक व्यवसाय खड़ा किया गया है। खरगोशों के संवर्द्धन के लिए फार्म बनाये गये हैं, जिनमें खरगोशों को इसलिए पाला जाता है ताकि आगे चल कर उनकी खाल खींची जाए और विदेशी मुद्रा को देश में आकर्षित किया जाए। जिस तरह कश्मीर में खरगोश की खाल उतारी जाती है ठीक ऐसे ही बीकानेर (राजस्थान) में कराकुल भेड़ों की खालें उतारी जाती हैं।

आइये, फिर एक बार मिक-के-किस्से पर आयें। मिक-शिशु बहुत सुन्दर होता है। शिशु दुनिया-भर के सुन्दर और निरीह होते हैं। वे भगवत्-रूप होते हैं। इन

शिशुओं की पीठ पर एक सुनहला पट्टा होता है, जो बड़ा होने पर लुप्त हो जाता है, अतः इन्हें कम उम्र में ही मार डाला जाता है। इन पट्टों से महिलाओं-के-कोट बनाये जाते हैं। एक कोट में सैकड़ों पट्टे लगते हैं। यूरोप और अमरीका की अमीर महिलाएँ चिन्चिल्ला कोट पहिनती हैं। यह कोट संसार का सबसे महँगा कोट माना जाता है।



खरगोश

खरगोश की खाल तो खींची ही जाती है, उसे कई और-और प्रयोगों में भी शहीद होना होता है।

बाज़ार में तरह-तरह के शोम्पू मिलते हैं; किन्तु शायद आप नहीं जानते कि इन शोम्पू-तरलों में खरगोश का अन्धत्व/उसकी मौत घुली हुई है।

कहीं शोम्पू इनका उपयोग करने वाली कोमलांग नारियों की आँख न ले बैठे, या कहीं उनके कोमल चर्म/त्वक् को कोई नुकसान न पहुँच जाए अतः प्रयत्न किया जाता है कि इसे अधिकाधिक निरापद बना लिया जाए। ऐसा करने में खरगोश की आँखें चली जाती हैं और उनमें खून उभर आता है। शोम्पू को बाज़ार में लाने से पहले खरगोश की नरम आँखों में डाला जाता है। ऐसा उसे बाँध कर किया जा सकता है क्योंकि इससे जो तड़पन और कष्ट उसे होता है उसकी तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते। आँखें खुली रखने के लिए कभी तो उसकी पलकों को टाँक दिया जाता है और कभी आइओपनर्स का उपयोग किया जाता है।

हम समझते हैं शोम्पू के स्थान पर और बहुत सारे विकल्प हैं जिनका उपयोग सरलता से और अधिक प्रभावशीलता के साथ किया जा सकता है।

एस्ट्रोजन प्राप्त करने की कथा भी बड़ी दर्दनाक है। एस्ट्रोजन परफ्यूमरी के काम आता है। इसे गर्भवती घोड़ी के मूत्र से प्राप्त किया जाता है। घोड़ी को डंडों से मारा जाता है ताकि वह मूत्र दे और अधिकाधिक एस्ट्रोजन उपलब्ध हो। एस्ट्रोजन के लिए घोड़ी को प्रायः गर्भवती रखने की कोशिश भी की जाती है।

और भी हैं कई जुलम आदमी के जो वह लगातार पशुओं पर, और प्रकृति पर ढा रहा है; किन्तु हमने यहाँ चुने हुए कुछ इसलिए दिये हैं ताकि हमारा विवेक जगे और हम रोजमर्रा के काम में आने वाली वस्तुओं को अहिंसा के संदर्भ में ही खरीद सकें, या काम में ला सकें।

—प्रलयंकर

गोम्मटगिरि : श्रद्धा, चिन्तन और आचरण का समन्वय

बाबूलाल पाटोदी/डॉ. नेमीचन्द जैन; इन्दौर; ३० मार्च १९८५

डॉ. नेमीचन्द जैन : हमारी बातचीत का विषय एक ऐसे निर्माणाधीन/नवोदित जैन तीर्थ से है, जिसका प्रभाव लोकजीवन पर होगा, प्रदेश के साथ उत्तर भारत पर होगा और पूर्णतया विकसित होने पर संपूर्ण भारत पर पड़ेगा। सबसे पहले मैं यह जानना चाहूँगा कि जैसे जब कोई बीज कहीं पड़ता है, तब वह अंकुरित होता है; वैसे ही गोम्मटगिरि का बीजांकुरण कब हुआ? ऐसा कौन-सा मंगल स्थल और समय था, जब इस स्वप्न ने आपमें, या एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी, या स्व. दुलीचन्द जी सेठी, या स्व. शान्तिलाल जी पाटनी में अंगड़ाई ली?

बाबूलाल पाटोदी : स्वर्गीय मित्र-द्वय दुलीचन्दजी सेठी और शान्तिलालजी पाटनी चाहते थे कि इन्दौर और बनेड़िया के बीच कोई-न-कोई ऐसा सुविधा-सम्पन्न धार्मिक स्थान होना चाहिये, जहाँ यात्रीगण दर्शन आदि के लिए शान्तिपूर्वक ठहर सकें। वे मेरे पास कई बार आये भी; लेकिन मैं उन्हें हमेशा टालता रहा।

ने. : वैसे टालने की आदत तो आपकी नहीं है।

बा. : टालता इसलिए रहा कि मन्दिर (धर्म-स्थल)-निर्माण का काम बड़ा है, इतना बड़ा निर्माण-कार्य यह शहर बर्दाश्त कर भी सकेगा या नहीं, यही सोचता रहा।

ने. : आप गंभीरतापूर्वक सोच-विचार करते रहे; मूल्यांकन करते रहे।

बा. : बात सन् १९७९ की है, आज से छह वर्ष पहले की; स्व. शान्तिलाल जी पाटनी का धार रोड पर एक कारखाना है, वहाँ एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी (इन्दौर में संपन्न द्वितीय वर्षावास के उपरान्त) पधारे थे। सायंकाल हम कुछ मित्र महाराजश्री के साथ भ्रमण कर रहे थे। सामने एक पहाड़ी थी, पाटनीजी ने उसे दिखाते हुए महाराजजी से कहा कि इस पहाड़ी पर भगवान् बाहुबली की मूर्ति स्थापित हो, ऐसी मेरी मनोकामना है; आप पाटोदीजी को आदेश दीजिये। महाराजजी मेरी तरफ देख कर कहने लगे कि यहीं से पास में मक्सीतीर्थ है, जहाँ श्वेताम्बर और दिगम्बर समाज के लोग पिछले ८५-९० वर्षों से लड़ रहे हैं। उस तीर्थ पर जाने से मन में जो शान्ति पैदा होनी चाहिये, वह नहीं हो पाती है, क्योंकि विद्वेष की आग भड़कती रहती है; क्यों न एक ऐसा धर्मस्थल हो, जहाँ लोगों को आत्म-शान्ति की प्रेरणा मिले। व्यर्थ के विवादों को छोड़ क्यों न हम अलग से अच्छा कुछ करें?

ने. : सहज ही उनके मन में यह आया कि वह स्थल एकान्त में हो, ऊँचा हो, और शहरी कोलाहल से दूर हो।

बा. : बात वहीं-की-वहीं रह गयी। इस बीच भगवान् बाहुबली सहस्राब्दि-समारोह (गोम्मटेश्वर महामस्तकाभिषेक, २२ फरवरी, १९८१) की तैयारियाँ प्रारंभ हो गयीं। महाराजश्री का इन्दौर से विहार भी हो गया। कुछ समय पहाड़ी से सम्बन्धित दस्तावेज ढूँढ़ने में निकल गया। कुछ अज्ञोन्न मित्रों ने तय किया कि मैं साठ वर्ष का होगया हूँ, इसलिए मेरी षष्टिपूर्ति (११ जनवरी, १९८१) मनायी जाए, आप भी उसमें शामिल थे। उस षष्टिपूर्ति के आयोजन में प्रदेश के मुख्य-मंत्री (अर्जुनसिंहजी) भी आये थे। इन्दौर-स्थित अभिनव कला समाज के प्रांगण में हजारों लोगों की उपस्थिति थी। मैंने उस वक्त कोई बात नहीं कही थी। पहले कभी मैं गोम्मटगिरि के बारे में मुख्यमंत्रीजी से बात कर चुका था। नामालूम क्या उनके मन में हुआ कि जब वे बोलने खड़े हुए तब उन्होंने कहा कि पाटोदीजी को मैं भला क्या दे सकता हूँ? उनकी इस षष्टिपूर्ति के उपलक्ष्य में मित्रों ने उन्हें कई उपहार दिये हैं। मैं मध्यप्रदेश शासन की ओर से उनका जो एक सांस्कृतिक स्वप्न है, उसे पूरा करने के लिए, इन्दौर से ९ किलोमीटर दूर स्थित टेकरी, जिसकी वे माँग कर रहे थे, भेंट करता हूँ। यह सुनते ही लोगों ने तालियाँ बजा कर कृतज्ञता और प्रसन्नता व्यक्त की।

ने. : इस तरह एक सांस्कृतिक उपहार मुख्यमंत्रीजी ने आपको दिया।

बा. : दे तो दिया, लेकिन उसके बाद मेरे सामने काम का एक बड़ा पहाड़ आ गया।

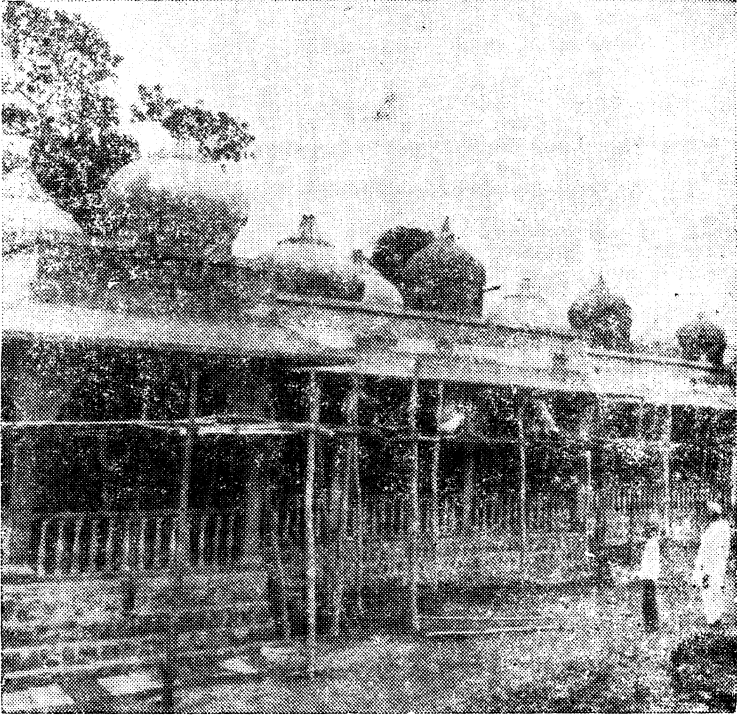
ने. : मिली आपको पहाड़ी और सामने आ गया पहाड़ !

बा. : कैसे कहूँ मैं? उस समय आदरणीय भैया (मिश्रीलालजी गंगवाल) जीवित थे, सेठ राजकुमारसिंह जी भी स्वस्थ थे, शान्ति लालजी पाटनी भी थे, अन्य मित्रगण भी थे। तो सबसे पहले हमने एक दिन (फरवरी १९८१) मुहूर्त निकलवाया कि वहाँ चल कर भूमि-पूजन किया जाए। पं. नाथूलालजी यह विधि संपन्न करवाने वाले थे, करीब हजार लोगों की उपस्थिति में विधि संपन्न हुई। आपने तो देखा ही है कि गोम्मटगिरि पर एक वृक्ष तक न था। बिल्कुल सुनसान जगह थी। पानी की एक बूंद तक नहीं थी। इस स्थान को कैसे बनाना, क्या करना—यह एक बड़ा जटिल सवाल मेरे (सबके) सामने था। सबसे पहले मैं मध्यप्रदेश शासन को बहुत-बहुत धन्यवाद देना चाहता हूँ कि उसने पास में जो पम्पिंग स्टेशन है, उससे जल प्रदाय की अनुमति दे दी।

ने. : राज्य शासन ने; क्यों?

बा. : वह नगरपालिक निगम की सीमा में नहीं है; इसलिए राज्य शासन ने विशेष अनुमति प्रदान कर नगर निगम की अधिकृत किया।

ने. : इस काम के लिए उसके प्रति आप सामाजिक कृतज्ञता व्यक्त कर रहे हैं; यही न?



निर्माणाधीन जैन तीर्थ -- गोम्मटगिरि

बा. : करना ही चाहिये। दूसरी बुनियादी जरूरत थी पाँवर की; वह भी तुरन्त मिल गया।

ने. : जल और बल।

बा. : पानी मिला और ऊर्जा भी मिली। उम्मीद होने लगी कि अब हम इस काम को आगे बढ़ा सकेंगे।

ने. : इस तरह आपके चेहरे पर आब (पानी) आ गया।

बा. : पानी भी आ गया और शक्ति भी (हँसी); लेकिन अभी तक तो निर्माणकार्य की कल्पना-ही-कल्पना थी, स्थपति (आर्किटेक्ट) का सवाल था। वह भी हल हो गया। श्री नातू एक अनुभवी/कुशल शिल्पी हैं; उनके द्वारा नक्शे बनाये गये। व्यापक विचार-विमर्श के लिए उन्हें दिल्ली, बम्बई, बड़ौदा आदि भेजा गया; विस्तृत जन-संपर्क हुआ।

ने. : शिल्प-की-दृष्टि से संपूर्ण योजना पर काफी सलाह-मशविरा हुआ।

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/१९५

बा. : प्लान (योजना) तैयार किया गया कि हम गोम्मटगिरि का कैसा निर्माण करना चाहते हैं।

ने. : उपहार आपको आकस्मिक मिला, लेकिन योजना विचार-विमर्श-पूर्वक तैयार की गयी।

बा. : कार्य का आरंभ सुनियोजित ढंग से करना था; अतः गोम्मटगिरि पर ३ मई, १९८१ को एक समारोह आयोजित किया गया, जिसके मुख्य अतिथि हुए उद्योग-पति-द्वय साहू श्रेयांस प्रसादजी जैन और अभयकुमारजी कासलीवाल। समारोह में उपस्थित लोगों से मैंने एक अपील की कि हमें अभी कुछ बुनियादी कामों के लिए धन चाहिये; सबसे पहले तो जल-प्रदाय-केन्द्र का निर्माण करना है, जिस पर करीब २-३ लाख रुपये खर्च होंगे। जो भाई इसमें सहयोग देना चाहे, अवश्य दें। लोगों ने आधे घण्टे में उदारतापूर्वक उसकी पूर्ति कर दी।

ने. : जल-प्रदाय के लिए अपेक्षित राशि इतने कम समय में इकट्ठा हो गयी।

बा. : समारोह में यह भी बताया गया कि भगवान् बाहुबली की तीस फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा के चारों ओर चौबीस मन्दिरों का निर्माण किया जाएगा। एक-एक वेदी पर २१-२१ हजार रुपये खर्च आयेगा। लोगों में इतना अपूर्व उत्साह था कि समाज के २४ महानुभावों ने २१-२१ हजार रुपये प्रदान करने की घोषणा कर दी। इस प्रकार यह सारा काम लोगों के उदार सहयोग से सहज ही संपन्न हो गया; लेकिन फिर एक दुर्घटना घटी। शान्तिलालजी पाटनी और उनकी पत्नी; दुलीचन्दजी सेठी और उनकी पत्नी भगवान् बाहुबली की मूर्ति के लिए पाषाण, शिल्पी आदि निश्चित करने के लिए जयपुर गये थे। लौटते समय भीलवाड़ा के नजदीक २६ सितम्बर, ८१ को कार-दुर्घटना में चारों का आकस्मिक देहावसान ही गया। इन्दौर में अफवाहें फैलनी शुरू हुई कि वहाँ (गोम्मटगिरि पर) कोई देवी-देवता है, व्यन्तर है जो यह सब कर रहा है। अन्धविश्वास फैलने लगा, या फैलाया जाने लगा।

ने. : क्या अन्धविश्वास और जैनधर्म का कोई रिश्ता है ?

बा. : बिल्कुल नहीं है। मैं तो समझता हूँ अन्धविश्वास का जैनधर्म से दूर का भी रिश्ता नहीं है; लेकिन परिस्थिति विषम थी। सामना तो करना ही था।

ने. : दुर्घटनाओं की शृंखला बन गयी।

बा. : अतः करीब-करीब छह महीनों तक सारा काम ठप्प हो गया। कोई भी आगे आने को तैयार नहीं था।

ने. : संकट पैदा हो गया।

बा. : इस भारी संकट में क्या किया जाए ? मैं विद्यानन्दजी महाराज के पास गया। उन्हें सारी परिस्थिति बतायी; वे बोले—'बिल्कुल चिन्ता मत करो। हिम्मत

रखो, सब अच्छा होगा। मैं फिर आचार्य श्री विमलसागर जी के पास भी गया; उन्होंने कहा—'चिन्ता की कोई बात नहीं है, अष्टाह्निका में इन्द्रध्वज मण्डल-विधान करो, सवा लाख जाप (णमोकार मन्त्र) भी करो, फिर देखो, सारा काम निरापद/निर्विघ्न संपन्न हो जाएगा। उनके आदेशानुसार गोम्मटगिरि पर १ से ८ नवम्बर, १९८४ तक इन्द्रध्वज मण्डल विधान एवं विश्व-शान्ति-यज्ञ पं. नाथूलालजी शास्त्री के मार्गदर्शन में संपन्न किया गया। सवा लाख जाप भी उत्साहपूर्वक किये गये। गोम्मटगिरि पर जो एक पुराना मकान बना हुआ था, उसका नवीनीकरण किया गया और इन मंगलमय क्षणों में आदिनाथ भगवान् और पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिष्ठित मूर्तियाँ विराजमान की गयीं। इन्हें इन्दौर-स्थित मारवाड़ी मन्दिर, और समवसरण मन्दिर से लाया गया। योग देखिये, जिस दिन से प्रतिमाएँ विराजमान हुई हैं, निर्माण-कार्य निरन्तर एक-जैसी गति से चल रहा है। स्व. दुलीचन्दजी सेठी के लड़के कमलकुमार तो खूब दत्तचित्त हो कर इस काम में लगे हैं। उन्होंने निर्माण-कार्य का दायित्व संभाला, और उनकी पूरी टीम इस काम में जुट गयी। नतीजतन गत दो वर्षों में कुल मिला कर २० लाख रुपयों का निर्माण-कार्य हुआ है।

ने. : इसमें कितना रुपया और खर्च हो जाएगा ?

बा. : संपूर्ण योजना पर तो लगभग ५ करोड़ रुपया खर्च होगा।

ने. : यह कई चरणों में विभाजित होगा।

बा. : मेरे जीवन-काल में होगा या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता, परन्तु इतना जरूर कह सकता हूँ कि यदि मेरी कल्पना और योजना के अनुसार चला गया, तो इस क्षेत्र (गोम्मटगिरि) पर सिर्फ मूर्ति और मन्दिर ही नहीं होंगे, अन्य जन-कल्याणकारी प्रवृत्तियाँ भी विकसित हो सकेंगी। आवश्यकता आज जीवन-दर्शन के साथ जीवन-चर्या (आचरण) को जोड़ने की है। दर्शन और संस्कृति का सुमेल और समन्वय चरितार्थ होना चाहिये। जब तक हमारे जीवन में चौके की शुद्धि नहीं होगी, तब तक हम बुनियादी तौर पर जिन्दा नहीं रह पायेंगे।

ने. : गोम्मटगिरि और चौके को आप कैसे जोड़ेंगे ?

बा. : गोम्मटगिरि और चौके को मैं इसलिए जोड़ रहा हूँ कि हमारा मन्दिर, देव-दर्शन तभी सफल हो सकता है, जब हमारा मन शुद्ध हो। हमारे यहाँ तीन शुद्धियाँ कही गयी हैं : मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि। हम नहा-धो-कर काया को शुद्ध कर सकते हैं; वाणी से भी कुछ मधुर और सत्य बोल सकते हैं, लेकिन मूल-भूत शुद्धि तो मन की होनी चाहिये। हम मन्दिर में कुछ कहें, बाहर कुछ कहें, तो लोगों पर विपरीत असर पड़ता है; हमारा जीवन भी विसंगत और विषमतापूर्ण हो जाता है।

ने. : गोम्मटगिरि के निर्माण और विकास में आप इसका प्रारंभ से ध्यान रख रहे हैं। वर्तमान में वहाँ निर्माण-कार्य क्या/किस प्रकार चल रहा है।

बा. : मंदिरों का निर्माण तो हुआ ही है, साथ में त्यागियों के निवास/प्रशिक्षण-प्रशिक्षणके लिए त्यागी-निवास, संत-निवास, अतिथि-गृह, धर्मशाला इत्यादि भी बन रहे हैं।

ने. : मूर्तियों के साथ-साथ आप गोम्मटगिरि को एक जीवन्त तीर्थ का रूप भी दे रहे हैं।

बा. : भावना तो यही है। हमारे यहाँ जो त्यागी बनना चाहते हैं, उन लोगों का प्रशिक्षण आवश्यक है। त्याग की वृत्ति, त्याग की भावना तो कई लोगों के मन में आती है, लेकिन जब वे त्याग कर बैठते हैं, तब कई तरह की समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। सोचते हैं क्रोध या भावावेश में त्याग तो किया, अब क्या करें? उनकी परिस्थिति और मनःस्थिति बहुत असंतुलित हो जाती है।

ने. : उलझन खड़ी हो जाती है; वे दुविधा में फँस जाते हैं।

बा. : मैं सोचता हूँ ऐसे त्यागियों के लिए एक विद्यालय या प्रशिक्षण-केन्द्र हो।

ने. : अर्थात् त्यागियों के प्रशिक्षण एवं मार्गदर्शन के लिए आप यहाँ कोई रचनात्मक प्रवृत्ति शुरू करना चाहते हैं।

बा. : प्रारंभ में १५-२० त्यागी हों, उनके लिए आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध करवायी जाएँ।

ने. : त्यागी यानी मुमुक्षु, जो मोक्ष के अभिलाषी हैं। उनके लिए यहाँ आप त्यागी-निवास का निर्माण करा रहे हैं।

बा. : उनके लिए एक समृद्ध सरस्वती भण्डार की योजना भी है। विद्वान् भी हों; साथ ही उन्हें पढ़ने-पढ़ाने के लिए तैयार किया जाए, कम-से-कम दो साल की ट्रेनिंग (प्रशिक्षण) लेने के बाद ही वे त्यागी बनें। इसका अपना महत्त्व है, केवल मंदिरों के निर्माण से अब धर्म टिकने वाला नहीं है।

ने. : लेकिन इसे करेंगे कैसे ?

बा. : एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी का आशीर्वाद तो है ही, आचार्य श्री विद्यासागरजी और आचार्य श्री धर्मसागरजी से भी चर्चा हुई थी, वे भी यही चाहते हैं। पं. फूलचन्दजी शास्त्री जैसे उच्चकोटि के विद्वान् हमारे बीच हैं, उनका भी उपयोग हम कर सकते हैं; प्रारंभ में अधिक नहीं, तो दस त्यागियों (त्यागी बनने के लिए उत्सुक/इच्छुक) के रहने के लिए स्थान हो, उनके स्वाध्याय के लिए चुने हुए शास्त्र हों। यहाँ से शुरू तो करें, फिर धीरे-धीरे विकास हो निकलेगा।

ने. : दूसरी प्रवृत्ति आप क्या चाहते हैं ?

बा. : समाज के उन लोगों के लिए जिन्होंने जीवन-भर समाज को दिया, लेकिन अब जिनकी वृद्धावस्था है और जीवन के उत्तरार्द्ध में जिनके परिवार में कोई नहीं है, या परिवार में यदि कोई है भी, तो उनके साथ कोई रहना नहीं चाहता। मेरी

इच्छा है कि यहाँ एक वृद्धाश्रम बनाया जाए, जहाँ ऐसे लोग रहें। वे दे सकते हों, तो दें, न दे सकते हों, तो न दें। उनके लिए हर प्रकार की सुविधाएँ हम यहाँ संयोजित करें।

ने. : जो लोग अस्ताचल की ओर चले गये हैं, थक गये हैं, उन्हें आप सुख-शान्तिपूर्वक रखना चाहते हैं ताकि निवृत्ति के इन क्षणों में वे शुद्ध, सात्त्विक, शान्त, सम्मानजनक और स्वाभिमान पूर्वक अपनी अन्तिम यात्रा कर सकें।

बा. : गोम्मटगिरि को इतना बड़ा तीर्थ बनाने की एक परिकल्पना है, २४ मन्दिर बनायेंगे, भगवान् बाहुबली की भव्य मूर्ति की स्थापना होगी, लेकिन जब तक पूजन करने वाले नहीं होंगे, तब तक इस सबका कोई मतलब नहीं होगा; इसलिए ऋषभ जनकल्याण परिसर का शिलान्यास (मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंहजी) करवाते हुए मैंने उनसे निवेदन किया था कि इसके लिए गोम्मटगिरि के आस-पास की भूमि प्रदान की जाए। बड़ी खुशी की बात है कि करीब १११ एकड़ जमीन का अग्रिम आधिपत्य (एडवान्सड पजेशन) भगवान् बाहुबली दि. जैन ट्रस्ट को शासन ने दे दिया है। मेरी भावना है कि समाज का वह तबका, जो निचले वर्ग का है, मध्यमवर्गीय है, जिसके पास मकान नहीं है, रहने के लिए जगह नहीं है, सविन्य करता है, काम करता है, ऐसे वर्ग के लोगों के लिए रहने की व्यवस्था इसके ईर्द-गिर्द हो।

ने. : मतलब यह कि तीर्थ-निर्माण के साथ-साथ तीर्थ-रक्षा की आवश्यकता भी है।

बा. : है; उसे भी पूरा करना है।

ने. : हमारे पास इतने मन्दिर हैं कि हम उनकी ठीक से सार-सँभाल ही नहीं कर पा रहे हैं; फिर आप एक और मन्दिर क्यों बनवा रहे हैं? क्या इसकी अपेक्षा जो हैं उनके जीर्णोद्धार की ज़रूरत नहीं है।

बा. : जीर्णोद्धार तो होना चाहिये। मैं मानता हूँ कि नये मन्दिरों का निर्माण और पुरानों का जीर्णोद्धार—ये दोनों काम साथ-साथ चलते रहना चाहिये। यदि हज़ारों वर्ष पहले लोग यह सोचते कि वे जिन मन्दिरों का निर्माण कर रहे हैं, कल उनकी पूजा करने वाला कौन होगा, तो हमें जो यह गौरवशाली सांस्कृतिक विरासत मिली है; वह नहीं मिलती, हम उससे वंचित होते।

ने. : फिर जनसंख्या के अनुपात में मन्दिरों की वृद्धि भी स्वाभाविक है।

बा. : सही कहा आपने। इन्दौर को ही लें, पहले १६ मन्दिर थे, आज ५० से अधिक हैं। पुरानों का जीर्णोद्धार ज़रूरी है, लेकिन नवीन मन्दिरों के निर्माण की भी उतनी ही आवश्यकता है, उसे रोकना नहीं जा सकता है।

ने. : लेकिन मन्दिर-निर्माण के पीछे कोई विचार तो होना चाहिये।

बा. : ज़रूरी है। फिलहाल गोम्मटगिरि के आस-पास करीब-करीब एक

हजार परिवार बसाये जा सकें, ऐसी योजना है। क्षेत्र के नज़दीक रहने से उन्हें सदाचार की प्रेरणा निश्चित मिलेगी। उन पर तीर्थ का असर न पड़े, यह असंभव है; क्योंकि आदमी जब रोज दर्शन करता है, नियम पूर्वक मन्दिर जाता है, तो उसका खान-पान, रहन-सहन सात्त्विक और सहज बनता है। उसमें सुधार हो सकता है।

ने. : एक खतरा है, कहीं ऐसा न हो कि यह तीर्थ पर्यटन-केन्द्र में बदल जाए ?

बा. : खतरा इसलिए नहीं है जिसे मॉडर्न (आधुनिक) कहते हैं, ऐसा तो हम वहाँ करना नहीं चाहते हैं। वहाँ तो जो भी होगा, सांस्कृतिक धरातल पर होगा। हमारे लिए सात्त्विकता और सादगी ही मुख्य है; चकाचौंध नहीं; मन्दिर भी जो बना रहे हैं, सादे और सुन्दर हैं, भारतीय कला-शिल्प का ध्यान हम वहाँ रख रहे हैं।

ने. : कला, शिल्प, सादगी।

बा. : इन तीनों को दृष्टि में रख कर एक ऐसी धर्म-स्थली का निर्माण हम कर रहे हैं, जो शहर के नज़दीक भी हो और दूर भी।

ने. : क्या भविष्य में भी यह नज़दीकी और दूरी बनी रहेगी ?

बा. : अभी यह कैसे कहा जा सकता है।

ने. : यदि आप ऐसा कर सके, तो यह तीर्थ एक आदर्श और अनुकरणीय तीर्थ बन जाएगा।

बा. : हमारे जो तीर्थ हैं, वे बियावान जंगलों में भी हैं, एकान्त, निर्जन स्थलों में; लेकिन वह फासला अब कम हुआ है। सावधानी रख सकते हैं कि नवोदित तीर्थ गोमटगिरि को शुरू से ही शहरी नज़दीकी के कारण होने वाली वुराइयों से बचाया जाए। यह एक अलभ्य अवसर मिला है कि इस तीर्थ के निमित्त से समाज के उत्पीड़ित भाइयों को शान्त और सात्त्विक जीवन व्यतीत करने के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराया जाए। इस जिम्मेदारी को हमें हर हालत में पूरा करना है।

सौभाग्य की बात है कि एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी की षष्टिपूर्ति को हम सदाचार/शाकाहार वर्ष के रूप में मना रहे हैं। 'श्रावकाचार' भी इससे जुड़ा हुआ है। मुझे विश्वास है यह निर्माणाधीन तीर्थ धर्म, अध्यात्म और सदाचार की दृष्टि से सार्थक सिद्ध होगा।

ने. : यह सुखद संयोग है कि आपकी षष्टिपूर्ति पर तो यह टेकरी प्राप्त हुई और महाराजश्री की षष्टिपूर्ति पर उसका निर्माण और विकास हो रहा है। अब इसकी संपूर्णता के लिए किसकी षष्टिपूर्ति तलाश रहे हैं ?

बा. : आपकी (हँसी)।

ने. : अच्छा, यह बताइये कि आपने भगवान् बाहुबली की प्रतिमा को ही क्यों चुना ?

बा. : पारम्परिक दृष्टि से यदि देखें, तो बाहुबली उत्तर भारत के थे; लेकिन दक्षिण भारत में चामुण्डराय ने बाहुबली की विशाल/विराट् मूर्ति की स्थापना की। महात्मस्तकाभिके के अवसर पर श्रवणबेलगोल में रह कर प्रथम बार मैंने इस बात का अनुभव किया कि विद्यानन्दजी महाराज के प्रयत्न से दक्षिण और उत्तर एक-दूसरे के निकट आये हैं।

ने. : दोनों के बीच सांस्कृतिक मैत्री स्थापित हुई है।

बा. : अभी तक हम उत्तर भारत के लोग दक्षिण भारत के लोगों को जैन नहीं मानते थे। मैं सोचता हूँ कि वे भी हमें जैन नहीं मानते होंगे; क्योंकि दोनों की उपासना-पद्धतियों में काफी फर्क है। भगवान् बाहुबली की इस मूर्ति की स्थापना के पीछे विचार और भावना यही है कि हम दक्षिण को मालवा में लायें और मालवा को दक्षिण में ले जाएँ।

ने. : एक सेतुबान्ध चाहते हैं ?

बा. : हाँ; आपने स्वयं देखा है कि दक्षिण में पैदा हुए विद्यानन्दजी ने उत्तर भारत में आ कर धर्म-ध्वज को फहराया है; उत्तर भारत से विहार कर दक्षिण भारत में पहुँच कर विश्व में जैनधर्म को पहुँचाने का प्रयत्न किया है। वे पुनः हमारे बीच पधार रहे हैं। इस दृष्टि से भगवान् बाहुबली सेतुबन्ध जैसा ही काम करेंगे। वास्तव में देखा जाए, तो दक्षिण और उत्तर को जोड़ने का काम बुनिधादी और मूलमूत है।

ने. : आप लगता है चामुण्डराय की भूमिका अदा कर रहे हैं।

बा. : वे बहुत बड़े/महान् व्यक्ति थे; उनकी तुलना में मैं कहाँ ठहरता हूँ।

ने. : उनकी माता काळ्ळ देवी की जो भूमिका थी, वह महाराजश्री की भूमिका मालूम पड़ती है।

बा. : यह तो मैं नहीं कह सकता बस, इतना ही कह सकता हूँ कि हमें उनका आशीर्वाद प्राप्त है।

ने. : जो हो, इसके साथ कोई महिला का जुड़ना जरूरी लगता है, श्रीमती शरयू बहन गुल्लिकाअज्जी की भूमिका निभा रही हैं।

बा. आपने देखा होगा कि श्रीमती शरयू दफ्तरी कहाँ-से-कहाँ चली आयी हैं। वे एक प्रगतिशील-महिला (एडव्हांस्ड) थीं, किन्तु आज वे इस स्थिति में आ गयी हैं कि कहीं भी जाएँ छना और प्रायुक्त जल पीती हैं। श्रावकाचार का पूरा-पूरा ख्याल रखती हैं। कन्द-मूल नहीं खातीं, रात्रि-भोजन नहीं करतीं, देव-दर्शन के बिना कुछ भी ग्रहण नहीं करतीं।

ने. : जो हो एक गरिमा-मण्डित भारतीय नारी आपके इस तीर्थ के साथ जुड़ गयी है।

बा. : देख रहा हूँ कि लगातार/सतत् संपर्क में रहने से वे धर्म के प्रति आकृष्ट हुई हैं; उनमें धार्मिक भावना इतनी ओत-प्रोत है कि शायद भविष्य में...

ने. : श्रमण संस्कृति को ले कर आप यहाँ क्या करने जा रहे हैं ?

बा. : श्रमण संस्कृति का मूल लक्ष्य अहिंसा है। चरित्र/आचरण की दृष्टि से हम यह प्रयत्न कर रहे हैं कि लोग शाकाहार/सदाचार को अपनायें। व्यसन-मुक्ति के लिए भी हम प्रयत्नशील हैं। जनमानस में हम ऐसी भावना जगा रहे हैं कि वह व्यसन-मुक्ति की ओर बढ़े; जैन / श्रमण संस्कृति के अनुरूप हम अपने जीवन में सादगी उतारें और जैन समाज को इस स्थिति में ला खड़ा करें कि लोग उसका अनुकरण कर सकें। सामान्यतया लोग जैन समाज को एक वणिक् समाज के रूप में देखते और शोषक वर्ग के रूप में निरूपित करते हैं; इस शलतफहमी का उन्मूलन हम अहिंसा को अपना कर ही कर सकते हैं।

ने. : क्या तीर्थ का कोई राष्ट्रीय योगदान भी होगा ?

बा. : अवश्य होगा। हम राष्ट्र से तो अलग हैं नहीं। राष्ट्र की एक सांस्कृतिक इकाई होने के नाते जब एक व्यक्ति का संपूर्ण राष्ट्र पर असर पड़ता है, तब फिर हम इतना व्यापक काम करेंगे, तो उसका राष्ट्रीय जीवन पर असर न पड़े, यह कैसे हो सकता है? राष्ट्रीय जीवन को सदाचार-सम्पन्न बनाना क्या कम योगदान होगा ?

ने. : 'राष्ट्रीयता' की जो परिभाषा है, उस दृष्टि से तीर्थ का योगदान क्या होगा ? साम्प्रदायिक समन्वय आदि।

बा. : निश्चित मानिये कि आज यदि शान्ति स्थापित करने का कोई मार्ग है, तो वह है भगवान् महावीर का यह अमर सन्देश कि 'जियो और जीने दो'।

ने. : सह-अस्तित्व।

बा. : वही पंचशील, जिसे हम लगातार मानते आये हैं। पंचशील हमारी बुनियाद है। इस दृष्टि से यदि हम सोचें, तो इस क्षेत्र पर हम पंचशील को न केवल 'कहेंगे', बल्कि चरित्र में भी उतारेंगे। उसे चरितार्थ करेंगे। मैं यह मानता हूँ कि ज्ञान से अधिक महत्ता चरित्र की है। शाकाहार/सदाचार वर्ष की अवधि में यदि हमने हज़ार-पाँच सौ लोगों के जीवन को बदल दिया, तो हमारा यह वर्ष सफल माना जाएगा। ये हज़ार-पाँच सौ लोग आगे चल कर लाखों लोगों को तैयार करेंगे।

ने. : इस वर्ष आप इस तीर्थस्थल से संपूर्ण राष्ट्र को एक व्यसन-मुक्त-जीवन देना चाहते हैं। अहिंसा हमारा मूल सिद्धान्त है; शाकाहार के माध्यम से आप यह करना चाहते हैं। क्या इस क्षेत्र का कोई सामाजिक योगदान भी होगा ? क्या सब वर्गों (वय-समूहों) के लिए कोई प्रवृत्ति शुरू करना चाहते हैं ?

बा. : कोशिश करेंगे कि हर वय-समूह के लिए (बालक, युवक, महिला, वृद्ध आदि) कोई-न-कोई प्रवृत्ति क्षेत्र के इर्द-गिर्द शुरू हो। जिनकी इच्छा भजन-पूजन की है, वे वैसा करें; जिनकी इच्छा आमोद-प्रमोद की है, वे सात्त्विक भाव से आमोद-प्रमोद करें।

ने. : आप गोम्मटगिरि को बहुमुखी प्रवृत्तियों का एक जीवन्त तीर्थ बनाना चाहते हैं। यह बहुत बड़ी बात है। एक बात मैं और पूछना चाहता हूँ कि यह तीर्थ उत्तर भारत के अन्य तीर्थों से किस तरह भिन्न, या विशिष्ट होगा ?

बा. : उत्तर भारत के तीर्थ आपने भी देखे हैं। कुंभोज (बाहुबली) को छोड़कर मुझे ऐसा कोई तीर्थ दिखायी नहीं दिया, जहाँ संस्कृति के साथ शिक्षा का समन्वय हुआ हो। मुझे कहीं नहीं लगा कि जहाँ हम जीवन में अपनी सांस्कृतिक परम्परा को अमली रूप दे रहे हों। तीर्थों में भावना से, श्रद्धापूर्वक हम जाते जरूर हैं, लेकिन दर्शन कर कोरमकोर लौट आते हैं।

ने. : अर्थात् सिद्धान्त और चरित्र का अभिनव संगम आप इस तीर्थ को बनाना चाहते हैं। प्रारंभ में तो मन्दिर-निर्माण का स्वप्न ही था, लेकिन अब धीरे-धीरे अन्य प्रवृत्तियाँ भी पल्लवित होती जा रही हैं; और क्या करने वाले हैं यहाँ ?

बा. : इतना काम तो हो ही गया है त्यागियों के लिए छह कमरे बना दिये हैं, यानी छह कक्षों वाला एक भवन उनके लिए तैयार है। इसी तरह यदि साधु-सन्त पधारें, तो उनके लिए एक स्वतन्त्र सन्त-निवास है, जिसमें एक हॉल है तथा दो कमरों की साधना-सुविधा है।

ने. : यह सब आधुनिकता और प्राचीनता को समन्वित करते हुए बनाया गया है।

बा. : प्रयत्न है। तलहटी में एक धर्मशाला निर्माणाधीन है, पाँच कमरे बन चुके हैं; बीस बनाने की योजना है।

ने. : अभी कितने यात्री एक साथ ठहर सकते हैं।

बा. : २००; शौचालय, स्नानघर, पानी आदि की संपूर्ण व्यवस्था है।

ने. : और ?

बा. : साहू जैन ट्रस्ट की ओर से एक सुसज्जित अतिथि-गृह बन रहा है। सेठ सरूपचंद हुकमचंद पारमार्थिक ट्रस्ट की ओर से एक लाख की लागत से एक त्यागी निवास बन रहा है। अलग-अलग लोगों के लिए कुछ कमरे बन रहे हैं। चौबीसी (२४ वेदियाँ) का निर्माण सम्पन्न हो गया है। भगवान् बाहुबली की विशाल/मनोज्ञ मूर्ति भी तैयार है, जिसे जयपुर से वैशाख सुदी अष्टमी (२८ अप्रैल, १९८५) को लाना है। हम कोशिश करेंगे कि साल-भर में (विद्यानन्दजी महाराज के विहार से पूर्व) गोम्मटगिरि की प्रतिष्ठा संपन्न हो जाए।

ने. : वह प्रतिष्ठा-महोत्सव कैसा होगा; परम्परित, या लोक से हट कर? अखिल भारतीय तो वह होगा ही?

बा. : होगा तो अखिल भारतीय ही। स्वप्न है कि हम जैनधर्म की मौलिकताओं को अक्षुण्ण रख कर आधुनिक ढंग से इस तीर्थ की प्रतिष्ठा करवायें। वही पुराने ढर्रे की पद्धति न हो। नाटक-तमाशा न हो, एक ठोस और सार्थक आयोजन हो; जिसके कुछ स्थायी नतीजे सामने आयें।

ने. : क्या तीर्थ पर अनुसंधान के लिए भी कोई प्रावधान आपने किया है?

बा. : मैंने तो कई बार आपसे निवेदन किया है कि अनुसंधान-कार्य का दायित्व आप सँभालें। एक छोटी-सी निकटवर्ती पहाड़ी हमें और मिली है, जिसे हम अनुसंधान केन्द्र के रूप में विकसित कर सकते हैं। आधुनिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में अहिंसक जीवन-शैली के विषय में अनुसंधान किया जा सकता है। शाकाहार तो एक मुदा है ही।

ने. : मेरा भी सोचना है कि पुरातत्त्व आदि पर अनुसंधान की अपेक्षा हम अहिंसा आदि जीवन्त जीवन-मूल्यों पर अनुसंधान करें। तीर्थ की धारणा को लोकजीवन से जोड़ा जाए।

बा. : जोड़ा जाना चाहिये। आगे चल कर इसे जनमत-रचना का एक सशक्त केन्द्र भी बनाना चाहिये।

ने. : गोम्मटगिरि और षष्टिपूर्ति को ध्यान में रख कर क्या आप विशेष और कुछ कहना चाहते हैं?

बा. : इस वर्ष का कार्यक्रम तो बन ही गया है। संपूर्ण वर्ष षष्टिपूर्ति के लिए समर्पित है। शाकाहार-प्रदर्शनी द्वारा शाकाहार का प्रचार करना है। जीवन में अहिंसा को जीवन्त करना और व्यसन-मुक्ति की ओर पूरी ताकत से बढ़ना। मैं अकेला ही नहीं, आप सबके साथ इसे पूरा करने में लगा हूँ। आप देख ही रहे हैं मेरे साथ ऐसे-ऐसे लोग जुड़े हुए हैं, जिनके बिना मैं एक कदम भी आगे नहीं रख सकता। उदाहरण के लिए हमारे सामने बैठे हैं माणक काका (माणकचन्दजी पांड्या), जिनकी मदद के बिना मैं एक कदम भी आगे नहीं रख सकता। इन्हीं का आशीर्वाद है, इन्हींकी सेवा है, और इन्हींका यह काम है, जिसका सुफल मैं ले रहा है।

□ □

ने. : आदरणीय माणकचन्दजी पांड्या, (जिन्हें अक्सर हम सब 'काका साहब' कहते हैं, पाटोदीजी ने तो रहस्योद्घाटन कर ही दिया है। अब आपसे सीधे बात करना चाहता हूँ। सब-से-पहले आप यह बतायें कि गोम्मटगिरि से जुड़ने की प्रेरणा आपको कैसे मिली? आप क्यों जुड़े इससे?

माणकचंद पांड्या : पाटोदीजी के साथ बचपन से काम करता आ रहा हूँ। दोनों की विचार-धारा मिलती है, इसलिए भी साथ-साथ काम करता हूँ? उन्होंने

गोम्मटगिरि का काम उठा लिया, तो मैं भी इससे सहज ही जुड़ गया।

ने. : जो कार्यकर्ता आपके साथ काम कर रहे हैं गोम्मटगिरि को ले कर, आप उनमें किस तरह का उत्साह देख रहे हैं ?

म. : सभी अपना काम उत्साह-पूर्वक कर रहे हैं।

ने. : क्या काम कर रहे हैं ?

मा. : निर्माण-कार्य चल रहे हैं। चौबीस वेदियों का, त्यागी-निवास, सन्त-निवास, धर्मशाला, उद्यान इत्यादि के; हरियाली पहाड़ पर कतई नहीं थी। वह अब ज़रूरी है।

ने. : यह तो इमारतों की बात हुई; और कौन-सी प्रवृत्तियाँ वहाँ चल रही हैं ?

म. : इमारतों के बाद प्रवृत्तियों का क्रम है। पहले मैदान, फिर काम।

ने. : आप हिसाब-किताब का काम तो बहुत करते हैं; कभी अपने जीवन का लेखा-जोखा भी करते हैं ?

म. : नहीं; सारा वक्त सार्वजनिक धन का पाई-पाई हिसाब रखने में ही चला जाता है। जिम्मेदारी निभा रहा हूँ। सोचता हूँ यह भी देव-दर्शन, व्रतोपवास ही है।

ने. : गोम्मटगिरि पर आज तक कितना खर्च कर चुके हैं ?

मा. : करीब २० लाख।

ने. : अब जेब में कितना शेष है ?

मा. : जेब तो खाली ही है।

ने. : और कितना खर्च होने वाला है ?

मा. : जितना मिलता जाएगा, खर्च होता जाएगा।

ने. : लाखों में बात करने वाले हैं, या करोड़ों में।

मा. : योजना तो करोड़ों की है, हमारे जीवन-काल में तो यह क्या पूरी होगी ?

ने. : कितना समय लगेगा।

मा. : कहा नहीं जा सकता। हम तो बिना काम के जी नहीं सकते, बैठे रह नहीं सकते। जब तक हाथ-पाँव चलेंगे, तब तक काम करते रहेंगे।

ने. : एक दशक में तो पूरी हो जाएगी ?

मा. : होनी चाहिये।

ने. : पुख्ता मानिये। यह योजना भी पूरी होगी; और आप भी रहेंगे। आपके मन में श्रावक का क्या स्वरूप है ? श्रावक कैसा होना चाहिये ?

मा. : शाकाहारी, उदार, और अपने कार्य में लगन के साथ मगन।

ने. : जैसे आप ?

मा. : मैं कहाँ हूँ ?

ने. : जो बात पाटोदीजी ने नहीं कही, उसे आपने कह कर सब कुछ संतुलित कर दिया है। वास्तव में आप दोनों परस्पर पूरक हैं, इसीलिए पूर्ण भी हैं। □□

दि कोपरगांव पिपल्स को-ऑप. बैंक लिमिटेड,

महात्मा फुले मार्ग, कोपरगांव, जिला-अहमदनगर (महाराष्ट्र)

स्थापना वर्ष : १९४८

फोन नंबर : ४१८, २८४

२८-२-८५ की सामान्य स्थिती

(रु. लाखों में)

अंशपूजी	५०.४५	सदस्य संख्या	२०२२
अमानतें	२१४.५३	लाभांश वितरण की दर	१२%
ऋण सदस्यों पर	१६४.१७	ऑडीट वर्ग	'अ'
शुद्ध लाभ	५.७५		

बैंक की आर्थिक स्थिति पूर्णतः सुदृढ़ है। बैंक की लॉकर्स की सुविधायुक्त निजी इमारत है। सेवा तत्परता हमारी सेवकों की विशेषता है।

जगन्नाथ दामोदर खैरनार, दिनेकरराव वामनराव शिलेदार, रतनचंद फंदुलाल ठोळे,
मैनेजर उपाध्यक्ष अध्यक्ष

—: संचालक मंडल :-

शांतीलाल प्रेमचंद लोहाडे
मोहनलाल हिरालाल बंब
कैलासचंद भागचंद ठोळे
डॉ. कन्हैयालाल एकनाथ राठी (मृत)
चंदुलाल दीपचंद काले,
रामबिलास दामोदर मुंदड़ा

बाबूलाल केशवलाल शहा
जनार्दन सीताराम रासकर
दत्तात्रय नरसिंगराव कंगले
द्वारकानाथ पन्नालाल मुंदड़ा
शांतीलाल किसनदास शिंगी
मदनलाल मोतीलाल बागरेचा

अशोककुमार फतेचंद अजमेरे

तीर्थ - दर्शन

भगवान महावीर के जन्म कल्याणक के पावन अवसर पर

विशेष रियायत

बाण्ड पेपर में एक साथ १५ सेट लेने वालों को ५ सेट इनाम दिये जायेंगे अतः उनसे सिर्फ १५ सेट के रुपये २७१/-के हिसाब से लिये जायेंगे जबकि उन्हें २० सेट मिलेंगे। यह विशेष रियायत चैत शुक्ला १३ से वैशाख शुक्ला १३ तक ही है। जिन्हें इस समय में ग्रंथ लेने हों वे सज्जन वैशाख शुक्ला १३ के पूर्व अपने आवेदन पत्र के साथ ड्राफ्ट/किश भेज दें। बाहिर गाँव ग्रंथ लॉरी द्वारा भेजे जायेंगे। जिसका लॉरी खर्च अलग होगा। यह अपूर्व अवसर न खोयें।

भवदीय

यू. पन्नालाल वेद,

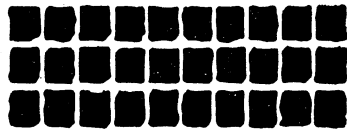
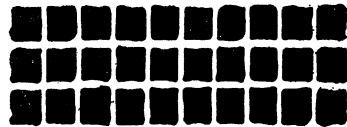
(मंत्री) श्री महावीर जैन कल्याण संघ,
१६, वेपेरी हाई रोड, मद्रास-६०० ००७

परमपूज्य एलाचार्य मुनिश्री विद्या-
नन्दजी की प्रेरणा से स्व. पद्मचन्द
“भगतजी” द्वारा विरचित तथा
मुनिश्री को ही श्रद्धापूर्वक समर्पित,
जैनधर्म और दर्शन की मौलिक
मान्यताओं को सरल, सुबोध, सरस,
सुमधुर भाषा में प्रस्तुत करने वाला
100 पदों/भजनों का एक भक्तिपरक
संकलन, जो “भगतजी” के जीवन-
मन्थन/शोधन का अमृत फल है।

प्राप्ति-स्थान :

पी.पी. प्रॉडक्ट्स तथा पदमप्रकाश
एक्सपोर्ट एंड सेल्स प्रा. लि. ;
27, आगरा रोड,
अलीगढ़-202001
दूरभाष : 3062; 3870; तार 'प्रशान्त'

पद्मचन्द, भगतजी



पद्म-शतक

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/२०७

गुणों से भरपूर

प्रेस्टीज

शुद्ध रिफाइनड सोयाबीन तेल
अब आपके द्वार पर उपलब्ध

स्वादिष्ट भोजन का सर्वोत्तम साधन

- सोयाबीन तेल विश्व में सर्वाधिक लोकप्रिय
- शुद्ध एवं डबल रिफाइनड
- ताजा, निर्मल, स्वच्छ एवं पीष्टिक
- कोलेस्ट्रॉल रहित
- हृदय रोगों से बचाव
- सेहत के लिए उत्तम
- किफायती
- बढ़िया क्वालिटी
- तत्पर घर-पहुँच सेवा
- खुला तेल पीले रंग की सीलबंद टंकियों से
हाँकरों द्वारा आपके मुहल्ले और कॉलोनियों में उपलब्ध
- 15 किलो नया टिन
- 25 किलो पोली जॉर
- 5 किलो एवं 2 किलो पक में भी शीघ्र उपलब्ध

प्रेस्टीज ग्रुप का अन्य उत्पादन 'प्रेस्टीज सोप'

श्रेष्ठ धुलाई के लिए इस्तेमाल करें।

प्रेस्टीज फूड्स प्रा. लि.

30, जावरा कम्पाउण्ड

इन्दौर-452 001

तार-प्रेस्टीज; टेलिक्स 0735 205 PFM ID

फोन-21725, 4633, 34014

जैसा मैंने देखा / समझा

ते गुरु मेरे मन बसो । जे भव जलधि जिहाज ॥
आप तिरहीं पर तारहीं । ऐसे श्री ऋषिराज ॥

पं. भूधरदासजी की उपरोक्त पंक्तियों में वर्णित साधु-गुरु पूज्य एलाचार्य विद्यानन्दजी में मिले । साधु के अनेक गुणों में से कुछ महत्त्वपूर्ण और आधुनिक काल के लिए उपयोगी गुण मैंने उनमें बार-बार देखे और इसी कारण मैं उनकी ओर आकर्षित होता गया ।

गुरुत्वाकर्षण

उनमें अद्भुत गुरुत्वाकर्षण शक्ति है । बोरिवली (बम्बई) से लेकर मध्य महाराष्ट्र तक उनके विहार-काल में मैंने अनुभव किया उनमें अद्भुत / अद्वितीय गुरुत्वाकर्षण शक्ति है । तीन माह की अवधि में लगभग तीन लाख लोगों ने उनके प्रवचनों से लाभ उठाया । आबाल वृद्ध सभी वयों और अमीर-गरीब-सभी स्तरों के लोग उनके प्रवचनों से लाभान्वित होने के लिए उत्सुक रहते थे, इस तरह श्रोतागण प्रवचनों को शान्तिपूर्वक सुनते ही नहीं थे, बल्कि भक्तिपूर्वक एकाग्र मन से ग्रहण भी करते थे ।

केवल प्रवचन सुनने के लिए ही लोग उमड़ पड़ते थे, ऐसा नहीं था । महाराजश्री के आहार-ग्रहण को भी उत्सुकतापूर्वक देखते रहते थे । उन्हें लगता था कि महाराजजी यदि उनके हाथ का एक ग्रास भी भोजन कर लेंगे तो उनका जन्म सार्थक हो जाएगा । जितने लोगों को आहारदान का लाभ प्राप्त हुआ, उसमें शतगुणा घन्यता का अनुभव लोगों ने आहारदान की नवधा भक्ति की पावन क्रिया देखकर किया । उनकी आहार-विधि देखने के लिए लोग घण्टों प्रतीक्षा करते रहते थे । यह सब गुरुत्वाकर्षण शक्ति के बिना कैसे संभव था ?

साधुता

साधुता की शक्ति कोई चमत्कार मन्त्र-तन्त्र नहीं है । यह अलौकिक गुणों की शक्ति है । सागर-जैसी महानता, चाँद-जैसी शान्ति, नदी-जैसी गतिशीलता, धरती-जैसी सहनशीलता आदि गुणों का सुन्दर संगम महाराजश्री में है । आधुनिक काल के लिए अत्यन्त दुर्लभ गुणों से बनी साधुता उनकी है ।

विद्या का सागर

उनके प्रवचन के विषय बहुत व्यापक और काल के अनुरूप रहते हैं । भारत ऋषिप्रधान देश है, इसका वे बराबर ध्यान दिलाते रहते हैं । श्री शंकरराव काले इससे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कोपरगाँव सहकारी साखर कारखाना, कोल-

वेवाडी में उनका अभूतपूर्व स्वागत-समारोह आयोजित किया। उसके पहले कारखाने के सभासदों, कामगारों और आसपास के हजारों लोगों ने ऐसे राष्ट्रसंत के दर्शन नहीं किये थे।

कोपरगाँव में जैन समाज के सभी सम्प्रदायों के साथ जनता ने भी महाराज-श्री का भावभीना स्वागत किया। आठ दिनों तक प्रतिष्ठा महोत्सव जैसा लगा रहा। उसमें जैन और जैनतर समाज उपस्थित रहा। यहाँ के संजीवनी कारखाने के चेयरमेन श्री शंकरराव कोल्हे ने शानदार स्वागत किया।

नासिक के एक विद्वान् ने सहज ही कहा कि ये तो विद्या के सागर हैं। उनके सत्संग में / सान्निध्य में रहता तो ज्ञानसागर में तैरता है। महाराजश्री ने जहाँ भी विहार किया वहाँ के अभ्यासु, विद्वान्, जिज्ञासु, चिकित्सक आदि श्रोता-गण उनके वक्तृत्व शैली से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे।

ऐतिहासिक घटना



एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी की आचार्य आनन्दऋषिजी से भेंट जैन साधु-संस्था में ऐतिहासिक घटना ही मानी जाएगी। दो ऋषि, दो राष्ट्रसंत, दो लोकहितैषी साधु-प्रवर एक-दूसरे से मिल रहे थे। वह दृश्य एक ऐसा अपूर्व, पावन और अप्रत्याशित था, जैसे दो महान् पर्वत एक-दूसरे को गले लग रहे थे। दो वट वृक्ष अपना-अपना स्थान निभाते हुए एक-दूसरे में समा रहे थे। दो ध्रुव अपना भिन्न

अस्तित्व भूलकर एक-रूप हो रहे थे। दोनों सन्तों के शिष्य, अनुयायी, भक्त-गण इस सहज मिलन सुन्दर दृश्य को देखकर उत्साह से जय-जयकार करते हुए भाव-विभोर हो गये। यह अद्वितीय, दीर्घ / दूरदर्शितापूर्ण एकता का पाठ सिखाने वाला दृश्य जो था। ऐसी एक घटना हजारों प्रवचनों से, लाखों लेखों से भी अधिक गहरी, प्रभावक और परिणामकारक सिद्ध होती है।

अनेक स्थानों में घटित ऐसी घटनाएँ देखकर मेरे मन पर स्थायी प्रभाव पड़ा। इसे साधु-सहवास, सत्संगति, त्यागी संतों के दर्शन कहना चाहिये। ऐसी श्रद्धा मेरे अंतरंग में निर्माण हुई। ऐसे विश्वसंत / राष्ट्रसंत के सान्निध्य में मैं बार-बार अनुभव कर रहा हूँ कि मेरा भाग्योदय हुआ है। उनसे जीवन में जो मार्ग-दर्शन और प्रकाश प्राप्त हुआ है, वह जीवन को सार्थक और सफल बनाने में साधक सिद्ध होगा, यह आत्मविश्वास दृढ़ हुआ है।

—शांतीलाल प्रेमचंद लोहाडे, कोपरगांव

एकता और समन्वय के प्रेरणा-स्रोत

इन्दौर में जैन समाज के सभी सम्प्रदायों में जो उसाह एकता और समन्वय की का संचार सन् १९७१ में हुआ था, वह अपूर्व और ऐतिहासिक था। इसके मूलमें थे मुनिश्री विद्यानन्दजी और मुनिश्री जनकविजयी। मुनिश्री विद्यानन्दजी के प्रथम चातुर्मास (१९७१) के निमित्त नगर-प्रवेश के मंगल अवसर पर स्वप्रेरणा से मुनिश्री जनकविजयीजी सम्मिलित हुए, यह अभूतपूर्व घटना थी, क्योंकि श्वेताम्बर साधु शामिल नहीं होते हैं। इतना ही नहीं, मुनिश्री जनकविजयीजी मुनिश्री विद्यानन्दजी से विचार-विमर्श करने हेतु आदिनाथ मांगलिक भवन पधारे थे। दोनों ने एक ही मंच से प्रवचन भी किये थे। तब मुनिश्री विद्यानन्दजी महाराज ने कहा था कि भगवान् महावीर का २५०० वाँ निर्वाणोत्सव तो अभी दूर है, लेकिन उसकी शुरुआत इन्दौर में अभी से हो गयी है।

पिछले वर्ष बम्बई में एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी से जब मैं आचार्यश्री विजयेन्द्र दीनसूरीश्वरजी और आचार्यश्री जनकचन्द्रसूरीश्वरजी (पूर्वनाम मुनिश्री जनकविजयीजी) के एकता और समन्वय का सन्देश लेकर मिला था, तब भी महाराजश्री ने बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की थी।

एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी की षष्टिपूर्ति के इस प्रेरक प्रसंग पर, जब उनका तीसरा चातुर्मास इन्दौर में हो रहा है, जैन समाज के सभी सम्प्रदायों/वर्गों में पुनः एकता एवं समन्वय की भावना का संचार हो और जैन समाज उनके सान्निध्य में भगवान् महावीर के सन्देश को अपनाने और फैलाने में सफल हो, यही मेरी आन्तरिक भावना है।

—रतनचन्द कोठारी, इन्दौर

देदीप्यमान निर्ग्रन्थ

भारत की इस धरा पर कई महान् पुरुषों का अवतरण हुआ है, उसी ज्योतिर्मयी परम्परा में वर्तमान युग के देदीप्यमान निर्ग्रन्थ एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी का अपूर्व स्थान है। अपने संयमी जीवन की यात्रा दक्षिणांचल से प्रारम्भ कर उत्तर भारत के हिम-किरीट प्रसिद्ध तीर्थ बदरीनारायण पर जब वे पहुँचे, वहाँ भी उन्होंने श्रीनगर में वर्षावास कर जैनत्व और अहिंसा मार्ग प्रशस्त किया।

आध्यात्मिक परिसर में उनके विचारों की सुषमा सर्वत्र है। लक्ष-लक्ष जनता उनके प्रवचन सुनने को लालयित रहती है।

स्व. प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी के मन पर भी एलाचार्यश्री की अहिंसामय वाणी को गहरी छाप रही। श्रवणबेलगोला में जो एक सहस्रवर्षीय आयोजन बाहुबली महातीर्थ में हुआ वह सफलता की चरम सीमा पर पहुँचा।

ऐसे महान् संत को साठवीं वर्षग्रन्थि पर जो सचमुच में निर्ग्रन्थ यानी ग्रन्थि-रहित हैं; उनको और उनकी साधना को मैं तन-मन से वंदन करता हूँ।

—फकीरचन्द मेहता, इन्दौर

श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर

अनुत्तरयोगी : तीर्थंकर महावीर	-वीरेन्द्रकुमार जैन	
(उपन्यास, खण्ड १-४) प्रत्येक का मूल्य		३०.००
भगवान् महावीर (काव्य)	-वीरेन्द्रकुमार जैन	००.५०
तीर्थंकर महावीर (महाकाव्य)	-डॉ. छैलबिहारी गुप्त	३०.००
तीर्थंकर वर्धमान महावीर	-पं. पद्मचन्द शास्त्री	८.००
वंशाली के राजकुमार तीर्थंकर वर्धमान महावीर	-डॉ. नेमीचन्द जैन	४.००
पिच्छि कम्ण्डलु (परिवर्द्धित संकरण)	-एलाचार्य मुनि विद्यानन्द	११.००
निर्मल आत्मा ही समयसार	" "	४.००
अभीक्षण ज्ञानोपयोग	" "	१.००
नारी का स्थान और कर्तव्य	" "	०.५०
जिन पूजा/जिन मन्दिर	" "	३.००
शब्द-साधना	" "	३.००
समय का मूल्य	" "	२.००
जैन ध्यान/योग	" "	५.००
परम तपोधन एलाचार्य श्री विद्यानन्द	-डॉ. नेमीचन्द जैन	७.००
परम पुरुष सिद्धणा	-श्रीपाल शिवलाल शहा	२.००
	(अनु. : डॉ. हरीन्द्रभूषण जैन)	

षष्टिपूर्ति प्रकाशन

विद्यानन्द वचनानामृत (पॉकेट साइज)	भाग १, २ (प्रत्येक)	१.००
	-संपा. डॉ. नेमीचन्द जैन	
अहिंसा : विश्वधर्म	" -एलाचार्य मुनि विद्यानन्द	१.००
सप्तव्यसन	" "	१.००
विद्यानन्द तिथि दर्शन	" "	१.००
(२२ अप्रैल ८५ से २२ अप्रैल ८६ तक का केलेंडर)		
श्रावकाचार की सहज कथाएँ	-सुरेश 'सरल'	४.००

डाक-व्यय पृथक्

विस्तृत जानकारी के लिए सूची-पत्र मंगवाइये ।

श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौर

५५, सीतलामाता बाजार, इन्दौर-४५२ ००२ (म. प्र.)

मंगल कामना/शुभाशीर्वाद

श्री दिगम्बर जैनधर्म के प्रभावक एलाचार्य १०८ विद्यानन्द मुनिराज की सत्प्रेरणा से वैशाख शुक्ला द्वितीया से मनाया जाने वाला यह श्रावकाचार वर्ष सर्व श्रावकों के मोक्षमार्ग को प्रशस्त करे। उसी प्रकार केवल भारत देश के नागरिक जनों के ही नहीं, प्रत्युत् विदेशवासीजनों के भी चारित्र्य का निर्माण करके अपने और अन्य राष्ट्रों में भी सुख, शान्ति तथा समृद्धि को करे, यही मेरी मंगल कामना है।

‘श्रावकाचार विशेषांक’ के संपादक को भी मेरा बहुत-बहुत शुभाशीर्वाद है।

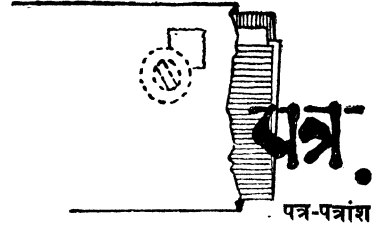
—आयिका ज्ञानमती, हस्तिनापुर

‘तीर्थकर’ अपने मिशन में सफल हो

‘तीर्थकर’ का प्रत्येक अंक स्तरीय है। फरवरी, ८५ के अंक में संपादकीय काफी सशक्त है। मेरी बधाई स्वीकार करें। सच ही, इस समय जैन ही क्या, लगभग प्रत्येक धर्म अपने रास्ते से भटक गया है, यह बड़ी चिन्ता की बात है। धर्म ही आधुनिक मानव-इतिहास को उसकी आत्मघाती प्रवृत्ति से उबार सकता है, किन्तु, लगता है, वह खुद आत्मघात का शिकार हो रहा है। ‘तीर्थकर’ इस आत्मघाती मानवता को सचेत करने का अच्छा उद्बोधन है।

धर्म जब किसी गुरु के आसपास ही घूम उठता है, तो वह जड़ हो जाता है। सोनगढ़ की जनचेतना श्री कानजी स्वामी की मूर्ति और मन्दिर बनाकर अपनी जड़ता का ही परिचय दे रही है। यह प्रवृत्ति बहुत खतरनाक है। पूरे समाज को इसकी निन्दा करनी चाहिये।

जैन समाज को इस बात के लिए सावधान रहना है कि राजनीति धर्म पर हावी न हो जाए। धर्म राजनीति की दलदल से उठा हुआ कमल की भाँति जिये। मुझे विश्वास है कि ‘तीर्थकर’ अपने इस मिशन में सफल होगा।



एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी की पण्डितपूति पर आप अप्रैल, ८५ में ‘श्रावका-चार विशेषांक’ निकाल रहे हैं—यह आपका शुभ संकल्प है। यह विशेषांक जीवन के ऊँचे क्षितिजों को स्पर्श करेगा, आपके समर्थ संरादन से ऐसी ही आशा की जाती है।

—डॉ. प्रद्युम्नकुमार जैन,
रुद्रपुर (नैनीताल)

अत्यन्त पठनीय/विषय के अनुरूप

व्यवस्थित

‘तीर्थकर’ का सामायिक शेषांक (जन-वरी, ८५) पढ़कर जो प्रसन्नता हुई उन भावों को व्यक्त करने में असमर्थ हूँ। संपादकीय पढ़कर उसकी भाषा एवं विषय-वस्तु की प्रौढ़ता से अत्यन्त प्रभावित हुआ। संपूर्ण अंक अत्यन्त पठनीय एवं विषय के अनुरूप व्यवस्थित है। भाषा-सौष्ठव, साहित्यिक एवं सरल है, जिसमें आपके कठिन श्रम, अध्ययन, मनन, चिन्तन के दर्शन हुए। इस अंक को पढ़ने के बाद इसके पूर्व का जो विशेषांक इसी विषय पर निकला है, उसे पढ़ने की अत्यन्त जिज्ञासा है। इतनी अच्छी मासिक पत्रिका से अभी तक परिचित नहीं हुआ, इसका अत्यन्त खेद है। मैं मंगल कामना करता हूँ कि भविष्य में आप इसी प्रकार अपनी प्रतिभा से आगम के प्रचार में आदर्श स्थापित करते हुए निरन्तर विकास को प्राप्त हों।

—डॉ. इन्द्रकुमार गोयल,
मण्डला (म.प्र.)

(शेष पृष्ठ २१५ पर)

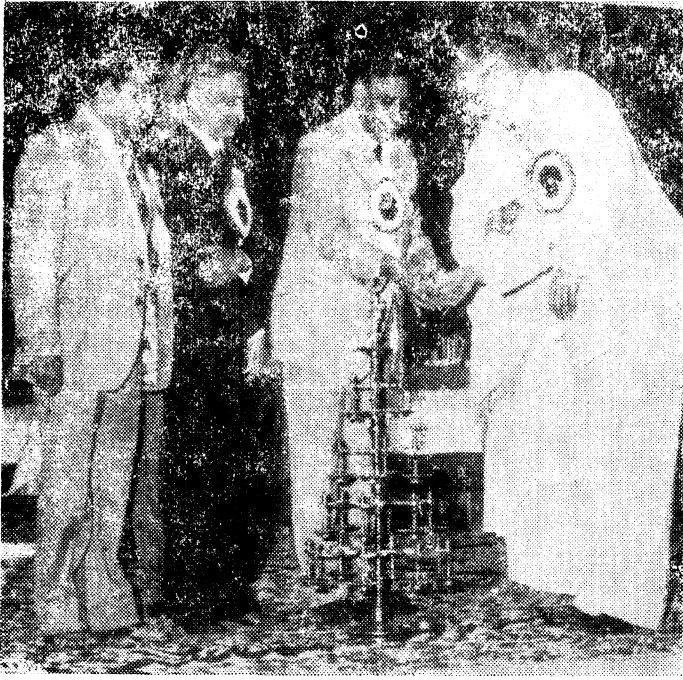
तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/२१३

‘तीर्थंकर’ के दुर्लभ और संकलनीय विशेषांक

	रुपये
१. मुनिश्री विद्यानन्द (अप्रैल, ७४)	१०.००
२. श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरीश्वर (जून-जुलाई, ७५) (दोनों विशेषांक सजिल्द में सुलभ)	१०.०० २५.००
३. मुनिश्री चौथमल जन्म-शताब्दि (नव.दिस., ७७)	१०.००
४. आचार्य श्री विद्यासागर (नव.-दिस., ७८)	१०.००
५. साध्वीश्री विचक्षणश्री (फर.-मार्च, ८२)	१५.००
६. पं. नाथूलाल शास्त्री (जून, ७८)	१०.००
७. गोम्पेटेश्वर (महामस्ताभिषेक, फर., ८१)	१०.००
८. जैन पत्र-पत्रिकाएँ (अग.-सित., ७७)	२०.००
९. वीर निर्वाण-चयनिका (दिस., ७६)	१०.००
१०. णमोकार मन्त्र खण्ड-१ (नव.-दिस., ८०)	१०.००
११. णमोकार मन्त्र-खण्ड-२ जनवरी, ८१) (णमोकार के दोनों विशेषांक सजिल्द में भी सुलभ)	१०.०० २५.००
१२. भक्तामर स्तोत्र (जनवरी, ८२)	२१.००
१३. जैन भूगोल (अगस्त, ८२)	५.००
१४. श्रीमहावीर-तीर्थ (नवम्बर, ८२)	१०.००
१५. जैन ध्यान/जैन योग (अप्रैल, ८३)	१५.००
१६. समाज-सेवा (नव.-दिस., ८३)	१५.००
१७. प्रतिक्रमण/सामायिक (अक्टू.-नव., ८४)	२०.००
१८. प्रतिक्रमण शेषांक (दिसम्बर, ८४)	५.००
१९. सामायिक शेषांक (जनवरी, ८५)	५.००
२०. श्रावकाचार विशेषांक (मार्च-अप्रैल, ८५)	१०.००
* विशेषांकों के संपूर्ण सेट का रियायती मूल्य	२००.००
* रजिस्ट्री चार्ज एक विशेषांक पर रु. ३/- अतिरिक्त विशेषांक पर रु. १/- वी.पी.पी. नहीं की जाएगी। अग्रिम मूल्य मनीऑर्डर/बैंक ड्राफ्ट से ही भेजिये।	

संपर्क : प्रबन्ध संपादक, ‘तीर्थंकर’ ६५, पत्रकार कालोनी

कनाड़िया रोड, इन्दौर-४५२००१ (म. प्र.)



तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय जैन सम्मेलन के खुले अधिवेशन (१० फरवरी १९८५) का दीप प्रज्वलित कर उद्घाटन करते हुए केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मन्त्री श्री एन. वी. गाडगिल ! साथ में खड़े हैं (बाएँ क्रमशः दूसरे एवं तीसरे) महामन्त्री श्री सतीशकुमार जैन और अहिंसा इन्टरनेशनल के अध्यक्ष श्री मुल्खराज जैन ।

विश्व में हिंसा के वातावरण को समाप्त कर शान्ति और मैत्री की भावना का प्रसार किया जाए। ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा के सिद्धान्त को पुनः विश्व-स्तर पर व्यावहारिक रूप से लागू किया जाए, जिससे आज का मानव शान्ति के साथ जी सके— यह है उस अपील का मुख्यांश जो नई दिल्ली में गत १० फरवरी, ८५ को संपन्न तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय जैन सम्मेलन के मंच से की गयी थी। त्रिदिवसीय सम्मेलन में जैनधर्म, दर्शन, संस्कृति, शिक्षा, साहित्य, कला आदि अनेक विषयों पर विशद चर्चा हुई। समापन-सत्र में छह प्रस्ताव पारित किये गये।

तीसरे प्रस्ताव में कहा गया है कि सन् १९८६ को विश्वशान्ति एवं न्याय के लिए 'अहिंसा-वर्ष' के रूप में मनाया जाए। चौथे प्रस्ताव में संयुक्त राष्ट्रसंघ (यू.एन.), यूनेस्को और अन्य राष्ट्रों से सन् १९८६ को शाकाहार-वर्ष के रूप में मनाने की अपील की गयी है, जिससे गोश्त, मछली, अण्डे आदि के सेवन को निरस्त/साहित किया जा सके, क्योंकि खाद्यान्न और पोषक तत्वों के विशेषज्ञों ने इन पदार्थों का सेवन मानव-

समाचार - गल्पशिष्ट

स्वास्थ्य के लिए घातक बताया है । इनका सेवन 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त के भी विपरीत है ।

सम्मेलन ने संसार में परमाणु और अन्य विध्वंसक अस्त्रों के जमाव को घोर निन्दा करते हुए संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा सम्बन्धित राष्ट्रों को भगवान् महावीर के अहिंसा-सिद्धान्त पर आधारित एक शान्ति घोषणा-पत्र देने का प्रस्ताव पारित किया । साथ ही संयुक्त राष्ट्रसंघ और हथियारों की होड़ में शामिल देशों से परमाणु शस्त्रों की होड़ को समाप्त करने और इनका जखीरा नष्ट करने की माँग की ।

एक अन्य प्रस्ताव में सम्मेलन को अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने के लिए नई दिल्ली में इसका मुख्यालय स्थापित करने और प्रति दो वर्ष में ऐसे सम्मेलन आयोजित करने की माँग की ।

अहिंसा इन्टरनेशनल, नई दिल्ली द्वारा आयोजित इस सम्मेलन में देश-विदेश के लगभग छह सौ प्रतिनिधि सम्मिलित हुए । इसके अध्यक्ष श्री एम. आर. जैन और महामन्त्री श्री सतीशकुमार जैन ने कहा है कि सम्मेलन को भविष्य में सार्थक बनाने के लिये प्रयास किये जाएँगे ।

—श्रमण संस्कृति के मूर्द्धन्य विद्वान् पं. दलसुखभाई मालवणिया की संस्कृत-निष्ठा तथा प्रखर विद्वत्ता के सम्मानार्थ भारत सरकार की ओर से राष्ट्रपति ने १६ मार्च, ८५ को उन्हें 'सर्टीफिकेट ऑफ़ ऑनर इन संस्कृत' का विशिष्ट पद प्रदान किया । इस उपलक्ष्य में उनका अभिनन्दन करने के लिए एक मिलन-गोष्ठी का आयोजन इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन हाउस, नई दिल्ली में २२ सहयोगी संस्थाओं की ओर से गत १७ मार्च को सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. दौलतसिंह कोठारी की अध्यक्षता में किया गया ।

मुख्य वक्ता सुख्यात साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमार ने पं. दलसुखभाई को

प्रज्ञापुरुष कहा । मुख्य अतिथि सुप्रसिद्ध विधिवेत्ता डॉ. लक्ष्मीमल सिधवी ने उनकी मूल्य निष्ठा और विद्वत्ता की सराहना की । सुपरिचित संपादक/साहित्यकार श्री यशपाल जैन ने कहा कि उनका अभिनन्दन वस्तुतः भारत की आत्मा का अभिनन्दन है । दिल्ली विश्वविद्यालय के पालि एवं बौद्ध विभागाध्यक्ष प्रो. महेश तिवारी ने पालि भाषा में बोलते हुए उन्हें विद्या एवं चरित्र से युक्त महापुरुष बताया । प्रो. इन्द्रचंद्र शास्त्री, डॉ. बलचन्द्र, म. विनयसागर, डॉ. सागरमल जैन आदि ने उनकी विद्वत्ता, निरभिमानता, सत्यनिष्ठा आदि की सराहना करते हुए हार्दिक अभिनन्दन किया । सहयोगी संस्थाओं की ओर से उन्हें अभिनन्दन एवं षष्प-हार अर्पित किये गये । पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी ने शॉल और ताम्रपत्र तथा बी.एल. इन्स्टीट्यूट ऑफ़ इण्डोलॉजी, दिल्ली ने शॉल प्रदान कर उनका अभिनन्दन किया । कार्यक्रम का संचालन श्री शान्तिलाल वनमाली शेट ने किया ।

ज्ञातव्य है, पं. दलसुखभाई ने अनेक संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थों का संशोधनात्मक संपादन किया और भिन्न-भिन्न विषयों पर सौ से अधिक गवेषणापूर्ण मौलिक निबन्ध लिखे । जैनधर्म एवं दर्शन के अधिकृत सम्मान्य विद्वान् होने के कारण भारतीय तत्त्वज्ञान के विश्वकोष (एनसाइक्लोपीडिया) के निर्माण-कार्य में उन्हें जैनदर्शन का महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा गया है ।

—आचार्यश्री विद्यासागरजी के सान्निध्य में गत चार वर्षों से श्री ग्रन्थराज षट्खण्डागम की वाचन/स्वाध्याय का कार्य संपन्न होता आ रहा है, जिसमें अभी तक धवला टीका के ९ भागों का स्वाध्याय संपन्न हो चुका है । इस वर्ष इस वाचना का प्रारंभ १३ अप्रैल, ८५ से खुरई (म.प्र.) में हुआ है, जिसमें धवला टीका की १५वीं (शेष भाग) एवं १६ वीं पुस्तक तथा जय

धवला टीका की पहली पुस्तक का स्वाध्याय संपन्न होगा ।

—श्री सत्श्रुत-सेवा साधना केन्द्र, मुख्यालय आध्यात्मिक साधना केन्द्र, पो. कोबा ३८२००९ जि. गांधीनगर (गुजरात) का दशाब्दी-समारोह विभिन्न कार्यक्रमों के साथ ४, ५ और ६ मई, ८५ को मनाया जाएगा । सत्संग, स्वाध्याय, भक्ति, चिन्तन और धर्मगोष्ठी के इस त्रिदिवसीय शिबिर में गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान और मध्यप्रदेश के अनेक उच्चकोटि के विद्वान् पधारंगे । गंभीरतापूर्वक आत्मकल्याण के इच्छुक और उक्त कार्यक्रम में रस लेने वाले सभी सज्जनों को शिबिर में पधारने के लिए आमंत्रित किया गया है । विशेष जानकारी के लिए उपरोक्त पते पर सम्पर्क किया जा सकता है ।

जातव्य है, यह साधना केन्द्र डॉ. भुकुन्द सोनेजी की प्रखर साधना का प्रेरक केन्द्र है, जिसके वे अधिष्ठाता हैं और अब आत्मानन्दजी के नाम से जाने जाते हैं । उनके सान्निध्य में मुमुक्षु भाई-बहन सत्संग, स्वाध्याय, भक्ति के माध्यम से आध्यात्मिक साधना में अग्रसर हो रहे हैं । यहाँ मुमुक्षुओं के आवास की सादगीपूर्ण व्यवस्था है । केन्द्र की ओर से 'दिव्य ध्वनि' नामक गुजराती मासिक का प्रकाशन भी किया जाता है । यह केन्द्र अहमदाबाद से करीब १६ किलोमीटर दूर है ।

—इन्दौर में एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्द षष्टिपूर्ति समारोह के चार दिवसीय कार्यक्रम इस प्रकार आयोजित किये गये हैं : २० अप्रैल, ८५ को प्रातः मंगल शोभायात्रा, ९ बजे अभिनव कला समाज हॉल में सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्री लालचंद हीराचन्द, बम्बई की अध्यक्षता में 'शाकाहार प्रदर्शनी' का उद्घाटन, ९.३० बजे एलाचार्य श्री का शुभाशीर्वचन; अपराह्न ३ बजे 'शाकाहार : महत्त्व और उपयोगिता' पर विशेष संगोष्ठी, रात्रि में ८ बजे से जैन कवि-सम्मेलन; २१ अप्रैल को प्रातः ८ बजे 'भारतीय संस्कृति

को जैनाचार्यों का योगदान' (विद्वत् संगोष्ठी का प्रथम सत्र), ९-३० बजे सिद्धान्तशास्त्री पं. फूलचन्दजी के अभिनन्दन-ग्रन्थ का विमोचन, ९-४५ बजे एलाचार्य श्री का आशीर्वचन; अपराह्न ३ बजे 'भारतीय संस्कृति को जैनाचार्यों का योगदान' (विद्वत् संगोष्ठी का द्वितीय सत्र); ४-३० बजे जैन सहकारी पेढी का रजत जयन्ती महोत्सव, रात्रि में जैन संगीत सभा; २२ अप्रैल को प्रातः ८ बजे साहू श्रेयांस प्रसादजी जैन की अध्यक्षता में एलाचार्यश्री का षष्टिपूर्ति; महोत्सव, षष्टिपूर्ति प्रकाशनों का विमोचन, 'तीर्थकर' के 'श्रावकाचार विशेषांक' का एलाचार्यश्री को समर्पण, जैन विद्या पत्राचार पाठ्यक्रम : शुभारंभ (प्रथम पाठ प्रदानोत्सव) मुनिश्री के द्वारा राष्ट्र के प्रति स्वस्ति-वचन; रात्रि में एलाचार्य श्री के जीवन पर आधारित फिल्म-प्रदर्शन, २३ अप्रैल को प्रातः ६.३० बजे गोम्मतगिरि के लिए मंगल विहार, ९ बजे श्री साहू जैन ट्रस्ट के अतिथि-निवास का शिलान्यास; ९.१५ बजे कृषि-दिवस (अक्षय तृतीया-समारोह, श्रीमन्त सर सेठ सरूपचंद हुकमचंद पारमार्थिक ट्रस्ट द्वारा षष्टिपूर्ति के उपलक्ष्य में निर्मित त्यागी निवास का उद्घाटन; ९.३० बजे एलाचार्य मुनिश्री का गोम्मतगिरि क्षेत्र को मंगल आशीर्वाद एवं प्रवचन, १०.१५ बजे मंगल जिनाभिषेक ।

—स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानी, राजनीतिज्ञ, विचारक, लेखक एवं सामाजिक कार्यकर्ता श्री सौभाग्यमल जैन के ७५ वर्ष पूर्ण करने के अवसर पर शुजालपुर महाविद्यालय स्थापना समिति, शुजालपुर में उनका नागरिक अभिनन्दन २८ अप्रैल ८५ को किया जा रहा है । समारोह को 'सौभाग्यमल जैन विशेष प्रसंग' नाम दिया गया है । जिसकी अध्यक्षता सुख्यात साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमार कर रहे हैं । साथ ही 'साहित्य एवं राजनीति के वर्तमान संकट' विषय पर परिसंवाद भी रखा गया है ।

नये आजीवन सदस्य ह. २०१

७८६. श्री १००८ पार्श्वनाथ दि. जैन
मन्दिर, २०५, कालबादेवी
पो. बम्बई ४००-००२
७८७. श्री १००८ आदिनाथ दि. जैन
नया मन्दिर
पो. प्रताबगढ़ ३१२६०५ (राज.)
७८८. श्री रमणलाल चन्दूलाल शाह
१० बी/२७, गंजावाला अपार्टमेंट
एस.बी.रोड, बोरीवली (पश्चिम)
पो. बम्बई ४००-०९२
७८९. श्री दिनेश मोगीलाल वाखारिया
३०९/१०, जवाहर नगर
गोरेगाँव (पश्चिम)
पो. बम्बई ४०००६२ एन.बी.
७९०. श्री विनोद शांतिलाल शाह
१७३, जवाहर नगर
गोरेगाँव (पश्चिम)
पो. बम्बई ४०० ०६२ एन.बी.
७९१. श्री बी. के. सत्यनारायण
बिल्डिंग नं. ५, गोल्डन बीच
रुडिया पार्क रोड
पो. बम्बई ४०० ०४९
७९२. श्री सोहनलाल बड़जात्या
द्वारा : सीमेंट फैक्टरी (कर्नाटक)
पो. बागलकोट ५७८ १०२
७९३. श्री रेखचन्द गणेशीलाल बिलाला
द्वारा : किराना भण्डार
पो. अकोला ४४४००१ (महाराष्ट्र)
७९४. श्री सुमेरराज
द्वारा : शा मूलचंद भँवरलाल
एण्ड कं. कपड़े के व्यापारी
रंगवाला मार्केट
पो. अहमदाबाद ३८० ००२
७९५. श्री भँवरलाल बोधरा
११५, अरिहंत
११ वीं स्ट्रीट, टाटाबाद
गांधीपुरम्
पो. कोयम्बटूर ६४१००१
७९६. श्री प्रदीप अनंतराव बहिरशेट
७०५ वी वार्ड, रविवार पेठ
जैन गली
पो. कोल्हापुर ४१६० ०२ (महा.)
७९७. श्रमण साहित्य संस्थान
६८८, बाबा खड्कसिंह मार्ग
पो. नई दिल्ली ११० ००१
७९८. श्री ऋषभ मोहिवाल
पो. सिंगोली ४५८ २२८
जि. मन्दसौर (म.प्र.)
७९९. श्री माणकचन्द पालीवाल
पालीवाल कम्पाउण्ड
पो. कोटा छावनी ३२४ ००१
(राज.)
८००. श्री माणकचन्द सेठिया
शास्त्रीनगर, दादाबाड़ी
मकान नं. ७९२
पो. कोटा ३२४ ००१ (राज.)
८०१. श्रीमती शरयू दफ्तरी
मैनेजिंग डायरेक्टर
भारत रेडिएटर्स प्रा. लि.,
८१, बजाज भवन, नरीमन पॉइण्ट
पो. बम्बई ४००-०२१
८०२. श्री श्रेयांस विष्णुकुमार चवरे
चवरे लाइन
पो. कारंजा (लाड) ४४४ १०५
जि. अकोला (महाराष्ट्र)

८०३. श्री सुरेशचन्द जन, प्रबन्धक

(पृष्ठ २०९ का शेष)

श्री दिगम्बर जैन शास्त्र भण्डार

चिन्तन की एक नवीन शैली/दिशा

५८/४, जैन स्ट्रीट

पो. पानीपत १३२ १०३

(हरियाणा)

‘तीर्थंकर’ जिस नव जागरण के मिशन को लेकर अग्रसर है, उससे समाज को एक नई चेतना मिली है और वह अन्धविश्वासों से निकल कर सामयिक, वैज्ञानिक, तर्क-संगत एवं नूतन विचारों से साक्षात्कार कर रहा है। ‘तीर्थंकर’ ने पाठकों को चिन्तन की एक नवीन शैली/दिशा दी है।

८०४. श्री प्रधानाध्यापक महोदय,

सुबोध जैन हायर सेकेण्डरी स्कूल

सागोनी रोड, जौहरी बाजार

पो. जयपुर ३०३ ००२ (राज.)

—देवेन्द्रकुमार जैन, भोपाल

तीर्थंकर

के गत चौदह वर्षों की सजिल्द फाइलें

वर्ष १, २ (अपूर्ण); प्रत्येक का मूल्य रु. २०-००

वर्ष ३ से १४ प्रत्येक का मूल्य रु. ३०-००

- फाइलों के संपूर्ण सेट का मूल्य रु. ४००.००
- संपूर्ण सेट मँगवाने पर पोस्टेज आधा
- रजिस्ट्री चार्ज एक फाइल का रु. ५.००, इसके बाद हर फाइल पर रु. १.०० अधिक। रेल्वे पासल से भेजने पर रेल्वे-भाड़ा और पैकिंग चार्ज रु. २०-००
- वी.पी.पी. नहीं की जाएगी। अग्रिम मूल्य मनीऑर्डर/बैंक ड्राफ्ट से ही भेजिये।

संपर्क : प्रबन्ध संपादक, ‘तीर्थंकर’; ६५, पत्रकार कॉलोनी,

कनाड़िया रोड, इन्दौर-४५२००१ (म.प्र.)

एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी की षष्टिपूर्ति पर

आन्तरिक वन्दन

संतोषकुमार जयकुमार

कटरा बाजार, सागर-४७० ००२ (म. प्र.)

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/२१९

इन्दौर क्लॉथ मार्केट को-ऑप. बैंक लि.

सेखावत मार्केट, सीतलामाता बाजार, इन्दौर

स्थापना १९७४

फोन ३६६४२

निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर

दिनांक ३१-३-१९८५ पर वित्तीय स्थिति

सदस्य-संख्या-१०२०४

अंकेक्षण वर्ग "अ"

(१९८३-८४)

लाभांश ९ प्रतिशत

(आर्थिक स्थिति रु. लाखों में)

अंश पूंजी	३५.४८	ऋण विनियोजन एवं अग्रिम	५०४.४०
निधियाँ	२०.४२	शुद्ध लाभ	९.५२
अमानतें	३९२.४९	(वर्ष १९८३-८४)	
<input type="checkbox"/> कार्यशील पूंजी	५३६.४१		
<input type="checkbox"/> वार्षिक टर्न ओव्हर	१४० करोड़	(वर्ष १९८३-८४)	

सुविधाएँ

१. अमानतों पर व्यावसायिक बैंकों से १ प्रतिशत अधिक ब्याज की सुविधा ।
२. देश के १८ व्यापारिक नगरों पर ड्राफ्ट सुविधा ।
३. वर्गीकृत लघु उद्योगों के लिए ऋण-सुविधा ।
४. सायंकालीन काउन्टर सुविधा ।

ओमप्रकाश ध्यास राधाकिशन बहल हरिकिशन मुछाल बाबूलाल बाहेती
संयुक्त मंत्री मंत्री उपाध्यक्ष अध्यक्ष

डॉ. महेन्द्र श्रीवास्तव
प्रबन्धक

संचालक-मण्डल

श्री बालकिशन मुछाल	श्री हंसराज जैन
श्री बाबूलाल पाटोदी	श्री पुरुषोत्तमदास दम्मानि
श्री प्रेमनारायण बाहेती	श्री श्रीकिशन मंत्री
श्री माणिकचंद पाटनी	श्री बंशीधर पसारी
श्री मूलचंद ओसवाल	श्री गोविंद दास सिमी
श्रीमती लक्ष्मीदेवी शर्मा	

Gram : "SODASALES"

Phones { 2024278
2030743

For your requirements of Chemicals

Manufactured by

DHRANGADHRA CHEMICAL WORKS LTD.

- RAYON GRADE CAUSTIC SODA—SOLID/FLAKES
- SODA ASH
- SODA BICARB
- CALCIUM CHLORIDE
- AMMONIUM BICARB
- LIQUID CHLORINE
- HYDROCHLORIC ACID
- TRICHLOROETHYLENE
- PERCHALOROETHYLENE

Write to :

Dhrangadhra Trading Co. Pvt. Ltd.

'NIRMAL', 3rd Floor,
241 Backbay Reclamation,
Nariman Point,
BOMBAY 400 021

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८४/२२६

होटल शीशमहल

संगमरमर का विशाल प्रासाद

निरंतर बढ़ती हुई सुविधाएं

प्रत्येक कमरे में टेलीफोन भी

३६४९१, ३६४८१, ३६४८२, ३६४८३

शाही निवास में नल द्वारा गरम-ठंडा पानी की व्यवस्था

समस्त व्यावसायिक केन्द्रों से निकट, विवाह आदि समस्त

समारोहों के लिए विशाल प्रांगण, स्वागत

के लिए सजावट युक्त हाल

६१, सर सेठ हुकमचन्द मार्ग, इन्दौर-४५२००२

ग्राम : कपड़ा

शॉप : ३०३६६

रेसी : ३०३६७

—: हमारी मंगल कामनाएँ :-

मे. रतनचन्द कोठारी,
मे. कोठारी एण्ड कम्पनी,
मे. संदीप एन्टरप्राइज

१४२, एम.टी. क्लॉथ मार्केट, इन्दौर ४५२००२

एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी की षष्टिपूर्ति पर
हमारे उन्हें श्रद्धासिक्त प्रणाम

सन्मति फारेस्ट इन्डस्ट्रीज प्रायवेट लिमिटेड

एवं फतेचन्द मूलचन्द पाटनी

१९, म. तु. कपड़ा मार्केट, इन्दौर-४५२००२ (म.प्र.)

परम पूज्य गुरुदेव एलाचार्य श्री विद्यानन्दजी महाराज के चरणों में शत-शत वन्दन
हमारे भक्तिपूर्ण अभिवादन

ज्योति ट्रेडर्स

कल्याण विश्रन्ति गृह, स्टेशन रोड, इन्दौर ४५२००१

एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी की षष्टिपूर्ति पर उन्हें
हमारा भक्तिपूर्वक नमन

सिंघई जीवनकुमार अरुणकुमार जैन

तिलकगंज, सागर ४७०-००२ (म.प्र.)

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/२२३

एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी की षष्टिपूर्ति पर

हमारे उन्हें भावभीने वंदन

पाटनी ब्रदर्स प्रायवेट लिमिटेड

२२/१, स्नेहलतागंज, इन्दौर ४५२००३

फोन : ३४५३०, २१७१४, ३१२२१

परम पूज्य एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी की षष्टिपूर्ति

हमारे शत-शत वन्दन !

श्री जैन सहकारी पेढी मर्यादित

६०/३, मल्हारगंज, इन्दौर ४५२००२ (म. प्र.)

रजत जयन्ती वर्ष के उपलक्ष्य में

सदस्यों को त्वरित सेवा देने के लिए पेढी की बैंकों में परिवर्तित करने बाबत प्रयत्नों की घोषणा करती है। साथ ही सदस्यों को निम्नानुसार सुविधाएँ उपलब्ध हैं :

पेढी के लिए नवीन भवन बनाने की योजना जमानत कर्ज पर १६% ब्याज समय पर कर्ज चुकाने पर २% की छूट अमानतें जमा कराने पर राष्ट्रीयकृत बैंकों से १% ब्याज-दर अधिक देय सेविंग डिपॉजिट पर रु. ३०० से अधिक जमा होने पर ११½% ब्याज-दर।

बंसीलाल बेद
मंत्री

पं. नाथूलाल शास्त्री
अध्यक्ष

कार्यकारिणी तथा निरीक्षक-मण्डल के सदस्यगण

तीर्थकर : चौदहवाँ वर्ष मई १९८४ - अप्रैल* ८५

लेखानुक्रम

अन्त पर चलता है अर्हत् : डॉ. भानी-
राम, जुलाई, आवरण पृष्ठ २ ।

अणुव्रत पुरस्कार : परिक्ल्पना और
पृष्ठभूमि (बातचीत) : धरमचन्द चौपड़ा/
डॉ. नेमीचन्द जैन, सितम्बर, पृ. १७ ।

अधूरा काम : विना बुझी आग, जुलाई,
आवरण पृ. ४ ।

अपनी चौकीदारी (प्रवचन) : साध्वी
मणिप्रभाश्री, मई, पृ. १९ ।

अस्तित्व का सारतत्त्व (कविता) :
मूल : स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, अनु-
दिनकर सोनवलकर; फर., आवरण पृ. ३ ।

अहिंसा के लिए समस्त की संवेदना
जरूरी (टिप्पणी) : मुनि सुखलाल, अगस्त,
पृ. ३१ ।

अक्षर की आहटें (कविताएँ) : दिनकर
सोनवलकर, मई, पृ. ७ ।

आँख मूँदकर चलिये; खोल कर
चलिये : कन्हैयालाल सरावगी, अगस्त,
पृ. ५ ।

आचार्य कौन? आचार्य कैसे-कैसे?
(पत्र में लेख) : गणेश ललवानी, जून,
पृ. ४४ ।

आचारांग-चयनिका : समीक्षा, सित-
म्बर, पृ. ४० ।

आत्म-अनात्म-भेद : कन्हैयालाल
सरावगी, जून, पृ. ५ ।

आत्मनिर्भरता : कन्हैयालाल सरा-
वगी, जुलाई, पृ. ७ ।

आलोचना-पाठ (हिन्दी-काव्य) :
(स्व.) जौहरीलाल, जनवरी, पृ. २७ ।

* चूँकि प्रस्तुत विशेषांक मार्च-अप्रैल ८५
का संयुक्तांक है, अतः सम्बन्धित सामग्री
यहाँ अनुक्रमित नहीं है; इसे पृष्ठ ३-४
पर देखें ।

ओ माँ! ओ मेरी वृद्धा माँ!!
(कविता) : सुरेश 'सरल', जुलाई, पृ. १३ ।

इतिहास, इतिहास-बोध, और कर्म :
डॉ. प्रद्युम्नकुमार जैन, जून, पृ. १९; -
जुलाई, पृ. २२; -अगस्त, पृ. २९ ।

एकश्लोक साइंसेज फ्रॉम जैना सोर्सेज,
जिल्द-१/बैसिक मेथेमैटिक्स, जिल्द-२/
एस्ट्रॉनॉमी एण्ड कॉस्मॉलॉजी; समीक्षा,
फरवरी, पृ. ३३ ।

एकार्थक कोश (समानार्थक कोश):
समीक्षा, जून, पृ. ३९ ।

एक कहानी : बरसों पुरानी : डॉ.
विश्वास पाटील, सितम्बर, पृ. ३५ ।

एक पुलिस अधिकारी की आत्म-
कथा : समीक्षा, जनवरी, पृ. ३९ ।

ऐसा जीवन भी क्या जीना (कविता) :
बाबूलाल जैन 'जलज', सितम्बर, पृ. २८ ।

कम्परेटिव्ह रिलीजन्स (अंग्रेजी) :
समीक्षा, अक्टूबर-नवम्बर, पृ. १७२ ।

कर्म-बन्धन और मुक्ति की प्रक्रिया,
समीक्षा, जनवरी, पृ. ४१ ।

करैमि भंते सामाइयं/करता हूँ भगवन्
सामायिक : जनवरी, आवरण पृ. २ ।

करो/क्रमशः / अचंचल/इन्द्रियों/को :
जनवरी, आवरण पृ. ४ ।

कविवर बुलाखीचन्द, बुलाकीदास
एवं हेमराज : समीक्षा, मई, पृ. ४२ ।

कायांतर्ग : ममत्व का विसर्जन :
मुनि किशनलाल, दिसम्बर, पृ. ४७ ।

कौन हूँ मैं? (कविता) : स्वामी
सत्यानन्द सरस्वती, अनु- दिनकर सोन-
वलकर, फरवरी, आवरण पृ. २ ।

खत, या चुनौती : संपादकीय, अगस्त,
पृ. ३ ।

खुल जाते हैं सहज ही- (कविता) :

बाबूलाल जैन 'जलज', अक्टू.-नव., पृ. १६६।

गिरनार-दर्शन : परिचय, सित. पृ. ४१।

गीता/द साइन्स ऑफ लिन्विग (अंग्रेजी) : समीक्षा, जुलाई, पृ. ३५।

चातुर्मास-निर्देशिका १९८४ : समीक्षा, अक्टू.-नव., पृ. १७५।

चाहिये : अनुशासन और समन्वय (बातचीत) : रमेशचन्द जन/डॉ. नेमीचन्द जैन, अगस्त, पृ. १३।

चैत्यवन्दन सूत्र-विवेचना : समीक्षा, अक्टू.-नव., पृ. १७४।

जम्बूद्वीप (अर्द्धवार्षिक) : समीक्षा, मई, पृ. ४१।

जम्बूद्वीप : समीक्षा, सित., पृ. ४०।

जम्बूद्वीप : परिचय, अक्टू. नव.-पृ. १७६, १।

जाले से बाहर : संपादकीय, दिस., पृ. ३।

जीवन-उत्थान का राजमार्ग (बोध-कथाएँ) : परिचय, अक्टू.-नव., पृ. १७६।

जीवन-भूत्य : अनुशीलन/कदम-दर-कदम : डॉ. एम. पो. पटैरिया, फर., पृ. ७।

जैन कला में प्रतीक : समीक्षा, अक्टू.-नव., पृ. १७३।

जन नारी : अस्मिता की रक्षा/जिजी-विषा की तलाश (बातचीत) : ब्र. विद्यु-ल्लता शहा/डॉ. नेमीचन्द जैन, जुलाई, पृ. २५।

जैन पूजांजलि पुष्प-२ : परिचय, सित., पृ. ४१।

जैन शतक/छत्रीसी संग्रह : परिचय, अक्टू.-नव., पृ. १७६।

जैन साधु और वाहन-प्रयोग (बात-चीत) : मुनिश्री नगराज/डॉ. नेमीचन्द जैन, जुलाई, पृ. १५।

तस्स मिच्छा मे दुक्कडं : संपादकीय टिप्पणी, दिस., पृ. ७।

दर्शन/विज्ञान/शास्त्र : डॉ. नेमीचन्द जैन, जुलाई, पृ. १।

द्वारपर का देवता / अरिष्ट नेमि (काव्य) : समीक्षा, जुलाई, पृ. ३७।

धर्म और राजनीति : डॉ. प्रद्युम्न-कुमार जैन, सित., पृ. ७; -फर., पृ. ११।

धर्म और ब्लैकमेल (पत्र में लेख) : गणेश ललवानी, जुलाई, पृ. ४३।

धर्म : कहेँ किसे? डॉ. एम. पी. पटैरिया, अग., पृ. ९।

धूर्ताख्यान : परिचय, अक्टू.-नव., पृ. १७६।

न्यायमंजरी (तृतीय आह्निक) : समीक्षा, सित., पृ. ३९।

नमस्कार-मोमांसा : समीक्षा, सित., पृ. ४१।

नाम-ही-नाम : संपादकीय, जून, पृ. ३।

प्रतिक्रमण (कविता) : राजमल पवैया, अक्टू.-नव., पृ. ११६।

प्रतिक्रमण : अवशिष्ट संदर्भ, दिस., पृ. ५०।

प्रतिक्रमण : आत्मशुद्धि/आत्मान्वेषण की प्रक्रिया (बातचीत) : एलाचार्य मुनि-श्री विद्यानन्द/डॉ. नेमीचन्द जैन, अक्टू.-नव., पृ. १७।

प्रतिक्रमण : आत्मशोधन की महत्त्व-पूर्ण प्रक्रिया : डॉ. दरबारीलाल कोठिया, अक्टू.-नव., पृ. १४५।

प्रतिक्रमण : आना उस तट से इस तट तक : डॉ. प्रेमसुमन जैन, अक्टू.-नव., पृ. ५४।

प्रतिक्रमण : इतिहास और परम्परा : डॉ. सागरमल जैन, दिस., पृ. ५९।

प्रतिक्रमण-का-अतिक्रमण : सुरेश 'सरल', अक्टू.-नव., पृ. १६१।

प्रतिक्रमण : ग्रन्थि-शोधन की आधार-भूमिका (बातचीत) : युवाचार्य महाप्रज्ञ/डॉ. नेमीचन्द जैन, अक्टू.-नव., पृ. ३७।

प्रतिक्रमण शब्द-कोश : संपा. डॉ. नेमीचन्द जैन, दिस., पृ. ५१।

प्रतिक्रमण/सामायिक : परिवर्तन-परिवर्धन की आवश्यकता (बातचीत) : आचार्यश्री तुलसी/डॉ. नेमीचन्द जैन, अक्टू.-नव., पृ. ८८।

प्रतिक्रमण/सामायिक शब्दकोश . संपा. डॉ. नेमीचन्द जैन, अक्टू.-नव., पृ. १२७।

प्रतिक्रमण/सामायिक . संदर्भ ग्रन्थ/पुस्तक/विशेषांक, अक्टू.-नव., पृ. १४८।

प्रतिक्रमण से आत्मावलोकन/आत्म-परिमार्जन (बातचीत) : भुनिश्री नगराज/डॉ. नेमीचन्द जैन, दिस., पृ. ३८।

प्रतिक्रमण : हांता स्वयं-का, स्वयं-में (बातचीत) : साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभा-श्री/डॉ. नेमीचन्द जैन, अक्टू.-नव., पृ. १०५।

प्रयोजन : चित्तशुद्धि (पत्र में लेख) : मुनिश्री शीलचन्द्रविजय, अक्टू.-नव., पृ. १६७।

परम पुरुष सिद्धप्पा (जीवनी) : मूल-श्रीपाल शिवलाल शहा, अनु.-डॉ. हरीन्द्र-भूषण जैन, मई, पृ. २७; -जून, पृ. ३५; -जुलाई, पृ. ३१; -अग., पृ. ३३; -सित., पृ. २९; -अक्टू.-नव., पृ. १५९; -दिस., पृ. ६९।

पर्युषण : तैयारी कितनी ? : संपा-दकीय, सित., पृ. ३।

पुरुषार्थ का फल : परिचय, अक्टू.-नव., पृ. १७६।

पूजन पुष्प : परिचय, सित., पृ. ४१।

फरिश्ते से बढ़कर है इन्सान बनना (बोधकथा) : अक्टू.-नव., पृ. १०४।

फिर दीप जले (कहानी-संग्रह) : समीक्षा, जन., पृ. ४१।

बातचीत १-७ (प्रतिक्रमण/सामायिक) : संपादकीय टिप्पणी, अक्टू.-नव., पृ. १३।

बारस अणुवेकखा : समीक्षा, अक्टू.-नव., पृ. १७५।

भटका पंछी नीड़ पाया (लघु उप-न्यास) : समीक्षा, जन., पृ. ४२।

भाग्य और पुरुषार्थ : परिचय, सित., पृ. ४१।

भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वाङ्मय का योगदान (द्वितीय खण्ड) : समीक्षा, सित., पृ. ३९।

भावपंचक : परिचय, अक्टू.-नव., पृ. १७६।

भावना भवनाशिनी : समीक्षा, सित., पृ. ४०।

भेदविज्ञान : आत्मप्रतीति का माध्यम, स्वानुभूति का विज्ञान (बातचीत) : एला-चाय मुनिश्री विद्यानन्द/डॉ. नेमीचन्द जैन, जून., पृ. ९।

मंगल पाठ : परिचय, सित., पृ. ४१।
मृत्युबोध : समीक्षा, अग., पृ. ३९।
मन को कैसे साधें ? : पदमश्री चोपड़ा, जून, पृ. १।

मालिक बनें; मौलिक बनें : संपा-दकीय, जन., पृ. ३।

मुस्कान बड़ी नियामत : जून, आवरण पृ. ४।

मेरी सफलताओं का मर्म : मौन-में-मौन (बातचीत) : पदमश्री पं. सुमतिबाई शहा/डॉ. नेमीचन्द जैन, जून, पृ. २५।

'मेरी भावना' के रचयिता (स्व. जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' पर संपा-दकीय टिप्पणी), जन., पृ. २३।

'मेरी भावना' (मूल काव्य-पाठ) : (स्व.) जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर', जन., पृ. २५।

मैं/मुझे/मेरा : गला डालिये इन्हें : पदमश्री चोपड़ा, मई, पृ. १७।

मैत्रीना गुलमोहरोनु' उपवन (गुज-राती), समीक्षा, मई, पृ. ४१।

मोटा श्रावक : छोटा श्रावक : गणेश ललवानी, अक्टू.-नव., पृ. १६४।

मौत के बाद की जिन्दगी : डॉ. विश्वास पाटील, जुलाई, पृ. ९ ।

मौन-में-मौन : मेरी सफलताओं का मर्म (बातचीत पर संपादकीय टिप्पणी) : जून, पृ. २३ ।

यह मात्र संयोग नहीं है (पत्र में लेख) : डॉ. दरबारीलाल कोठिया, अक्टू.-नव., पृ. १६९ ।

यही सामायिक है : डॉ. भानीराम, अक्टू.-नव., पृ. १३९ ।

वर्षावास : संपादकीय, जुलाई, पृ. ३ ।

वह गीत/वह आँख : मई, आवरण पृ. ४ ।

वापसी : संपादकीय, अक्टू.-नव., पृ. ५ ।

वापसी : विभाव-से स्वभाव-में : आचार्यश्री नानालाल/डॉ. नेमीचन्द जैन; अक्टू.-नव., पृ. १०१ ।

विरासत में : संपादकीय, मई, पृ. ३ ।

विविक्त को जानो : अक्टू.-नव., आवरण पृ. ४ ।

विश्ववन्द्य महावीर : परिचय, अक्टू.-नव., पृ. १७६ ।

श्रद्धांजलि (श्रीमती इन्दिरा गाँधी को) : संपादकीय टिप्पणी, अक्टू.-नव., आवरण पृ. २ ।

श्रमण-प्रतिक्रमण (मूल) : दिस., पृ. ९ ।

श्रमण-प्रतिक्रमण (हिन्दी-अनुवाद), दिस., पृ. १९ ।

श्रावक-प्रतिक्रमण (हिन्दी-अनुवाद), दिस., पृ. ३३ ।

श्रीपंच प्रतिक्रमण तथा नवस्मरण प्रबोध टीकानुसारी (शब्दार्थ, अर्थ-संकलना, सूत्र-परिचय) : समीक्षा, अक्टू.-नव., पृ. १७१ ।

श्री स्थानकवासी जैन चातुर्मास-सूची १९८४ : समीक्षा, सित., पृ. ४१ ।

श्री क्षेत्र बाहुबली प्रकरण/शोध व बोध (मराठी), समीक्षा, जुलाई, पृ. ३६ ।

श्वेत कमल, समीक्षा, जन. पृ. ४० ।

शुरू करें : रसोईघर और बैठकखाने से : संपादकीय, फर., पृ. ३ ।

स्याद्वाद (बात शब्दों की) : डॉ. नेमीचन्द जैन, जून, आवरण पृ. २ ।

स्त्री-प्रक्षाल-निषेध : परिचय, सित., पृ. ४१ ।

सद्गृहस्थ का कवच : अग., आवरण पृ. ४ ।

‘सम’ अर्थात् अहंकार और मंमंकार से त्यागपत्र (परिचर्चा) : पं. फूलचन्द शास्त्री, पं. नाथूलाल शास्त्री, डॉ. नेमीचन्द जैन, जन. पृ. ७ ।

समाधि/असमाधि : फर., आवरण पृ. ५ ।

समयानुसार अमृत कलशावलि : परिचय, अक्टू.-नव., पृ. १७६ ।

समण धम्मसुत्त : परिचय, अक्टू.-नव., पृ. १७६ ।

सात कविताएँ : दिनकर सोनवलकर, अक्टू.-नव., पृ. ९ ।

साध्वी-प्रमुखा कनकप्रभा : समीक्षा, फर., पृ. ३३ ।

साधना : प्रयोग और परिणाम : समीक्षा, जन., पृ. ३७ ।

सामायिक (कविता) : राजमल पवैया, अक्टू.-नव., पृ. ९९ ।

सामायिक : अर्थ और स्वरूप : डॉ. निजामउद्दीन, अक्टू.-नव., पृ. १५१ ।

सामायिक : उत्तम सिद्धि के लिए उत्तम साधना (बातचीत) : डॉ. सोनेजी/डॉ. नेमीचन्द जैन, जन., पृ. २९ ।

सामायिक : एक प्रयोगोन्मुख अनुशीलन : डॉ. सोनेजी, अक्टू.-नव., पृ. १४३ ।

सामायिक के लिए प्रतिक्रमण (बातचीत) : आचार्यश्री विद्यासार/डॉ. नेमी-

चन्द जैन, अक्टू-नव., पृ. ५९ ।

सामायिक : प्रक्रिया और विधि :
संपादकीय टिप्पणी, जन., पृ. ३३ ।

सामायिक/प्रतिक्रमण : सित., आवरण
पृ. ४ ।

सामायिक पाठ : आचार्य अमितभति,
मूल पाठ के साथ हिन्दी-भावानुवाद-
डॉ. नेमीचन्द जैन, जन., पृ. १७ ।

सामायिक : समता-संयम का अभ्यास :
कन्हैयालाल सरावगी, अक्टू.-नव., पृ.
१३५ ।

सामायिक/सामायिक : स्वरूप और
विधि : डॉ. पद्मालाल साहित्याचार्य, अक्टू.-
नव., पृ. १३२ ।

सामायिक : योग का चरमोत्कर्ष
(बातचीत) : ब्र. कुमारी कौशल/डॉ. नेमी-
चन्द जैन, अक्टू.-नव., पृ. ११७ ।

सार्थकता का प्रश्न (पत्र में लेख) :
गणेश ललवानी, सित., पृ. ४५ ।

सावग-पडिक्कमण-सुत्तं (वंदितु-
सूत्र) : दिस., पृ. २९ ।

साहस का सम्बल, परिचय, अक्टू.-
नव., पृ. १७६ ।

सिर्फ सहयोग नहीं, बराबर की भागी-
दारी (बातचीत, संदर्भ जैनेन्द्र सिद्धान्त
कोश) : ब्र. कु. कौशल/डॉ. नेमीचन्द जैन,
फर., पृ. २३ ।

सुधा-सिन्धु : परिचय, अक्टू.-नव.,
पृ. १७६ ।

सुधारने/चले/हम : कन्हैयालाल
सरावगी, फर., पृ. १७ ।

सुनीति-शतक : समीक्षा, अक्टू.-नव.,
पृ. १७५ ।

हम जागेंगे : समाज जागेगा (बात-
चीत) : रामकृष्ण बजाज/डॉ. नेमीचन्द जैन,
मई, पृ. ३१ ।

हाथी और रुई : दिस., आवरण
पृष्ठ ४ ।

हिंसा, या अहिंसा परमोधर्म : ?
कन्हैयालाल सरावगी, मई, पृ. १३ ।

हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर खण्ड
१, २ (अंग्रेजी) : समीक्षा, अग., पृ. ३७ ।

धुल्लक-प्रतिक्रमण (मूल) : दिस.,
पृ. १४ ।

धुल्लक-प्रतिक्रमण (हिन्दी-अनुवाद-
डॉ. नेमीचन्द जैन द्वारा), दिस., पृ. २४ ।

लेखानुक्रम

एम. पी. पटैरिया, डॉ. : जीवन-मूल्य :
अनुशीलन/क्रदम-दर-क्रदम, फर., पृ. ७-
धर्म : कहे किसे ? अग., पृ. ९ ।

कन्हैयालाल सरावगी : आत्म-अनात्म-
भेद, जून, पृ. ५; -आत्मनिर्भरता, जु.,
पृ. ७; -आँख मूंद कर चलिये; खोल कर
चलिये, अग., पृ. ५; -सामायिक : समता-
संयम का अभ्यास, अक्टू.-नव., पृ. १३५;
सुधारने/चले/हम, फर., पृ. १७; - हिंसा
या अहिंसा परमोधर्म : ?, मई, पृ. १३ ।

कनकप्रभाश्री, साध्वीप्रमुखा : प्रति-
क्रमण होना स्वयं-का, स्वयं-में (बातचीत,
डॉ. नेमीचन्द जैन के साथ), अक्टू.-नव., पृ.
१०५ ।

किशनलाल, मुनि : कायोत्सर्ग : ममत्व
का विसर्जन, दिस., पृ. ४७ ।

कौशल, ब्र. कुमारी : सामायिक : योग
का चरमोत्कर्ष (बातचीत, डॉ. नेमीचन्द
जैन के साथ), अक्टू.-नव., पृ. ११७; -
सिर्फ सहयोग नहीं, बराबरी की भागीदारी
(बातचीत, डॉ. नेमीचन्द जैन के साथ;
संदर्भ जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश), फर., पृ. २३ ।

गणेश ललवानी : आचार्य कौन ?
आचार्य कैसे-कैसे ? (पत्र में लेख), जून,
पृ. ४४; -धर्म और ब्लैकमेल (पत्र में लेख)
जु., पृ. ४३; -मोटा श्रावक : छोटा श्रावक,
अक्टू.-नव., पृ. १६४; -सार्थकता का प्रश्न
(पत्र में लेख), सित. पृ. ४५ ।

जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर', स्व. 'मेरी भावना' (काव्य-पाठ), जन., पृ. २५।

जौहरीलाल, स्व., आलोचना-पाठ (काव्य-पाठ), जन., पृ. २७।

तुलसी, आचार्यश्री : प्रतिक्रमण/सामायिक : परिवर्तन-परिवर्धन को अवाश्यकता (बातचीत, डॉ. नेमीचन्द जैन के साथ), अक्टू.-नव., पृ. ८८।

दरबारीलाल कोठिया, डॉ. : प्रतिक्रमण : आत्मशोधन की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया, अक्टू.-नव., पृ. १४५; -यह मात्र संयोग नहीं है (पत्र में लेख), अक्टू.-नव., पृ. १६९।

दिनकर सोनवलकर, प्रो. : अस्तित्व का सारतत्त्व (भवानुवाद), फर., आवरण पृ. ३; -अक्षर की आहटें (कविताएँ), मई, पृ. ७; -कौन हूँ मैं? (भवानुवाद), फर., -आवरण पृ. २; -सात कविताएँ अक्टू.-नव., पृ. ९।

धरमचन्द चौपड़ा : अणुव्रत पुरस्कार : परिकल्पना और पृष्ठभूमि (बातचीत, डॉ. नेमीचन्द जैन के साथ), सित., पृ. १७।

नगराज, मुनिश्री : जैन साधु और वाहन-प्रयोग (बातचीत, डॉ. नेमीचन्द जैन के साथ), जु., पृ. १५; -प्रतिक्रमण से आत्मावलोकन/आत्मपरिस्मर्जन (बातचीत, डॉ. नेमीचन्द जैन के साथ), दिस., पृ. ३८।

नानालाल, आचार्यश्री : वापसी : विभाव-से स्वभाव-में (बातचीत, डॉ. नेमीचन्द के साथ), अक्टू.-नव., पृ. १०१।

निजमाउद्दीन, दाँ. : सामायिक : अर्थ और स्वरूप, अक्टू.-नव., पृ. १६१।

नेमीचन्द जैन, डॉ. : अधूरा काम : बिनाबुझे आग, जु., आवरण पृ. ४; -करो/क्रमशः/अचंचल/इन्द्रियों/को, जन., आवरण पृ. ४; -खत, या चुनौती (संपादकीय), अग., पृ. ३; -जाले से बाहर

(सं.), दिस., पृ. ३; -तस्स मिच्छा मे दुक्कडं (संपादकीय टिप्पणी), दिस. पृ. ७; -दर्शन/विज्ञान/शास्त्र, जु., पृ. १-

नाम-ही-नाम (सं.), जून, पृ. ३; -प्रतिक्रमण-शब्द-कोश, दिस., पृ. ५१; -प्रतिक्रमण, सामायिक शब्द-कोश, अक्टू.-नव., पृ. १२७; -पर्युषण : तैयारी कितनी (सं.), सित., पृ. ३; -बातचीत १-७ (प्रतिक्रमण/सामायिक पर संपादकीय टिप्पणी), अक्टू.-नव., पृ. १३; -मालिक बनें; मौलिक बनें (सं.), जन., पृ. ३; -मुस्कान बड़ी न्याय-मत, जून, आवरण पृ. ४; -'मेरी भावना' के रचयिता (स्व. जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' पर संपादकीय टिप्पणी), जन., पृ. २३; -मौन-में-मौन : मेरी सफलताओं का मर्म (पद्मश्री पं. सुमतिबाई शहा के साथ बातचीत पर संपादकीय टिप्पणी), जून, पृ. २५; -वर्षावास (सं.), जु., पृ. ३; -वह गीत /वह आँख, मई, आवरण पृ. ४; -वापसी (सं.), अक्टू.-नव., पृ. ५; -विरासत में (सं.), मई, पृ. ३; -विक्रम को जानो, अक्टू.-नव., आवरण पृ. ४; -श्रद्धांजलि (श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या पर संपादकीय टिप्पणी), अक्टू.-नव., आवरण पृ. २; -श्रमण-प्रतिक्रमण (हिन्दी-अनुवाद), दिस., पृ. १९; -शुरू करें: रसईघर और बैठकखाने से (सं.), फर. पृ. ३; -स्याद्वाद (बात शब्दों की), जून, आवरण पृ. २; -सद्गृहस्थ का कवच, अग., आवरण पृ. ४; -सामायिक : प्रक्रिया और विधि, जन., पृ. ३३; -सामायिक/प्रतिक्रमण, सित., आवरण पृ. ४; -सामायिक पाठ (आचार्य अमित गति) का हिन्दी-भावानुवाद, जन., पृ. १७; -हाथी और रुई, दिस., आवरण पृ. ४; -क्षुल्लक-प्रतिक्रमण (हिन्दी-अनुवाद), दिस., पृ. २४।

प्रद्युम्नकुमार जैन, डॉ. : इतिहास, इतिहास-बंध, और कर्म : जून, पृ. १९; -जु., पृ. २२; -अग., पृ. २९; -धर्म और राजनीति, सित. पृ. ७; -फर. पृ. ११।

प्रद्युम्नकुमार जैन, डॉ. : इतिहास, इतिहास-बंध, और कर्म : जून, पृ. १९; -जु., पृ. २२; -अग., पृ. २९; -धर्म और राजनीति, सित. पृ. ७; -फर. पृ. ११।

प्रद्युम्नकुमार जैन, डॉ. : इतिहास, इतिहास-बंध, और कर्म : जून, पृ. १९; -जु., पृ. २२; -अग., पृ. २९; -धर्म और राजनीति, सित. पृ. ७; -फर. पृ. ११।

प्रद्युम्नकुमार जैन, डॉ. : इतिहास, इतिहास-बंध, और कर्म : जून, पृ. १९; -जु., पृ. २२; -अग., पृ. २९; -धर्म और राजनीति, सित. पृ. ७; -फर. पृ. ११।

प्रद्युम्नकुमार जैन, डॉ. : इतिहास, इतिहास-बंध, और कर्म : जून, पृ. १९; -जु., पृ. २२; -अग., पृ. २९; -धर्म और राजनीति, सित. पृ. ७; -फर. पृ. ११।

प्रद्युम्नकुमार जैन, डॉ. : इतिहास, इतिहास-बंध, और कर्म : जून, पृ. १९; -जु., पृ. २२; -अग., पृ. २९; -धर्म और राजनीति, सित. पृ. ७; -फर. पृ. ११।

प्रद्युम्नकुमार जैन, डॉ. : इतिहास, इतिहास-बंध, और कर्म : जून, पृ. १९; -जु., पृ. २२; -अग., पृ. २९; -धर्म और राजनीति, सित. पृ. ७; -फर. पृ. ११।

प्रद्युम्नकुमार जैन, डॉ. : इतिहास, इतिहास-बंध, और कर्म : जून, पृ. १९; -जु., पृ. २२; -अग., पृ. २९; -धर्म और राजनीति, सित. पृ. ७; -फर. पृ. ११।

पद्मश्री चोपड़ा : मन को कैसे साधें ?
जून, पृ. १;—मैं/मुझे/मिरा : गला डालिये
इन्हें, मई, पृ. १७ ।

पन्नालाल साहित्याचार्य, डॉ. : साम-
यिक/सामायिक : स्वरूप और विधि, अक्टू.-
नव., पृ. १३२ ।

प्रेमसुमन जैन, डॉ. : प्रतिक्रमण : आना
उस तट से इस तट तक, अक्टू.-नव., पृ. ५४ ।

बाबूलाल जैन 'जलज' : खुल जाते हैं
सहज ही (कविता), अक्टू.-नव., पृ. १६६;
—ऐसा जीवन भी क्या जीवन (कविता),
सित., पृ. २८ ।

भानीराम, डॉ. : अन्त पर चलता है
अर्हत् : जु., आवरण पृ. २;—यही सामा-
यिक है, अक्टू.-नव., पृ. १३९ ।

मणिप्रभाश्री, साध्वी : अपनी चौकी-
दारी (प्रवचन), मई, पृ. १९ ।

महाप्रज्ञ, युवाचार्य : प्रतिक्रमण :
ग्रन्थ-शोधन की आधार-भूमिका, अक्टू.-
नव., पृ. ३० ।

विद्यानन्द, एलाचार्य मुनिश्री : भेद-
विज्ञान : आत्मप्रतीति का माध्यम, स्वानु-
भूति का विज्ञान (बातचीत, डॉ. नेमीचन्द्र
जैन के साथ), जून, पृ. ९;—प्रतिक्रमण :
आत्मशुद्धि/आत्मान्वेषण की प्रक्रिया, अक्टू.-
नव., पृ. १७ ।

विद्यासागर, आचार्यश्री : सामायिक
के लिए प्रतिक्रमण (बातचीत, डॉ. नेमी-
चन्द्र जैन के साथ) : अक्टू.-नव., पृ. १९ ।

विद्युल्लता शहा, : जैन नारी :
अस्मिता की रक्षा/जिजीविषा की तलाश
(बातचीत, डॉ. नेमीचन्द्र जैन के साथ),
जु., पृ. २५ ।

विश्वास पाटील, डॉ. : एक कहानी :
बरसों पुरानी : सित., पृ. ३५;—मौत के
बाद की जिन्दगी, जु. पृ. ९ ।

रमेशचन्द्र जैन : चाहिये : अनुशासन

और समन्वय (बातचीत, डॉ. नेमीचन्द्र
जैन के साथ), अग., पृ. १३ ।

राजमल पवैया : प्रतिक्रमण (कविता),
अक्टू.-नव., पृ. ११६;—सामायिक
(कविता), अक्टू.-नव. पृ. ९९ ।

रामकृष्ण बजाज : हम जागेंगे,
समाज जगेगा (बातचीत, डॉ. नेमीचन्द्र
जैन के साथ), मई, पृ. ३१ ।

श्रीपाल शिवलाल शहा : परम पुरुष
सिद्धिप्या (जीवनी), मई, पृ. २७;—जून.,
पृ. ३५;—जु., पृ. ३१;—अगस्त, पृ. ३३;—
सित., पृ. २९;—अक्टू.-नव., पृ. १५९;—
दिस. पृ. ६९ ।

शीलचन्द्रविजय, मुनिश्री : प्रयोजन :
चित्तशुद्धि (पत्र में लेख), अक्टू.-नव.,
पृ. १६७ ।

सत्यानन्द सरस्वती, स्वामी : अस्तित्व
का सारतत्त्व (कविता), फर., आवरण
पृ. ३; कौन हूँ मैं? (कविता), फर.,
आवरण पृ. २ ।

सागरमल जैन, डॉ. : प्रतिक्रमण :
इतिहास और परम्परा, दिस., पृ. ५९ ।

सुखलाल, मुनिश्री : अहिंसा के लिए
समस्त की संवेदना जरूरी (टिप्पणी),
अग., पृ. ३१ ।

सुमतिबाई शहा, पद्मश्री पं. : मेरी
सफलताओं का मर्म : मौन-में-मौन (बात-
चीत, डॉ. नेमीचन्द्र जैन के साथ), जून,
पृ. २५ ।

सुरेश 'सरल' : ओ माँ! ओ मेरी
वृद्धा माँ!! (कविता), जु., पृ. १३ ।

सोनेजी, डॉ. : सामायिक : उत्तम
सिद्धि के लिए उत्तम साधन (बातचीत,
डॉ. नेमीचन्द्र जैन के साथ), जन., पृ. १९;
सामायिक : एक प्रयोगोन्मुख अनुशीलन,
अक्टू.-नव., पृ. १४३ ।

□□

मा. एलाचार्य मुनि महाराज त्यांचे ६१ वीं साठी आमच्या हार्दिक शुभेच्छा

गौतम सहकारी बँक लि. गौतमनगर

पो. कोळपेवाडी, ता. कोपरगांव, जि. अहमदनगर.

स्थापना:-२२ एप्रिल १९७६.

ऑडीट वर्ग "अ"

बँकेच्या प्रगतीचे बोलके आकडे-जून-१९८४ अखेर.

सभासद	२६१२	वसुल भाग भांडवल	८,१४,१००
ठेवी	८४,५३,०८०	दिलेली कर्जे	७९,०७,५७६
नफा	२,४२,८६२	डिव्हीडंड	१२ %

वैशिष्ट्ये ठेवीला विमा योजना ठेवीवर भरघोस व्याज व ठेवीच्या आकर्षक योजना
 छोटे मोठे उद्योग धंद्यासाठी कर्जे विनम्र व तत्पर सेवा.

कोपरगांव परिसरवासियांचे सेवेसाठी कोपरगांव शाखा.

डी. एच. आहरे
(बी. कॉम.)
मनेजर

संपानराव गवळी
(बी. एस्सी.)
व्हा. चेअरमन
एवं संचालक मंडळ

शंकरराव काळे
(बी. एस्सी. बी. ई.)
चेअरमन

With Best Compliments From

INDUSTRIAL DETERGENT

'Scent House'

Station Road, Goregaon (West), Post Box No. 7507,

BOMBAY 400-062

Gram: 'BHARAT'/BIRLAGRAM Phone: 26,35 & 71; NAGDA

WITH BEST COMPLIMENTS FROM:

BHARAT COMMERCE & INDUSTRIES LIMITED

P. O. BIRLAGRAM - NAGDA

Manufacturers of: Quality 'NAGDA' Staple, Synthetic and
Fancy Yarns in the wide range of counts
in Grey and Dyed

Regd. & Head Office: 'Surya Kiran' 5th Floor,

19, Kasturba Gandhi Marg, New Delhi 110001

Selling Agents for M.P.—M/s. Gajanand Gopikishan

131, Jawahar Marg, Indore-2. Phones: 32586/27267

हार्दिक शुभेच्छा



वालचंद उद्योग समूहाकडून

दि. कोपरगांव सहकारी साखर कारखाना लि. गोतमनगर

पो. कोळपेवाड़ी, ता. कोपरगांव, जि. अहमदनगर.

“शुभ्र दाणेदार उच्च प्रतीची साखर निर्मिती हेच आमचे वैशिष्ट्य”

या कारखान्याने हाती घेतलेल्या २५ टनी पेंपर प्लॅन्टच्या मशिनरी उभारणीचा शुभारंभ मा. परमपूज्य १००८ एलाचार्य विद्यानंदजी महाराज यांचे शुभहस्ते व शुभाशिर्वादाने करणेत आलेला असून या थोर महात्म्याचे कृपाशिर्वाद व मंगलमय सान्निध्य आम्हांस लाभले. अशा या थोर सर्वोच्च नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, अहिसक जिनविजय, जैन धर्माचे परमपूज्य एलाचार्य मुनिश्री विद्यानंदजी यांचे षष्ठ्यब्धी समारंभास या कारखान्याचे मा. संचालक मंडळ, सभासद, अधिकारी व कर्मचारी हार्दिक शुभेच्छा व्यक्त करित असून त्यांना दिर्घायुरारोग्य लाभावे अशी परमेश्वराजवळ प्रार्थना करित आहे. तसेच या निमित्त प्रसिद्ध होणाऱ्या “तीर्थकर” चे विशेषांकासाठी ही हार्दिक शुभेच्छा व्यक्त करित आहे.

सिखन १९८४-८५ चे उद्दिष्ट्ये

ऊस गळीत-४,००,००० मे. टन; साखर उतारा ११.५०; साखर निर्मिती ४,६०,००० पॅंती.

जी. जी. काकडे	र. म. सुराळकर	शंकरराव कोळे
प्रभारी कार्यकारी संचालक	व्हाईस चेअरमन	बी.एससी.बी.ई. (सिव्हील) चेअरमन

संचालक मंडळ

मा. श्री. कारभारी भिमाजी रोहमारे	मा. श्री. माधवराव कचेश्वर आढाव
” वसंतराव गंगाधर कुलकर्णी	” विठ्ठलराव ठमाजी माळी
” रघुनाथराव शंकरराव देवकर	” आप्पासाहेब भिकाजी होन
” कारभारी पंढरीनाथ जाधव	” सुधाकरराव रवमाजी आवारे
” रामचंद्र आबासाहेब वारहाते,	” बी. एससी.
” बीएससी (अंग्री)	” रामकृष्ण कुंडलीक बनकर
” शंकरराव नामदेव पवार	” कारभारी रावजी शिंदे
” पंडीतराव यादवराव चांदगुडे,	” कारभारी बाळकृष्ण नवले
” बीएससी (अंग्री)	
” शिवाजीराव मुरलीधर कांकाटे	” ववनराव भिमाजी कोळपे
” रामचंद्र नामदेव आबनावे	” शांतिराम नाथा आहरे
” ववनराव वामनराव शिलेदार	” आयदार दादा शहाजी रोहमारे
” संक्षायटी संचालक	” बँक प्रतिनिधी
” वाळासाहेब कचरु कदम, स्वीकृत तज्ञ	” नारायणराव दादा दिघे, स्वीकृत तज्ञ
” संपतराव सखाराम आहरे,	
” भागवतराव नानाजी कांभसे,	” भास्करराव काशिराम गुरसळ,
” कामगार प्रतिनिधी	” कामगार प्रतिनिधी
मा. रिजनल डेप्युटी डायरेक्टर ऑफ शुगर, अहमदनगर	मा. साखर संचालक, महाराष्ट्र राज्य, पुणे यांचे प्रतिनिधी

With Best Compliments From :

UNIFORM PRINTING PRESS

Sonawala Cross Road, Goregaon (E), BOMBAY 400-063

Phone : 693956

Off. : 272883

UNIFORM OFFSET PVT. LTD.

UNIFORM HOUSE

D. P. Road, Western Express Highway,

Goregaon (E), BOMBAY 400-063

Phone : 692755

Off. : 272883

Cable : SANTGODHA

Phones : Off. : 320920, 321249
Res.: 650920, 382467

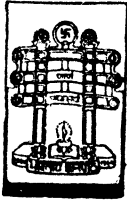
WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

SHANTIVIJAY & CO.

ONE OF INDIA'S LEADING JEWELLERS & ART DEALERS

52, JANPATH. NEW DELHI 110-001

तीर्थकर : मार्च-अप्रैल ८५/२३५



भारतीय ज्ञानपीठ गौरवशाली प्रकाशन-परम्परा में नये कीर्तिमान

१९ वें ज्ञानपीठ पुरस्कार (१९८३) से सम्मानित कन्नड़ लेखक डा. मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (श्रीनिवास) की बहुचर्चित रचनाएँ :

- | | |
|---|-------|
| १. चिक्क वीरराजेन्द्र (ऐतिहासिक उपन्यास) | ४५.०० |
| २. सुब्बण्णा (लघु उपन्यास) | १०.०० |
| ३. परकाय प्रवेश तथा अन्य कहानियाँ
(१९ चुनी हुई कहानियाँ) | ३५.०० |

भारतीय कविताएँ : १९८३

भारतीय कहानियाँ : १९८३

प्रथम बार १९८३ में प्रकाशित सभी भारतीय भाषाओं में से चुनी हुई लगभग ७५ प्रतिनिधि कविताओं एवं लगभग २८ कहानियों के पृथक्-पृथक् महत्त्वपूर्ण संकलन। इन अपूर्व संकलनों को "राष्ट्र में स्वाधीनता के उपरान्त किया जाने वाला सर्वाधिक उल्लेखनीय साहित्यिक एकता आयोजन" माना जा रहा है।

यथासंभव (चुने हुए १०० व्यंग्य लेख) — शरद जोशी

प्रख्यात व्यंग्यकार शरद जोशी का सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य-लेखन एक ही स्थान पर १०० व्यंग्य-लेखों के महत्त्वपूर्ण संकलन के रूप में। अब शरद जोशी साहित्य-के-प्रेमियों को पुस्तक-पुस्तक भटकने की आवश्यकता नहीं। ६०.००

रामावतार

दसवें गुरु श्री गोविन्दसिंहजी महाराज विरचित रामकाव्य रामावतार अब साहित्य-प्रेमियों एवं जनसामान्य के लिए देवनागरी लिपि में उपलब्ध।

सजिल्द २०.००

पेपरबैक १२.००

छावा (उपन्यास)

लोकप्रियता के कीर्तिमान स्थापित करने वाले चिरनवीन उपन्यास "मृत्युंजय" के ओजस्वी लेखक शिवाजी सावंत का दूसरा (नवीनतम) उपन्यास जो उनकी १२ वर्ष की साधना का सुफल है।

जैन साहित्य हमारे नये प्रकाशन : नये संस्करण

केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि

चन्द्रोन्मीलित प्रश्न-प्रणाली के आधार पर लिखा गया फलित ज्योतिष का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ । सम्पादक : डॉ. नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य ।

नया संस्करण २५/-

मूलाचार (पूर्वाधं)

आचार्य बट्टकेर द्वारा प्रणीत प्राकृत ग्रन्थ "मूलाचार" दिगम्बर जैन साधु-साध्वी की आचार-संहिता पर सर्वाधिक प्राचीन कृति माना जाता है । संस्कृत एवं हिन्दी टीकानुवाद के साथ ज्ञानपीठ से पहली बार प्रकाशित । टीकानुवाद : आधिकारत्न ज्ञानमती माताजी ।

मूल्य ६५/-

जैन साहित्य में कृष्ण

जैन साहित्य में कृष्ण-कथा का स्वरूप, व्यवितत्व, तीर्थंकर नेमि और वासुदेव कृष्ण का पारस्परिक सम्बन्ध तथा कृष्ण के महान् कार्यों का संक्षिप्त विवेचन के साथ-साथ कृष्ण-साहित्य पर जैन कवियों की अब तक उपलब्ध रचनाओं का कालक्रम से उल्लेख करने वाली कृति ।

लेखक : डॉ. महावीर कोटिया ।

मूल्य १२/-

पट्टमहादेवी शान्तला

दक्षिण भारत के होयसल राजवंश के महाराज विष्णुवर्धन की पटरानी शान्तला को केन्द्र में रख कर लिया गया वृहत् ऐतिहासिक उपन्यास । नव-स्थापित "मूर्तिदेवी साहित्य पुरस्कार" विजेता श्री सी. के. नागराजराव के वर्षों के ऐतिहासिक अनुसंधान और लेखन-साधना का सुफल । संपूर्ण उपन्यास चार भागों में नियोजित ।

मूल्य प्रथम भाग - ४८/-

भारतीय ज्ञानपीठ
१८, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड,
नई दिल्ली-११० ००३

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/२३७

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र सामान्यतपोधनानां ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्ति भगवान् जिनेन्द्रः ॥

परमपूज्य एलाचार्य मुनिश्री विद्यानन्दजी महाराज को

हमारे कोटि-कोटि वन्दन

With Best Compliments From :

M/s. UNIFORM FOUNDRY

& Her Associates:

**P. & C. PRODUCTS
MECH & FABRICA
RISHABH ENGINEERING Co.
Sonawala Cross Road, Goregaon (East)
BOMBAY 400-063
Phones : 682087, 681336, 693541**

अहिंसा परमो धर्मस्तथाऽहिंसा परोदयः ।
अहिंसा परमं दानं अहिंसा परमं तपः ॥



तीन जगत में भर रहे थावर जंगम जीव ।
सब मत भक्षक देखिये रक्षक जैन सदीव ॥



परस्परोपकृतो जीवानाम्,

卐 हादिक शुभेच्छा 卐

ऊँचे दर्जे के रेडिएटर्स के निर्माता

भारत रेडिएटर्स प्रा. लि.

प्रधान कार्यालय

८१, बजाज भवन,

नरीमन पॉइंट

बम्बई ४००-०२१

दूरध्वनि : २०२००८५

२०२१४९७

ग्राम्स : स्मूथरन

फैक्टरी

विद्यानगरी मार्ग

कालिना, सांताक्रुज

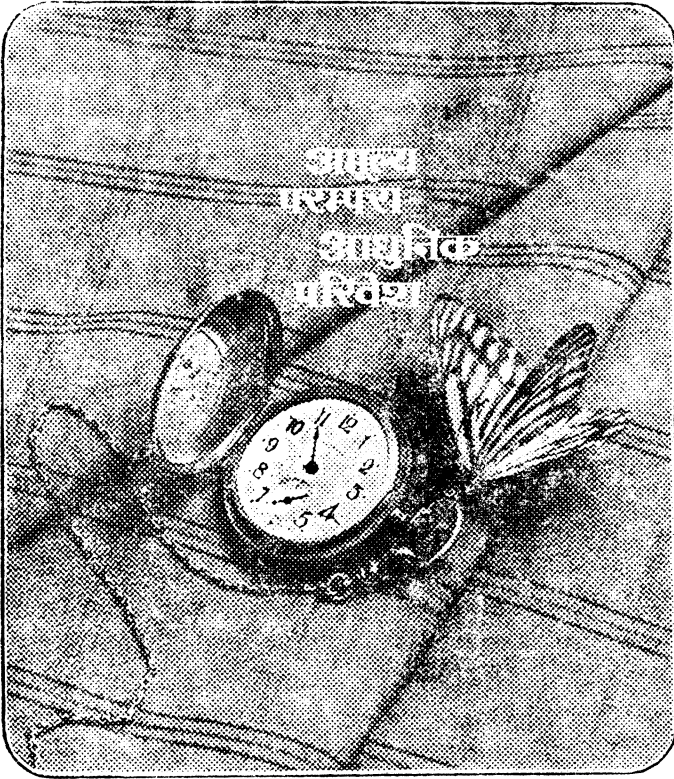
बम्बई-४०००९८

दूरध्वनि : ६१२२९६५

६१२३४५७

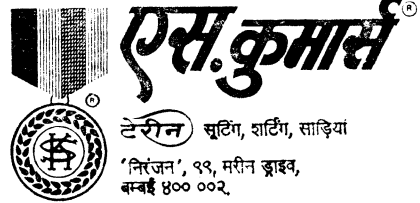
ग्राम्स : प्रेसवर्क

तीर्थंकर : मार्च-अप्रैल ८५/२३९



एस.कुमार्स द्वारा दोनों ही अनुपम गुणों का समन्वय

आधुनिक परिवेश में सुसाजित हमारे वस्त्रों में उन अमूल्य गुणों का भी समावेश रहता है जिन्हें समय भी बदल नहीं पाया... यह अमूल्य मिथि अर्थात् हमारी परम्परा प्रतिबिम्बित है। हमारे कर्तव्य के कलात्मक डिजाइनों, पीत एवं इनावट शैलियों के साथ उत्कृष्टता, टिकाऊपन तथा किफायत जैसे दुर्लभ गुणों के समन्वय में इसीलिये जब भी आप उत्कृष्ट वस्त्र खरीदना चाहेंगे तो एस. कुमार्स वस्त्रों में एक बार सुनिश्चित पायेंगे कि आपको पास हमेशा लाभ ही लाभ !



टेरीन सुटिंग, शर्टिंग, साड़ियां

'निरंजन', १९, मरीन ड्राइव,
बम्बई ४०० ००२

ऊँची से ऊँची क्वालिटी-नीचे से नीचे दाम

सर्वज्ञ

आप्तेनोत्सन्न दोषेण सर्वज्ञेना गमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन ना न्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ५

जिन्दगी से उल्फत^१ नफरत^२ के
जुल्म^३ के सबब^४ सब दूर किये ।
अपनी दानिश^५ में कायनात^६
हर ज़र्र^७ का अहसास^८ लिये ।
बो राहे सदाक़त^९ नूरानी^{१०}
बो इल्म^{११} का दरिया बहता है ।
माबूद^{१२} कहो अल्लाह कहो
बो ही 'सर्वज्ञ' कहाता है ।

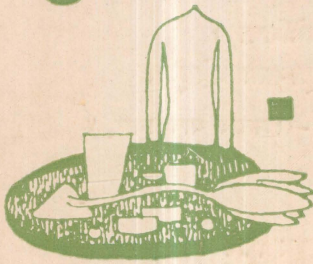
परमेष्ठी परंज्येतिविरागो विमलः कृती ।
सर्वज्ञो नादिमध्यान्तः सार्वः शास्तोपलाल्यते ॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार, ७

तन्वीर^{१३} ताबिन्दा^{१४} बेमिसाल^{१५}
अरबाबे^{१६} खिरद^{१७} नूरानी है ।
बवाहिश^{१८} इश्त^{१९} से काम नहीं
उल्फत भी इसे बेमानी है ।
आसाज़^{२०} नहीं अंजाम^{२१} नहीं
दोनों के बीच का काम नहीं ।
उस मंज़िल तक वह पहुँच गया
जिसके आगे मंज़िल ही नहीं ।

मूल : आचार्य समस्तभद्र/उर्दू-अनुवाद : मिश्रीलाल जैन

१. राग २. द्वेष ३. अंधकार ४. कारण ५. ज्ञान, प्रज्ञा ६. लोक ७. अणु, कण ८. अनुभव
९. सत्य का मार्ग १०. उज्ज्वल, शुभ्र ११. ज्ञान १२. ईश्वर १३. ज्योति १४. प्रकाशमान
१५. अद्वितीय १६. ज्ञाता १७. मनीषा, ज्ञान १८. इच्छा १९. भोग, सुख २०. आरम्भ, आदि
२१. अन्त ।



वाणीरूपी गाय

- यदि जगत् को एक ही कार्य द्वारा अपने वशीभूत करना है, तो अपनी वाणीरूपी गाय को परनिन्दारूपी धान्य चरने से बचाना होगा ।
- व्यक्ति को प्रतिदिन अपने चरित्र का लेखाजोखा करना चाहिये यह कि वह पशुओं की तुल्यता में है, या सज्जनों की ?
- जो उपकार करने का उत्साह रखते हैं, वे तो किसी तरह कुछ हैं भी; किन्तु जो उपकार का स्मरण कराते हैं, या रखते हैं; पृथ्वी उन्हीं के कारण बाँझ है ।
- जो सभीचीन (टू डेट / यथार्थ) धर्म से द्वेष रखते हैं, वे अभद्र हैं; और जिनकी उस पर प्रीति है, वे भद्र हैं ।
- विद्वत्ता पर अभिमान करने वाले व्याख्याता तो घर-घर में पाये जाते हैं, किन्तु आकिचन्यपूर्वक परमात्म तत्त्व की चर्चा करने वाले जन दुर्लभ ही हैं ।
- जो न्याय की डगर पर चल रहा है, उसकी सहायता पशुपक्षी भी करते हैं; किन्तु जो कुमार्ग पर चल रहा है, उसका साथ सगे भाई भी छोड़ जाते हैं ।
- यदि तुम पृथ्वी को वश में करना चाहते हो तो कृतज्ञ बनो, जो सब गुणों से युक्त हो कर भी कृतघ्न होता है, उससे सब लोग घृणा करते हैं ।
- जो सबसे पहले जागती है और कुटुम्ब के अन्तिम सदस्य के सो जाने पर सोती है; और जो सबके भोजन कर चुकने के बाद पहला कौर हाथ में लेती है, वह श्राविका है ।

[श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजी (राजस्थान) द्वारा प्रचारित]